प्रश्नोत्तर प्रदीप

धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक
कठिन प्रश्नों के उत्तर

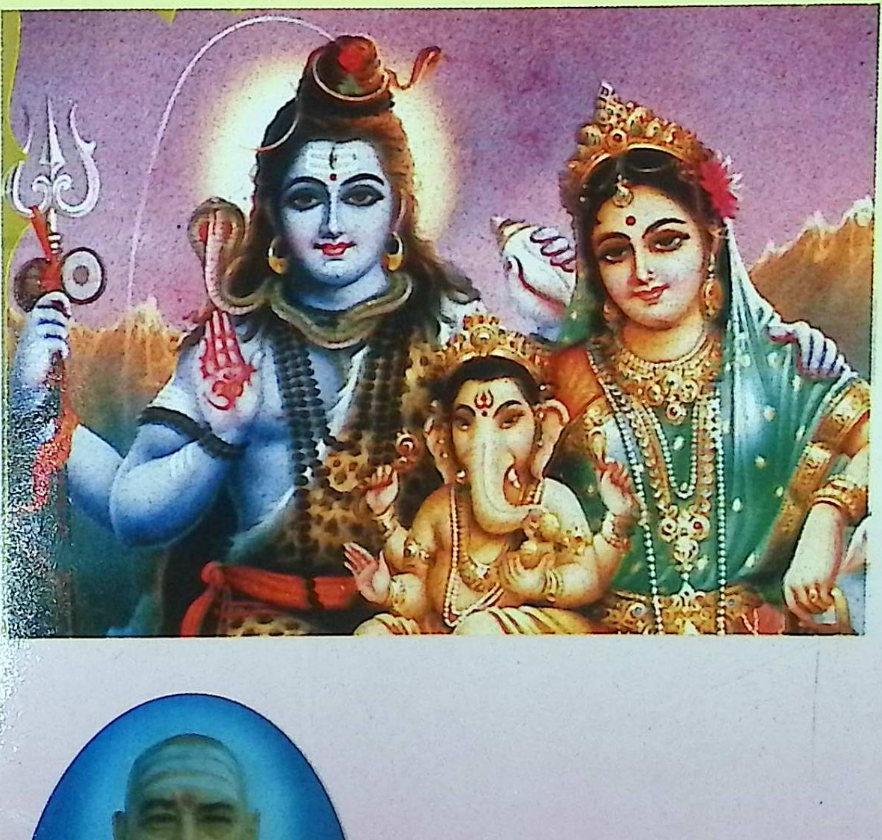

लेखक :
श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी

ॐ

प्रश्नोत्तर प्रदीप

(इसमें जिज्ञासु को व्याकुल कर देने वाले कठिन प्रश्नों के उत्तर श्रुति-स्मृति-युक्ति तथा अनुभव प्रमाणों से दिये गये हैं।)

लेखक:

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मश्रोत्रिय
ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर अनन्तश्री

स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज

वेदाश्रम चांदोद (गुजरात) 391105
विश्वभारती वेदाश्रम ट्रस्ट भवन, मानस मन्दिर
नई दिल्ली - 110005

लेखक - प्रकाशकः
महामण्डलेश्वर स्वामी दयानन्द वेदपाठी
वेदाश्रम, श्री सिद्धेश्वर महादेव मन्दिर
मु॰ पो॰ चाँदोद, 391105 जिला-बडोदरा (गुजरात)
दूरभाष : 02663 - 33386

गुजराती में तीन संस्करण प्रकाशित
हिन्दी संस्करण प्रथम - प्रति - 2000
वि॰ सम्वत् 2060 गुरु पूर्णिमा
दिनांक 13 जुलाई 2003

न्योछावरः पचास रुपये

अक्षर संयोजन :
रोहित कुमार राजपाल
विकास पुरी, नई दिल्ली
25535303, 9811462374

आवरण पृष्ठ :
कमल प्रिंटर्स
त्रि नगर, दिल्ली
27100880

मुद्रक :
गोयल आफसेट वर्क्स,
जी॰टी॰ करनाल रोड, दिल्ली
27211428

ॐ

ग्रन्थ समर्पण

विश्व की उत्पत्ति–स्थिति लय करने वाले सर्वज्ञ–सर्व शक्ति सम्पन्न–सर्वव्यापक, नित्य–शुद्ध, बुद्ध–मुक्त स्वभाव, सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म, जो भक्तों के हृदय में आनन्दरूप से प्रकट होते हैं। समस्त संसार में जो सुखों की वर्षा करते हैं। जो समस्त ज्ञान के भंडार हैं, जो भक्तों को लौकिक तथा पारलौकिक आनन्द देते हैं, ऐसे मंगलमय शिव प्रभु के चरण कमलों में यह ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' ग्रन्थ समर्पित करके मैं आत्म संतोष का अनुभव करता हूँ।

अविनाशि अज अद्वैत मंगलधाम शिव शशिभूषणम्।
सर्वज्ञ सुखद अनादि शुभगुणधाम दारिद दूषणम्।।
सुरवृन्द मुनि मन मोदप्रद ''दयानन्द'' मंगलकारणम्।
यह दिव्य ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' सु–मंगलेश शिवार्पणम्।।

–दयानन्द

ॐ

प्रश्नोत्तर प्रदीप

विषय – सूची

विषय		पृष्ठ
ग्रन्थ समर्पण	....	3
अनुक्रमणिका	....	4
प्राक्कथन	....	7
सद्भावना	....	9
शुभाशीर्वाद, चिन्तनकणिका	....	10
सम्पादकीय	....	11
उपक्रम	....	13
प्रथम आवृत्ति की भूमिका	....	16
अपनी बात	....	19

प्रथम किरण

मंगलाचरण	....	20
काशी	....	21
तारक मंत्र	....	27
मुक्ति	....	42
शरीर और धर्म	....	46
यज्ञों में हिंसा नहीं होती	....	49
गोमेध	....	52

अश्वमेध 54
अजमेध 55
नरमेध 58
तप 61
अपवास व्रत 67
उपवास शब्द का अर्थ 69
पर्व और उत्सव 76

द्वितीय किरण

धर्म 79
धृति 83
क्षमा 84
दमः 86
अस्तेय 90
शौच 91
इन्द्रिय निग्रह 93
धी (बुद्धि) 110
विद्या 115
सत्य 121
अक्रोध 125

तृतीय किरण

वैयत्तिक और समाजिक धर्म 134
वर्णाश्रम धर्म 138

शिखा सूत्र	....	138
गोत्र प्रवर मंजरी	....	144
ब्राह्मण धर्म	....	145
क्षत्रिय धर्म	....	146
वैश्य धर्म	....	150
शूद्र धर्म	....	151
जाति–जन्म से या गुण कर्म से	....	155

चतुर्थ किरण

आश्रम धर्म	....	163
ब्रह्मचर्याश्रम	....	163
गृहस्थाश्रम	....	172
वानप्रस्थाश्रम	....	183
सन्यासाश्रम	....	184
योगपट्ट विधि	....	191
108 का स्पष्टीकरण	....	191

पंचम किरण

प्रश्नोत्तर रत्नमालिका	....	202

षष्ठ किरण

श्राद्ध और मृतात्मा	....	225

सप्तम किरण

दुर्व्यसन निषेध	....	233
उपसंहार	....	247

प्राक्कथन

महागुजरात की धार्मिक जनता स्वामी श्री दयानन्द जी के समय–समय पर प्रकाशित होने वाले धार्मिक प्रकाशनों से भाग्य से ही अज्ञात होगी। किसी प्रकार का पूर्वाग्रह मन में न रखकर प्रश्नोत्तर के रूप में तर्क और शास्त्र प्रमाणों की मदद से धार्मिक प्रश्नों का–शंकाओं का समाधान करके जनता को सन्मार्ग में प्रवृत्त करने का प्रयास बहुत ही स्तुत्य एवं यशस्वी गिना जाएगा।

प्रस्तुत प्रकाशन ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' भी श्री स्वामी जी का ऐसा ही एक स्तुत्य प्रयत्न है। पुस्तक का नाम स्वयं ही अपने विषय का प्रतिपादन कर रहा है। इसलिए इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न करके मैं जनता को इसका मननपूर्वक अध्ययन करने की सलाह दूँ, यह अधिक योग्य गिना जाएगा, ऐसा मैं मानता हूँ। वस्तुतः ऐसे सत्कार्यों के लिये पूर्व भूमिका अथवा प्राक्कथन की आवश्यकता नहीं होती तथापि स्वामीजी का यह पुरुषार्थ देखकर दो शब्द लिखने के लिये प्रेरित हुआ हूँ।

आज सच्चे धर्म–कर्म की लुप्त होती हुई प्रथा को देखकर साधारण धार्मिक जनता के सामने कुछ ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं कि जिनका शास्त्रीय एवं बौद्धिक समाधान मिलना कठिन हो जाता है तथा बहुत बार जनता विपरीत मार्ग पर चलने लगती है। प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी जी ने कुछ ऐसा ही अनुभव करके बहुत सरल भाषा में तर्क और शास्त्रीय प्रमाणों से बहुत कठिन प्रश्नों का समाधान किया है और इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक प्रजा में प्रवर्तमान अनेक अंधविश्वासों को जड़मूल से उखाड़ फैंकने में रामबाण सिद्ध होगी– ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है।

उदाहरणार्थ– अपने यहाँ प्रसिद्ध है कि काशी में मरने से मनुष्य को स्वर्ग मिलता है। परन्तु इस मान्यता का वास्तविक अर्थ क्या है यह

स्वामी जी ने बड़ी सुन्दर पद्धति से समझाया है कि इस उक्ति के पीछे छिपा हुआ तथ्य सब समझ सकें। इसी प्रकार वेदों में पशु हिंसा है? या नहीं! गोमेध– अश्वमेध आदि यज्ञों में पशु हिंसा होती थी या नहीं? वर्तमान में हिंसा करनी चाहिए अथवा नहीं? राम मन्त्र क्या है? प्रणव अर्थात् ओंकार का क्या महत्त्व है। धर्म की व्याख्या क्या है? तप, व्रत, उपवास आदि से लेकर तेल, मिर्च, खटाई आदि का होने वाला नित्य व्यवहार में प्रयोग आदि तमाम प्रकार के प्रश्नों का स्वामी जी ने इस पुस्तक में सप्रमाण स्पष्टीकरण करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

धार्मिक श्रद्धालु जनता को इस पुस्तक से बड़ा लाभ होगा इसमें जरा भी संदेह नहीं है। प्रभु स्वामी जी के इस सत्कार्य से सुयश प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

सुज्ञेषु किं बहुना?

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
स्वाध्याम मण्डल
किल्लापारडी, जिला वलसाड
ता. 24/8/59
(गुजराती से हिन्दी में अनुवाद)

सद्भावना

गोंडल राज्य (सौराष्ट्र) के निवृत्त विद्याधिकारी श्री चन्दु भाई पटेल लिखते हैं – ''स्वामी वेदपाठी जी'' के शास्त्रोक्त जीवन्त आधार वाले प्रवचन सुनने वाले कहते हैं कि ''शब्द ब्रह्म की उपासना से पर–ब्रह्म–परमात्मा प्राप्त होता है ऐसा जो बोध स्वामी जी ने दिया है वह प्रसाद रूप है उन प्रवचनों में हृदय में स्फुटित होने वाले विशिष्ट शब्द, अनोखी व्युत्पत्तियाँ, समृद्ध व्याख्याएँ, अर्थगांभीर्य वाले रूपक और कभी भी भुलाये न जा सकें ऐसे रोमांचक द्रष्टान्तों से युक्त प्रवचन मानो आर्य संस्कृति का अमर वारसा क्यों न होय?''

एक पत्र में श्री चन्दुभाई लिखते हैं–

''पूज्य स्वामी जी? आपका लिखा हुआ प्रदीप तो प्रदीप ही है। प्रश्न भी गूढ, उत्तर भी अनुरूप ही हैं। महिम्न का भाष्य पढ़ा, अति आनन्द। वेदमूर्ति पं. सातवेलकर जी का प्रदीप का अवलोकन अलौकिक। वे सर्वोत्तम कोटि के पुण्यात्मा, आपके लिए उनके अभिप्राय से आत्म संतोष हुआ।''

आपका बालक चन्दुलाल बी. पटेल

14 फरवरी 1964 गोंडल

(गुजराती से हिन्दी अनुवाद)

शुभाशीर्वाद

श्रीमत्परहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी कृत ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' पढ़कर बहुत खुशी हुई है। आप श्री ने जन कल्याण का मार्ग बताने के लिये यह ग्रन्थ लिखा है। इस रीति से जनता की कर्म–धर्म–भक्ति–ज्ञान से सेवा करते हुए आगे बढ़ो। इति शुभम्

श्री वैद्य स्वामी शिवानन्द
गीता मन्दिर – अहमदाबाद
ता. 28/10/67

चिन्तन कणिका

1. माया नाम की कामधेनु के ईश्वर और जीव ये दो बछड़े हैं वे भले ही द्वैत रूप दूध का पान करें परन्तु तत्त्व तो अद्वैत– एक ब्रह्म ही है।
2. जैसे चन्द्रिका के बिना चन्द्र प्रकाशित नहीं हो सकता तथा प्रभा के बिना भानु भानु ही नहीं। वैसे शक्ति के बिना शिव भी शिव नहीं। शक्ति युक्त शिव ही विश्व की उत्पति आदि में समर्थ होता है।
3. जो शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवों में भेद नहीं देखता वही उत्तम वैष्णव है। वे सब देव एक ब्रह्मरूप ही हैं।
4. जब मनुष्य की सब वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं तब यह मरण धर्मशील मानव यहाँ ही अमर हो जाता है।
5. 'माया सत् नहीं, असत् नहीं, उभयरूप भी नहीं' परन्तु भेद बुद्धि देने वाली अनिर्वचनीय है।

–स्वामी दयानन्द वेदपाठी

सम्पादकीय

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्री कृष्णाय वयं नुमः।।

मानव जीवन की यथार्थता – परमानन्द की अनुभूति में ही है। सुरदुर्लभ मानव शरीर भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है और इसे प्राप्तकर जो सांसारिक विषय तृष्णाओं में भटकता हुआ परमात्मा के अनुपम वरदान मानव शरीर को व्यर्थ में ही गँवा देता है उनके विषय में गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं–

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।
पाइ न जेहि परलोक सँवारा।
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ।।

अस्तु उस समय के पश्चात्ताप से कुछ भी सुधरने वाला नहीं है। शरीरपात के पूर्व ही प्रयत्नपूर्वक अपने को सुधार लेना चाहिए।

सृष्टि के आरम्भकाल से ही ऋषि– महर्षियों , महापुरुषों ने वेद, उपनिषद्, स्मृति, धर्मशास्त्र, पुराणादि ग्रन्थों में प्रवृत्ति और निवृत्ति दो मार्गों का विवेचन किया है। प्रवृत्ति मार्ग बन्धन का कारण है और निवृत्ति मार्ग मोक्ष का साधक है। वेदादि के अनुकूल प्रवृत्ति मार्ग भी निवृत्ति मार्ग में सहायक है। फिर भी परोपकार परायण सन्त महापुरुषों ने जीव के कल्याण के लिये निवृत्ति मार्ग पर ही विशेष बल दिया है।

आज के युग में मानव के पास समय का अभाव है और वह समस्त वाङ्मय का अवगाहन करने में अक्षम ही है, अस्तु सम्पूर्ण वाङ्मय (शास्त्रों) का सार–तत्त्व एक छोटे से ग्रन्थ में समाहित करने का अत्यन्त दुष्कर कार्य सामान्य जन समुदाय के उपकारार्थ उदारचेता, सर्वशास्त्र मर्मज्ञ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वेदाचार्य श्री 108 महामण्डलेश्वर अनन्तश्री विभूषित श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज ने ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' नामक ग्रन्थ में समहित कर दिया है,जिसमें अत्यन्त दुरुह–कठिन ज्ञातव्य विषयों का समाधान प्रश्नोत्तर के रूप में विभिन्न धर्मशास्त्रों के प्रमाणों से परिपुष्ट कर प्रस्तुत किया गया है। इसके अध्ययन से जिज्ञासु जनों को एक नया प्रकाश मिलेगा और अपने कर्तव्य पथ की दिशा सरलता से प्राप्त हो सकेगी।

सर्वजनोपयोगी ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' के गुजराती में कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और लोकप्रिय हुए हैं। अब हिन्दी भाषी जनता की माँग पर हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो रहा है और जन कल्याणार्थ जनता को समर्पित है।

पूज्य श्री स्वामी जी ने हिन्दी संस्करण के सम्पादन का गुरुतर भार मुझे सौंपकर गौरव प्रदान किया है –यह उनका औदार्य है। मैं श्री स्वामी जी के प्रति आभारी हूँ, इसी प्रकार सेवा का अवसर प्रदान कर मुझे कृतार्थ करते रहें– ऐसी श्री चरणों में विनम्र प्रार्थना है।

–गणेश द्विवेदी (शास्त्री)

ॐ

उपक्रम

प्रिय आत्मन्! पाठक एवं पाठिकाओं के हाथों में यह ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' ग्रन्थ समर्पित करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

ग्रन्थ का विषय तो ग्रन्थ का नाम ही प्रकट कर रहा है। शिष्य प्रश्न करता है तथा गुरुजी उत्तर देते हैं। कठिन एवं गूढतम प्रश्नों के उत्तर शास्त्रप्रमाण–श्रुति–स्मृति प्रमाण तथा अनुभूति प्रमाण से सरल एवं बोधगम्य बनाकर दिये गये हैं। आबाल–वृद्ध युवक–युवतियाँ पठित विद्वान् एवं साधारण पढ़े–लिखे अल्पश्रुत किसान एवं मजदूर वर्ग भी इस ग्रन्थ से अद्भुत लाभ एवं प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

ग्रन्थ में प्रतिपादित विषय का दिग्दर्शन तो प्राक्कथन में पण्डित श्री श्रीपाद दामोदर सातवेलकर जी ने कर ही दिया है वह देखें।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये निम्न भक्तों ने आर्थिक सहयोग देकर पुण्यकार्य किया है इन्हें धन्यवाद के साथ हार्दिक शुभाशीर्वाद देते हुए हमें आनन्द प्राप्त हो रहा है।

1100/– श्री महन्त स्वामी भक्ति पुरी जी वेदाश्रम, चाँदोद।
1100/– श्रीमती विमला देवी कैंथ, नई दिल्ली।
1100/– श्रीमती रमा द्विवेदी, कपिल विहार, पीतम पुरा, नई दिल्ली।
1100/– श्रीमती इन्दिरा देवी, श्री कैलाश खण्डेलवाल देवनगर, नई दिल्ली।
1100/– ओमप्रकाश एवं नरेश कुमार कैंथ परिवार, नई दिल्ली।
1100/– श्री देवेन्द्र भसीन, माता सत्या भसीन, नई दिल्ली।
1100/– श्रीमती शर्बती देवी, वेद प्रकाश शर्मा, बीडन पुरा नई दिल्ली।
1100/– श्रीमती भागवन्ती, कैलाश चन्द्र गोयल, नई दिल्ली।

1100/– श्री राजीव मदान, माता कमलेश मदान, नई दिल्ली।

1100/– श्रीमती संतोष, श्री जगदीश चावला, पश्चिम विहार नई दिल्ली।

1100/– श्रीमती सन्तोष रानी, श्री आत्माराम गर्चा, लुधियाना।

1100/– श्रीमती नीलम रानी, श्री पृथ्वीचन्द गर्चा, लुधियाना।

1100/– श्रीमती अन्नपूर्णा, श्री कमल नारायण त्रिवेदी, होशंगाबाद

1100/– गुप्तदान, बसंत कुञ्ज, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती सुमन, श्री नरेश कैंथ, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती कौशल, श्री अशोक कुमार कैंथ, अम्बाला टेलर्स, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती माया देवी, श्री केशवदेव खण्डेलवाल, माता कपूरी देवी आनन्द पर्वत।

501/– श्रीमती राजकुमारी, श्री राधेश्याम खण्डेलवाल, रोहिणी दिल्ली।

501/– श्रीमती सीमा देवी, श्री राधेकृष्ण खण्डेलवाल, रोहिणी दिल्ली।

501/– श्रीमती प्रमिला देवी, श्री तिलक राज, रोहिणी दिल्ली।

501/– श्रीमती सुनीता देवी, श्री सुरेश सिंघल, शिवनगर, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती कैलाश देवी, न्यु रोहतक रोड, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती सुशीला देवी, श्री छज्जुराम जी, देवनगर, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती चम्पा देवी, श्री करशन भाई पटेल, नाना पोंढा गुजरात।

501/– श्रीमती सुनीता, श्री दलीप जी द्वारिका, नई दिल्ली।

501/– स्व. श्री रामरिछपाल, श्रीमती अतरकली देवी गोयल, रो.रो. नई दिल्ली।

501/– श्रीमती कृष्णा देवी, श्री श्याम सुन्दर खेड़ा, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती रमा, श्री देवेन्द्र कुमार कैंथ, कुमार ब्रदर्स, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती दयावन्ती, श्री जेठूराम गुप्ता, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती चन्द्रकला विदुषी, रैगरपुरा नई दिल्ली।

501/– श्रीमती उमा देवी नारायण, कुन्दन प्रापर्टी डीलर, रैगरपुरा नई दिल्ली।

501/– श्री आया सिंह, माता श्रीमती शान्ति देवी, आनन्द पर्वत, नई दिल्ली।

501/– श्री बिशन लाल इलावादी, देव नगर, नई दिल्ली।

501/– श्रीमती सन्तोष रानी, श्री राम कुमार गोयल क्रिश्चियन कालोनी नई दिल्ली।

501/– श्रीमती सूरज्जकली, श्री शंकर सिंह, निहाल विहार नांगलोई नई दिल्ली।

यह ग्रन्थ पहले मैंने गुजराती भाषा में लिखा था गुजराती में ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' की दो दो हजार प्रति की तीन आवृत्तियाँ हाथों हाथ बिक गई यह ग्रन्थ की उपादयेता का प्रमाण है। कुछ भक्तों ने आग्रह किया कि ''स्वामी जी! आप ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' का हिन्दी में अनुवाद करके छपवायें तो हिन्दी जगत् का बड़ा उपकार होगा। मैंने भी स्वीकृति प्रदान की। गतवर्ष ग्रीष्मावसर में नर्मदा के पावन तट पर– तीर्थधाम चांदोद वेदाश्रम में श्री सिद्धेश्वर महादेव परिवार की छत्रछाया में मैंने इस लघु ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद किया एवं नई दिल्ली में प्रकाशित हो इस उद्देश्य से हमारे विश्वभारती वेदाश्रम ट्रस्ट, मानस मन्दिर के महामंत्री श्री गणेश शंकर द्विवेदी जी के पास हस्त लिखित ग्रन्थ भेज दिया।

श्री शास्त्री जी धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनेक कार्यक्रमों में व्यस्त रहने के कारण ग्रन्थ के अवलोकन या प्रकाशन कार्य में तुरन्त प्रवृत्त नहीं हो सके। 8/10 महिने के बाद अब श्री शास्त्री जी को कुछ समय मिला है अतः अब यह ग्रन्थ छपकर आपको प्राप्त हो रहा है, यह आपका सौभाग्य है।

श्री शास्त्री जी ने ग्रन्थ के प्रकाशन में विशेष ध्यान दिया है। प्रूफ में अशुद्धि न रहने पाये, प्रकाशन स्वच्छ एवं साफ हो। इस सम्पादन कार्य के लिये श्री गणेश शंकर शास्त्री द्विवेदी जी को जितना धन्यवाद दिया जाय कम ही है। भगवान् शिव इन्हें स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन् प्रदान करे जिससे ये ऐसी–2 असंख्य सेवाएँ करते रहें।

अन्त में सभी सहयोगी भक्तों को शुभाशीर्वाद देते हुए जनता–जनार्दन से निवेदन करता हूँ इस ग्रन्थ से आप अपने व्यावहारिक जीवन में तथा पारमार्थिक जीवन में प्रेरणा प्राप्त करें।

आपका

स्वामी दयानन्द वेदपाठी
विश्वभारती वेदाश्रम ट्रस्ट भवन
मानस मन्दिर, करोल बाग,
नई दिल्ली – 110005

वैशाख शुक्ल 5 मंगलवार
आद्य शंकराचार्य जयन्ती
वि. सं. 2060
ता. 6/5/2003

प्रथम आवृत्ति की भूमिका

व्रतानि दानानि तपांसि यज्ञाः सत्यं च तीर्थाश्रमकर्मयोगाः।
स्वर्गार्थमेवाशुभमध्रुवं च ज्ञानं ध्रुवं शान्तिकरं महार्थम्।।
यज्ञैर्देवत्वमाप्नोति तपोभिर्ब्रह्मणः पदम्।
दानेन विविधान्भोगान् ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्।।

व्रत–दान–तप–सत्य–तीर्थ सेवन–आश्रम तथा कर्मयोग, ये सब स्वर्ग के ही हेतु हैं। अतः पुनरावर्ती होने से अशुभ एवं अनित्य हैं, अकल्याणकारी हैं। परन्तु ज्ञान नित्य शन्तिकारक तथा परमार्थ स्वरूप है।

मनुष्य यज्ञों से देवत्व को प्राप्त करता है, तप से ब्रह्मलोक को पाता है, दान से अनेकविध भोगों को प्राप्त करता है तथा ज्ञान से मोक्ष को पा लेता हैं। अतः ज्ञान– प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ अपेक्षित है।

मनुष्य के मन में मल (पाप के संस्कार) विक्षेप (चंचलता) तथा आवरण (माया का परदा) ये तीन दोष रहते हैं? इन तीनों की निवृत्ति क्रमशः निष्काम कर्म, सात्विक उपासना और निर्मल ज्ञान से होती है। इसीलिए चारों वेदों के एक लाख मन्त्र कर्म–उपासना एवं ज्ञान परक होने से ''वेदत्रयी'' का सेवन करके उपर्युक्त तीनों दोषों को निर्मूल करके मोक्ष प्राप्त करना यह मनुष्यमात्र का परम कर्तव्य है।

ज्ञान–मार्ग में चित्त की शुद्धि के लिए शुभ कर्म करने की अपेक्षा रहती है। योग–मार्ग की भक्ति यानी उपासना तो सहयोगिनी ही है। ''ईश्वर–प्रणिधान'' यानी शरणागति अथवा ध्यान से समाधि की सिद्धि होती है। साधना काल में साधना की भिन्नता भले ही हो परन्तु निर्विकल्प समाधि में स्थित योगी, अनन्य प्रेम–लक्षणा भक्ति समन्वित भक्त तथा जीवन–मुक्त ज्ञानी इन तीनों की स्थिति समान ही है। योग के साधन यम–नियमादि हैं। भक्ति के साधन श्रवण–कीर्तनादि हैं। तथा ज्ञान के साधन विवेकादि एवं श्रवणादि हैं। तो भी तीनों का लक्ष्य–प्राप्तव्य पद तो एक ही सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही है। इसकी प्राप्ति के लिये मनुष्य को अनेक साधनाएँ करनी पड़ती हैं। अपनी परिस्थिति के अनुकूल–प्रतिकूल विघ्न बाधाओं को दूर करके प्रसन्नता के साथ सर्वात्मभाव प्राप्त करके मनुष्य को अपना लक्ष्य सिद्ध करना होता है। इसमें भी मन में अनेक शंका–कुशंकाएँ उत्पन्न होती हैं उनका समाधान भी करना चाहिए। ऐसा हो, तभी स्वलक्ष्य की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

ये सभी बातें ध्यान में लेकर तथा जिज्ञासु भक्तों के द्वारा समय–समय पर पूछे गये प्रश्नों के यथासमय में दिये गये उत्तरों को लक्ष्य में रखकर उन्हें ही यहाँ **''प्रश्नोत्तर प्रदीप''** ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने का प्रयास किया है। यह ग्रन्थ का नाम ही बता रहा है। **''प्रश्नोत्तर प्रदीप''** अर्थात् अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाला **''ज्ञान दीपक''**। इस ग्रन्थ में अनेक जटिल प्रश्नों के उत्तर देकर मानव धर्म का वास्तविक स्वरूप बताया गया है। यह ग्रन्थ सात प्रकरणों में विभक्त है। ग्रन्थ का नाम **'प्रदीप'** प्रकरण का नाम **'किरण'** रखा है, यह सार्थक है। ग्रन्थ के विषय को प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा गया है। अनन्त प्रश्नों के उत्तर श्रुति, स्मृति, दर्शन, पुराण एवं युक्ति प्रमाणों से दिये गये हैं। भाषा सरल सर्वगम्य तथा अर्थ की गहनता को ध्यान में रखकर प्रतिपाद्य विषय का स्पष्टीकरण सुन्दर रूप से करने का लक्ष्य रखा गया है, जिससे पढ़ने वाले पाठक के मन का समाधान सरलता से होकर उसे अपने कर्तव्य का भान सहज में हो जाय।

विशेष में पारडी स्वाध्याय मण्डल के अध्यक्ष वेदमूर्ति श्रीमान् पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवेलकर जी ने मेरी यह छोटी पुस्तक देखकर इसका प्राक्कथन लिखकर पुस्तक को गौरवान्वित किया है एवं प्रवचन के द्वारा वे जो विश्व की सेवा कर रहे हैं इसकी मैं विशेष सफलता की कामना करता हूँ। योग्य ध्यान रखने पर भी कहीं प्रूफ की अशुद्धि रह गई हों तो सुज्ञ पाठकवृन्द सुधार कर पढ़ेंगे, ऐसा विश्वास है।

पाठकवर्ग इस पुस्तक को अपना कर प्रेय–श्रेय सिद्ध करेगा ऐसी शुभेच्छा एवं विश्व कल्याण की शुभ भावना के साथ इतनी भूमिका देकर विराम लेता हूँ।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।

–स्वामी दयानन्द वेदपाठी
वेदाश्रम चांदोद (गुजरात)
भाद्रपद शुक्ल–8 ता. 20/9/58
(गुजराती से हिन्दी अनुवाद)

अपनी बात

इस पुस्तक की गुजराती भाषा में 2–2 हजार की तीन आवृत्तियाँ छप चुकी हैं परन्तु अब पुस्तक अप्राप्त है। पहले यह पुस्तक मैंने हिन्दी में लिखी थी। बाद में गुजराती में अनुवाद करके प्रथम आवृत्ति भावनगर, द्वितीय आवृत्ति अहमदाबाद तथा तृतीय आवृत्ति पारडी स्वाध्याय मण्डल से प्रकाशित हुई थी, अब गुजराती का ही अनुवाद करके यह पुस्तक हिन्दी में छप रही है यह हिन्दी जगत् का सौभाग्य है।

–स्वामी दयानन्द वेदपाठी

कुण्डलिया छन्द

सम्वत सहस्र चतुर्दश प्रिय मधुमास पुनीत।
शुक्ल पूर्णिमा शुक्रदल रेवातट शिव प्रीत।।
देवातर शिव प्रीत प्रतीत प्रणाम प्रशंसा।
प्रश्नोत्तरमय ग्रन्थ बनाऊँ कृपा करो शिव सत्वर।।
''दयानन्द'' शुभ–सु–मन सनातन धर्म पुष्ट हो संतत।
शाश्वत दीपक ज्योति जगे नित पक्ष मास प्रति सम्वत्।।

प्रश्नोत्तर प्रदीप

ग्रन्थकारकृत मंगलाचरणम्

नित्यं निराकारमनन्तरूपं सूक्ष्मं विभुं व्यापकमद्वितीयम्।
विश्वाश्रयं विश्वजनैकवन्द्यं वन्दे चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।।
गिरां गणेशं स्वगुरुं प्रणम्य शिवं सु–नत्वा करुणैकमूर्तिम्।
प्रश्नोत्तरं दिव्यमहं करोमि शिवप्रसादाय मनःसुखाय।।

जो नित्य, निराकार, देशकाल वस्तुकृत परिच्छेद से रहित, अनन्त–सूक्ष्म–समर्थ–सर्व व्यापक तथा स्वगत आदि भेदत्रय वर्जित है, जो समस्त विश्व का अधिष्ठान तथा विश्व मानव के द्वारा एकमात्र वन्दनीय है, जो अलौकिक तथा अति अद्भुत है, उस सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म को मैं वन्दन करता हूँ।

विद्या की अधिष्ठात्री देवी माता सरस्वती, बुद्धि विज्ञानप्रद श्री गणेश जी, निर्मल ज्ञान देने वाले अपने सद्गुरुदेव को प्रणाम करके 'करुणामूर्ति' कल्याणकारी भगवान् शिव को अति नम्र भाव से नमस्कार करके उन्हीं भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिये (तथा जनता के धार्मिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिये) मैं इस दिव्य ''प्रश्नोत्तर प्रदीप'' लघु ग्रन्थ की रचना करता हूँ।

प्रश्नोत्तर प्रदीप

प्रथम किरण

काशी

काशी–मरणान्मुक्तिः

प्रश्न– काशी में मरने वाले की मुक्ति होती है क्या?

उत्तर– हाँ, काशी में भगवान् शिव तारक ॐ मन्त्र का उपदेश मुमूर्षु को करते हैं, जिससे मरने वाले को मुक्ति मिलती है।

प्रश्न– काशी तो यही है न, जो उत्तर प्रदेश में गंगा किनारे पर बसी है, जो वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध है। तो क्या इसी भौतिक काशी में मरने वाले को मुक्ति मिलती है?

उत्तर– नहीं, भौतिक स्थूल काशी में मरने से मुक्ति नहीं मिलती।

प्रश्न– ऊषरं कर्मशस्यानां क्षेत्रं वाराणसी पुरी।
यत्र संलभ्यते मोक्षः समं चाण्डालपण्डितैः।।

कर्मरूप बीजों के लिये वाराणसी ऊषर भूमि है जहाँ चाण्डाल एवं पण्डित दोनों समान मुक्ति प्राप्त करते हैं। तो क्या यह सत्य है?

उत्तर– यह बात वेद–शास्त्र एवं बुद्धि विरुद्ध होने से मान्य नहीं है।

प्रश्न– तो वेद–शास्त्र सम्मत बुद्धिगम्य कौन सी काशी है, जहाँ मरने से सबको मोक्ष मिलता है?

उत्तर– वेद–वेदान्त जनित अपरोक्ष ज्ञान ही काशी क्षेत्र है। ज्ञान होने पर सबको मोक्ष की प्राप्ति होती है वह चाहे जो भी हो और ज्ञान मनुष्य शरीर में ही हो सकता है। 'काशी पंचक' में आदि शंकराचार्य जी क्या अच्छा लिखते हैं पढ़िये–

''काशी क्षेत्रं शरीरं त्रिभुनजठरे व्यापिनी ज्ञानगंगा''

विचित्र ऐसी अद्भुत रचना वाला यह शरीर ही काशी क्षेत्र है। तीन भुवनों में ओत–प्रोत रूप से व्यापक, जो ज्ञान है यही श्री गंगा जी हैं। और भी कहा है–

काश्यां हि काशते काशी, काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका।।

शरीर रूप या नगर रूप से प्रसिद्ध स्थूल–जड़ काशी में चेतन ज्ञानरूप सूक्ष्म काशी प्रकाश रही है। यानी चेतन रूप काशी सब शहर, सब लोक और सब पदार्थों को प्रकाशित करती है। जिस महानुभाव ने यह स्वयंप्रकाश–स्वरूप अन्तरात्मा–स्वरूप काशी को जाना है उसी ने काशी को प्राप्त किया है। आशय यह है कि जो शरीर–इन्द्रियाँ–प्राण मन–बुद्धि सहित समस्त विश्व को प्रकाशित करती है वही परमात्मा की ज्ञानशक्ति, जो चितिशक्ति है वही काशी है। अब यह निश्चय हो गया कि– शरीर एवं संसार को प्रकाशित करने वाली चितिशक्ति ही काशी है जिसमें स्थित होने वाले को मोक्ष मिलता है।

स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण ये तीन शरीर हैं इन तीनों में वही ज्ञानरूपी गंगा बहती है। कहा भी है –

जाग्रत–स्वप्न–सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते।
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी।।

जो संवित् यानी आत्मा की ज्ञानरूप शक्ति जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में स्पष्टतर फैली हुई है, जो जगत् की साक्षीरूपा है, ब्रह्मा से लेकर चींटी तक सब शरीरों में अनुस्यूत है। इसे प्राप्त करके ही मानव मुक्त होता है। यही काशी है।

गोपालदास व्यास ने भी यही बात स्वरचित काश्यष्टक में कही है। देखिये–

विशुद्धविज्ञानघनां चिदात्मिकां मोहाटवीं चैव दावाग्निभूताम्।
शुद्धां सुशान्तां शिवभक्तिदायिनीं शिवप्रियां वै प्रणमामि नित्यम्।।

(काश्यष्टक–5)

विशुद्ध विज्ञानघना मोहरूपी वन को जलाने के लिये दावानल रूप, शिव भक्ति देने वाली जो शुद्धा, शान्ता, शिव की प्रिया है ऐसी चैतन्यात्मिका काशी को मैं प्रणाम करता हूँ। यहाँ उमारूपा शिव की चितिशक्ति को ही काशी कहा है।

यजुर्वेद में भी भगवान् शिव से प्रार्थना की गई है–

या ते रुद्र शिवातनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तन्वाशन्तमया गिरिशन्तामिचाकशीहि।।

(यजुः 16/2)

अन्वयार्थ– **रुद्र** = हे ज्ञानप्रदेश्वर! हे दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाले देव! **ते** = आपका यह जो **तनुः** = शरीर, **शिवा** = कल्याणकारी **अघोरा** = सौम्य, **अपापकाशिनी** = पापियों का नाश करने वाली माया रहित ज्ञान को प्रकाशित करने वाली मूर्ति है, **तया शन्तमया** = उस सुखमय **तन्वा** = शरीर या ज्ञानरूप चैतन्यात्मिका आत्मशक्ति से हमें हे ''**गिरिशन्त अभिचाकंशीहि**'' ज्ञानमयी मंगलरूप दृष्टि से अवलोकन करें।

ज्ञानरूप शिरोभाग या सहस्रार ब्रह्मरन्ध्र ही कैलास गिरि है, उसमें निवास करने वाले स्वयंप्रकाश कल्याणमय शिव से प्रार्थना है कि हे प्रभो! आपकी जो ज्ञानरूपा सर्वप्रकाशिका काशीरूपा शक्ति है, जो दिव्य एवं आनन्दस्वरूपा है उसी से 'आप हमें सब ओर से देखें, जिससे हम सब दोषों से छूट कर मंगलमय हो जायें।' इस मन्त्र में चैतन्य आत्मतत्त्व को ही काशी कहा है, जो नित्य मुक्त है। आत्मज्ञान होने पर कैवल्य मोक्ष होता है इसमें शंका नहीं है। अतएव स्थूल जड़ काशी में मोक्ष की इच्छा वाले भक्तों को ज्ञानरूपी काशी प्राप्त करके मुक्त होना चाहिये।

इस विषय में काशी पंचक पढ़ने योग्य है–

काशी–पंचक

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः, सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगंगा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।।

संकल्प–विकल्परूप मनकी निवृत्तिरूप जो संसार की परम उपशान्ति है, वही सब तीर्थों में श्रेष्ठ मणिकार्णिका तीर्थ है। और **'अहं ब्रह्मास्मि' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म'** इत्यादि ब्रह्माकार ज्ञानरूप वृत्तियों का सतत प्रवाह ही निर्मलता आदि गुणों वाली श्री भगवती गंगा जी हैं और अखण्ड अद्वितीय आत्मस्वरूप का अपरोक्ष अनुभव ही श्री काशी जी हैं। वही स्वप्रकाश ब्रह्मरूप काशी मैं हूँ।

यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालम्, चराचरं भाति मनोविलासम्।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा, सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।।

जिस सर्वाधिष्ठान ब्रह्मरूप काशी में यह समस्त नामरूपात्मक जगत् इन्द्रजाल के समान कल्पित है। यानी रस्सी में सर्प की तरह अध्यस्त है। इसलिये वस्तुगत्या न होता हुआ भी यह चराचर विश्व, केवल मन की अविद्यामयी कल्पनाओं से ही दिखाई दे रहा है। सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप एक अद्वितीय परमात्मतत्त्व अखण्ड अनुभवरूप जो स्वप्रकाश काशी है वही मैं हूँ।

कोशेषु पंचस्वधिराजमाना, बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम्।
साक्षी शिवः सर्वगतोऽन्तरात्मा, सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।।

प्रत्येक प्राणी के देहरूपी गृह के अन्नमय, प्राणमय मनोमय–विज्ञानमय एवं आनन्दमय रूपी पाँच कोशो में विवेक विचार वाली जो बुद्धि है, वही साक्षात् भवानी–पार्वती है। और सर्वत्र सदा परिपूर्ण सबका अन्तरात्मा साक्षी–कूटस्थस्वरूप जो शिव है, वही स्वप्रकाश अखण्ड–साक्षात्काररूप काशी है, वही मैं हूँ।

काश्यां हि काशते काशी, काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन, तेन प्राप्ता हि काशिका।।

शरीररूप या नगररूप से प्रसिद्ध स्थूल–जड़ काशी में चेतन रूप सूक्ष्म काशी प्रकाश रही है। चेतन रूप काशी समस्त विश्व को प्रकाशित करती है। जिस विवेकी ने उसे स्वयं ज्योतिस्वरूपा अन्तरात्मारूप काशी को जान लिया है, उसने ही वास्तव में काशी की प्राप्ति की है।

काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजठरे व्यापिनी ज्ञानगंगा।
भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः।।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकलजनमनः साक्षीभूतोऽन्तरात्मा।
देहे सर्वं मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत्किमस्ति।।

यह अद्भुत रचना वाला शरीर ही काशी क्षेत्र है, तीनों भुवनों में ओत–प्रोत रूप से व्याप्त होकर स्थित जो चेतन ज्ञान है, वही श्री गंगा जी हैं, उस चेतन–तत्त्व में अनन्य भक्ति और सात्विक श्रद्धा ही श्री गया तीर्थ है। अद्वैत ब्रह्मात्मतत्त्व के उपदेशक श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु के चरणों में ध्यान योग ही श्री प्रयाग तीर्थ है। तथा सकल प्राणियों के सभी ही मनों का साक्षीरूप निर्विकार जो तुरीय अन्तरात्मा है, वही श्री काशी विश्वेश्वर भगवान् हैं। इस प्रकार जब मेरे देह रूपी काशी में ही सब असली तीर्थ बसते हैं, तब मुझे अन्य स्थूल नकली तीर्थों की क्या आवश्यकता है? यानी स्थूल तीर्थ का सेवन सूक्ष्म तीर्थ के साक्षात्कार के लिये है, जब सूक्ष्म तीर्थ का साक्षात्कार हो जाता है तब स्थूल तीर्थों की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे भोजनजन्य तृप्ति के लिये प्रथम पत्तल, दोना आदि का ग्रहण किया जाता है जब तृप्ति हो जाती है, तब उन पत्तल आदि को फेंक दिया जाता है

प्रश्न– तो क्या काशी आदि प्रसिद्ध तीर्थ तीर्थरूप नही है?

उत्तर– काशी आदि स्थूल तीर्थ संसारासक्त मनुष्यो के लिये तीर्थ रूप है, वे उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त करने के लिये अवलम्बनरूप हो जाते हैं। विरक्त विद्वान् ज्ञानी महापुरुष स्थूल तीर्थों से सन्तुष्ट नहीं होते, परन्तु वे तो आत्मतीर्थ में अवगाहन करके आत्मानन्द प्राप्त करते हैं। प्रत्येक स्थूल तीर्थ का पर्यवसान सूक्ष्मतीर्थ में ही होता है।

प्रश्न– शास्त्र में लिखा है कि 'काशी जी को भगवान् श्री शंकर जी ने अपने त्रिशूल पर धारण किया हुआ है। अतः प्रलय मे भी उसका नाश नहीं होता' तो क्या यह सत्य है?

उत्तर– इसका भी आध्यात्मिक रहस्य है। कोई भी बुद्धिमान मनुष्य स्थूल काशी को अविनाशी है, ऐसा स्वीकार नहीं कर सकता।

प्रश्न– कृपया आध्यात्मिक रहस्य समझाइये?

उत्तर– भगवान् श्री शंकर जी कल्याणस्वरूप हैं, सबके आत्मा हैं। स्वयं प्रकाशस्वरूप तथा सबके साक्षी हैं, उनका त्रिशूल है– सत्त्व–रज एवं तमो गुण, जो त्रिगुणात्मिका माया के स्वरूप हैं। उनके ऊपर काशी को रखा है। यानी मायातीत महेश्वर ने अपनी आत्मचेतनारूप काशी को त्रिगुण के ऊपर रखा है अर्थात् गुणातीत भाव में स्थित किया है, जिससे आत्मचेतना रूप काशी का प्रलय काल में भी नाश नहीं होता। अतः **चैतन्यात्मतत्त्व ही काशी है**, जो अविनाशी है। जैसे स्थूल काशी मे स्थूल गंगा जी का प्रवाह है वैसे चेतन काशी में **ब्रह्माकार वृत्तिरूप ज्ञानगंगा** का प्रवाह है। जैसे स्थूल गंगा निर्मल है, अन्यों को निर्मल करती है। ऐसे ज्ञानगंगा स्वयं परम पवित्र है तथा सबको पवित्र करती है। गीता मे कहा है– **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।** ज्ञान के समान इस ससांर में कोई भी वस्तु पवित्र नहीं है। अतः जिस महापुरुष को सर्वोत्तम ज्ञानमय आत्मतीर्थ की प्राप्ति हो गई उसको लौकिक स्थूल तीर्थो की आवश्यकता नहीं रहती। लौकिक तीर्थ वैराग्य–विवेक–तितिक्षा–मुमुक्षा– सत्संगति आदि के द्वारा आत्मतीर्थ प्राप्ति में सहायक हैं। जब तीर्थों का तीर्थ महान्–व्यापक विशुद्ध आत्मतीर्थ की प्राप्ति हो गई तब स्वभाव से ही स्थूल–परिच्छिन्न तीर्थ अपने आप छूट जाते हैं छोड़ने नही पड़ते। गीता मे कहा भी है–

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। (गीता 2/46)

जैसे सब तरफ से परिपूर्ण जलाशय की प्राप्ति होने पर मनुष्य को पानी के लिए छोटे जलाशय की आवश्यकता नही रहती, वैसे ही ब्रह्म को जानने वाले ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण अथवा ब्रह्मसंस्थ संन्यासी को ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होने पर आनन्द के लिए तुच्छ विषयों की आवश्यकता नही रहती। ऐसी आत्मचेतनारूप काशी में ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तारक मन्त्र

प्रश्न– तारक मन्त्र कौन सा है।?

उत्तर– तारक मंन्त्र (ॐ) ओंकार है।

प्रश्न– क्या राम मन्त्र तारक मन्त्र नही है?

उत्तर– राममन्त्र अर्वाचीन तथा पौरणिक है। ऐसे तो साधक जिस मन्त्र का जप तथा अनुष्ठान करके बन्धन से छूट कर भवसिन्धु से तर जाये उसके लिए वही तारक मंत्र है। परन्तु वेद में राम–कृष्ण आदि मंत्रों को कहीं भी तारक मंत्र नहीं कहा है। वेद–उपनिषदों में सर्वत्र **ओंकार** की ही महिमा का वर्णन उपलब्ध होता है। उसे ही तारक मंत्र कहा है। वेद में राम–कृष्ण ये नाम तो कहीं भी ईश्वर के लिए प्रयुक्त नहीं हुए हैं इसलिए वैदिकों का तारक मन्त्र ओंकार ही है अन्य नहीं **''नमस्ताराय''** (यजु. 16/41) **''तारयति संसारादिति तारः ओंकारस्तस्मै नमः''** ससांर से तारने वाले ओंकार रूप परमेश्वर को नमस्कार है।

''ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्'' (श्वे. 2/8)

ओंकाररूप नौका से विद्वान् भवसागर से पार उतरे।

युंजीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्मनिर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्।।

(माण्डूक्य का. 1/25)

चित्त को ओंकार में समाहित करे, ओंकार निर्भय ब्रह्मपद है। ओंकार

में नित्य समाहित रहने वाले पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता।

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः।
अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययः।।

(माण्डूक्य का. 1/26)

ओंकार ही परंब्रह्म है और ओंकार ही अपरब्रह्म माना गया है। वह ओंकार अपूर्व (कारण रहित) अन्तर्बाह्य शून्य, अकार्य तथा अव्यय है। वही सबका आदि, मध्य और अन्त है। प्रणव को इस प्रकार जानकर साधक तद्रूपता को प्राप्त हो जाता है। प्रणव को ही सबके हृदय मे स्थित ईश्वर जाने। इस प्रकार सर्वव्यापी **ओंकार** को जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता। किसी से भयभीत नहीं होता। शोक सागर से तर जाता है। इस प्रकार विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय ओंकार से होते हैं, सब ओंकार रूप हैं। ओंकार को जानने वाला ज्ञानी संसार से तर जाता है। यह सिद्ध हुआ।

प्रश्न– नचिकेता यमराज से पूछता है कि 'जो सर्वातीत वस्तु है। जो धर्म से पृथक् है, अधर्म से पृथक् है, और जो कार्य कारणरूप प्रपंच से भी पृथक् हैं और जो भूत तथा भविष्य से भी अन्य है।' ऐसे आप जिस तत्त्व को जानते हैं वह मुझे कहें?

उत्तर– इसके उत्तर में यमराज ने नचिकेता को तारक मन्त्र ओंकार का ही उपदेश दिया है। पढ़िये–

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।

तथा– एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।

(कठ. 1/2/15–17)

सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति के साधन कहते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्षुजन ब्रह्मचर्य पालन करते हैं, उस पद को मै तुमसे संक्षेप में कहता हूँ। ''**ओम्**'' यही वह पद है, यह ओंकार अक्षर है– यह ही पद है, इस अक्षर ओंकार को ही जानकर जो जिसकी इच्छा करता है वही उसका हो जाता है। क्योंकि यह ओंकार अक्षर ही श्रेष्ठ आलम्बनों है, पर आलम्बन है, इसे जानकर पुरुष, ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है। यह ओंकार रूप आलम्बन गायत्री रामादि सब आलम्बनों से ब्रह्म प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ एवं अधिक प्रशंसनीय है। पर और अपर ब्रह्म की प्राप्ति ही इसका फल है। यहाँ ब्रह्मलोक से तात्पर्य परब्रह्म में स्थित होना है। पहले ''**अन्यत्र धर्मात्**'' इत्यादि मन्त्र से नचिकेता द्वारा पूछे गये सर्व विशेष रहित आत्मा के तथा मन्द और मध्यम उपासकों के लिये अपरब्रह्म के प्रतीक और आलम्बनरूप से ओंकार का निर्देश किया गया है अतः आत्मसाक्षात्कार–ब्रह्मसाक्षात्कार यानी मोक्ष प्राप्ति का उत्तम साधन ओंकार है यही तारक मंत्र है।

प्रश्नोपनिषद् में ओंकार की उपासना तथा ज्ञान से परब्रह्म और अपरब्रह्म की प्राप्ति का कथन है। इस विषय में शिवि का पुत्र सत्यकाम पिप्पलाद मुनि से प्रश्न करता है–

स यो ह वै तद्भगवन्? मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत।
कतमं वाव स तेन लोकं जयति।। (प्रश्न. उ. 5/1)

प्रश्न– हे भगवन्? मनुष्यों में जो कोई पुरुष मरण पर्यन्त ओंकार का चिन्तन करता है, वह किस लोक को जीतता है?

उत्तर– पिप्पलाद मुनि ने उत्तर दिया है सत्य काम!

एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतने नैकतरमन्वेति।। (प्रश्न. उ. 5/2)

यह जो ओंकार है यह निश्चय ही परमब्रह्म है (शुद्ध सच्चिदानन्द

अक्षर ब्रह्म है) तथा हिरण्यगर्भरूप अपर ब्रह्म भी है। अतः विद्वान् आत्मप्राप्ति के इस ओंकार चिन्तनरूप साधन से ही पर या अपर किसी एक ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि ओंकार ही ब्रह्म का सबसे अधिक समीपवर्ती आलम्बन है। तात्पर्य यह है कि समष्टि ओकारं के माध्यम से अभेद भाव से ब्रह्म का ध्यान करके साधक मुक्त हो जाता है। (प्रश्नोपनिषद् विशेष द्रष्टव्य)

इस प्रकरण से यह सिद्ध हो गया है कि **''ओंकार ही तारक मन्त्र है।''** यहाँ यजुर्वेद का निम्न मन्त्र देखने योग्य है–

ॐ क्रतो स्मर। क्लीबे स्मर। कृतं स्मर। (यजुर्वेद. 40/15)

अर्थ–हे संकल्पात्मक मेरे मन! अब तू ओंकार का स्मरण कर। जिससे तेरी मुक्ति हो जाये। तथा अपनी योग्यता शक्ति एवं प्रणव साधनरूप अधिकार का स्मरण कर तथा बन्धन मे डालने वाली अविद्यायुक्त अपनी **'क्लीबता'** का स्मरण करके उसका त्याग कर, अपने समस्त शुभाशुभ कर्मों को भी ओंकार परमात्मा में समर्पण कर दे तथा ओंकार का स्मरण करके मुक्त हो जा। यह मृत्यु के समय का वेद का उपदेश है तदनुसार ओंकार को सर्वोत्तम निवेदन कर भक्त ओंकार मे ही लीन हो जाता है, भवसिन्धु से तर जाता है, मुक्त हो जाता है। यही बात गीता में कही है– **''सर्वद्वाराणि संयम्य''** सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर यानी विषयों से हटाकर मन को हृदय में स्थिर करके तथा अपने प्राण को मस्तक में स्थापित करके योग धारणा में स्थिर होकर–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। (गीता 8/13)

जो पुरुष **'ॐ'** इस एक अक्षररूप ब्रह्म का उच्चारण करता और उसका अर्थ स्वरूप मेरा चिन्तन करता–करता शरीर का त्याग करके जाता है। वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है। इत्यादि श्रुति स्मृतियों

के प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि ''तारक मंत्र ओंकार'' ही है।

प्रश्न– तारक मंत्र ओंकार ही है इसमें अन्य श्रुति स्मृतियों के प्रमाण देकर समझाने की कृपा करें।

उत्तर– प्रमाण तो शास्त्रों में भरे पड़े हैं, उत्तम अधिकारी को तो एक शब्द ही काफी है परन्तु कनिष्ठ एवं मध्यम अधिकारी के लिये थोड़े प्रमाण देता हूँ–

नमस्ताराय। (यजु:16/41)

संसार से तारने वाले तारक मंत्र व्यापी रुद्र देव को नमस्कार हो।

ओंकारः स्वर्गद्वारम् (आपस्तम्ब धर्मसूत्र)

ओंकार स्वर्ग का द्वार है।

शब्दानां प्रवरो मंत्रः। (म. भा. 12–11–11)

वेदों में प्रणव ही श्रेष्ठ मंत्र है।

'ॐ क्रतो स्मर' (ईश. 17)

हे मन, ओंकार का स्मरण कर।

ओंकाररथमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम्।

(म. भा. 13/16/44)

ज्ञानी जन ओंकार रूप रथ में बैठकर महेश्वर में प्रवेश करते है।

तस्य वाचकः प्रणवः– (योग द. 1/24)

ब्रह्म का नाम प्रणव है।

तज्जपस्तर्थभावनम् (योग दः 1/25)

प्रणव का जप करो और उसके अर्थ यानी रूप का ध्यान करो।

अक्षरं ब्रह्म परमं (गीता 8/2)

अक्षर यानी अविनाशी ओंकार ही ब्रह्म है।

अक्षरेण (ऋग्वेद 10/16/6)

ओंकार रूप अक्षर से संसार को तर जाओ।

य: ओंकार: स प्रणवो य: प्रणव: स सर्वव्यापी य: सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्मेति स एक:। (अथर्वशिरो. 41)

जो ओंकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है,जो सर्वव्यापी है, वह अनन्त है, जो अनन्त है वह तार है, जो तार है वह सूक्ष्म है, जो सूक्ष्म है, वह शुक्ल है, जो शुक्ल है वह विद्युत है, जो विद्युत है, वही परब्रह्म है, वह एक है।

देखो, इस प्रकरण मे ओंकार के अनेक पर्याय शब्द हैं, जिनमें 'तार' शब्द भी आया है जिसका अर्थ संसार सागर से तारने वाला होता है, जो ओंकार रूप ब्रह्म का वाचक है। इस प्रकार अनेक प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि ओंकार ही तारक मंत्र है।

"स विज्ञेय:" वह विशेष रूप से जानंने योग्य है, उपासनीय है। इसका उपासक मुक्त हो जायेगा, इसमें शंका नही है, यही तारक मंत्र है।

प्रश्न– **गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण के बालकाण्ड में नाम माहात्म्य में ''राममंत्र'' को ही तारक मंत्र लिखा है और कहा है कि काशी में मरणकाल में श्री शंकर जी तारक मंत्र का उपदेश देते हैं, जिससे मरने वाले की मुक्ति हो जाती है ?**

महामंत्र सोइ जपत महेशू। काशी मुकुति हेतु उपदेशू।।

उत्तर– धन्य हैं आप, शंकर जी मृत्यु काल मे राम मंत्र नहीं अपितु तारक मंत्र ओंकार का ही उपदेश करते हैं। देखिये–

अत्र हि जन्तो: प्राणेपूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतिभूत्वा मोक्षी भवति।। (जाबाल उ. 5)

यहाँ काशी में प्राणों के उत्क्रमण काल मे रुद्र तारक ब्रह्म ओंकार

का उपदेश करते हैं, जिससे वह अमर होकर मुक्त हो जाता है।

प्रश्न– प्रणव भी तो राम से ही उत्पन्न हुआ है इससे राम ही तारक मंत्र है? देखिए–

रामनाम्नः समुम्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः।
रूपं तत्त्वमसेश्चासौ वेदतत्त्वाधिकारिणः।।

अर्थात् मोक्ष देने वाला प्रणव रामनाम से उत्पन्न हुआ है। और वेद के अधिकारी के लिये 'तत्त्वमसि' रूप है।

उत्तर– नहीं, यह बात नही है, सृष्टि क्रम को देखते हुए तो राम ही ओंकार से उत्पन्न हुआ है, यह सिद्व होता है।

ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ।।

''ओंकार'' और ''अथ'' ये दोनों शब्द सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके प्रकट हुए हैं अतः ये दोनों मंगल–रूप है। (इन्ही से अन्य शब्द प्रकट हुए हैं)

प्रश्न– परन्तु अध्यात्म रामायण में महादेव जी श्रीराम से कहते हैं–
अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमुर्षुमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम।।

हे राम! मैं आपके नाम का जप करते–करते पार्वती सहित काशी में रहता हूँ और मरते हुए प्राणी की मुक्ति के लिये 'हे राम' इस आपके नाम का उपदेश करता हूँ। इससे यह सिद्ध होता है कि काशी में मरने वाले प्राणी को शिवजी राम मंत्र का उपदेश करते है, यही तारक मंत्र है।

उत्तर– नहीं–नहीं, शिव पुराण में शिव ही प्रणव तथा प्रणव ही शिव है ऐसा कहकर शिव स्वयं ही अपने स्वरूप 'प्रणव' का उपदेश देकर जीव को कृतार्थ करते हैं ऐसा कहा है–

शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः।।

(शि. पु. 3/3/14)

शिव ही प्रणव है तथा प्रणव ही शिव है। वाच्य–वाचक में भेद नहीं है। अद्वैत है। देखो, यहाँ तो शिव स्वयं ही प्रणव एवं तारक बन गये। आगे चलकर वे कहते हैं–

एतमेव महामंत्रं जीवानां च तनुत्यजाम्।
काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः।।
तस्मादेकाक्षरं देवं शिवं परमकारणम्।
उपासते यतिश्रेष्ठा हृदयाम्भोजमध्यगम्।।

(शि. पु. 6/13/63)

शिवजी ने कहा– यह ओंकार मंत्र काशी में मृत्यु के समय जीवों को मैं सुनाता हूँ। तथा अन्त में उन्हें उत्तम सुख देता हूँ। अपने हृदय–कमल में यतिजन ओंकार रूप शिव देव की उपासना यानी ध्यान करते हैं। अतः ओंकार तारक मंत्र है। मत्स्य पुराण में भगवान् स्वयं ही कहते हैं–

अहमेकाक्षरो मंत्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः।

एकाक्षर प्रणवमंत्र मैं ही हूँ। तीन अक्षर यानी अ. उ. म् ये तीनों मायिक हैं इनसे भिन्न तारक अर्थात् शुद्ध तुरीयतत्त्व शिव मैं हूँ। तारक हूँ। **प्रणवः शिव ईरितः** प्रणव ही शिव कहा है।

प्रश्न– अधिकार भेद से किसको किस मंत्र का जप करना चाहिए?

उत्तर– ब्रह्मचारियों, गृहस्थियों तथा वानप्रस्थियों को तथा द्विजातियों को प्रणव सहित तीन महाव्याहृतियों से युक्त गायत्री मंत्र का जप करना चाहिए। केवल संन्यासियों को ही ओंकार का जप करना चाहिये।

प्रश्न– रामायण आदि में प्रतिपादित राम आदि मंत्रों का जप करें तो क्या हानि या लाभ?

उत्तर– मंत्र जप से कोई हानि नहीं होती, अपितु लाभ ही लाभ है। सभी मंत्र अपनी शक्ति के अनुसार फलप्रद हैं। अज्ञानी जगत् के ऊपर गोस्वामी तुलसीदास का बड़ा उपकार है, जिनके प्रबल पुरुषार्थ से लाखों–करोडों मनुष्य राममंत्र का जप करके मनोरथ सिद्धि प्राप्त करते हैं। अतः तुलसीकृत रामायण भी एक कल्पतरु ही है। रामायण का एक–एक पात्र अपनी–अपनी निराली ही शिक्षणात्मक भूमिका को लेकर चला है। इन पात्रों के अनुसार यदि लोग अपना जीवन बना लें तो संसार सुखी हो जाय और आज ही रामराज्य स्थापित हो जाय। व्यवहार की शिक्षा के साथ रामायण में परमार्थ की भी अच्छी शिक्षा दी गई है।

प्रश्न– राम मंत्र को ही तारक मंत्र मान लें, तो क्या आपत्ति है?

उत्तर– आप मान लो। मंत्रो की भिन्न–भिन्न कोटियाँ होती है। सबसे श्रेष्ठ वैदिक मंत्र, उनसे कनिष्ठ ब्राह्मण भाग एवं आरण्यक भाग के मंत्र हैं, उनसे कनिष्ठ स्मृति मंत्र, उनसे उतरते पौराणिक मंत्र हैं। राम मंत्र भी पौराणिक ही है। अतः वेद मंत्रो की तुलना में तो हलका ही है। तांत्रिक मंत्र और भी हलके होते हैं। इनमें भी दक्षिण तंत्र से वाम–तंत्र हल्के होते हैं। अतएव वैदिक मंत्रो की सर्वश्रेष्ठता के विषय में कोई शंका नहीं है। अतः ओंकार सहित तीन महाव्याहृतियों से युक्त गायत्री मंत्र का जप सब द्विजों के लिए कल्याणकारी है। ओंकार मंत्र मंत्रो में शिरोमणि है। यह सबका कल्याण करने में समर्थ है।

प्रश्न– वैराग्यहेतुः परमो रकारः कथ्यते बुधैः।
आकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो मुक्तिहेतुकः।। (महारामायण)

अर्थ– राम नाम वैराग्य–ज्ञान तथा भक्ति का कारण होने से महत्वपूर्ण है। **'र'** कार वैराग्य का हेतु है यह कर्म वासनारूप लकड़ियो को जलाने के लिये अग्निरूप है। **'आ'** कार ज्ञान हेतु है क्योंकि यह मोह रूपी अन्धकार को मिटाने के लिये सूर्यरूप है। तथा **'म'** कार भक्ति का हेतु है, क्योंकि वह जीव के संताप को मिटाने के लिये चन्द्र रूप

है। इस प्रकार रामनाम की महिमा अत्यन्त बढ़ जाती हैं तो फिर इसे तारक मंत्र मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर– अरे भाई ! आप भी बड़े विचित्र हो। राममंत्र पौराणिकों का तारक मंत्र है यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ। मैं तो यह कहता हूँ कि ओंकार मंत्र सब मत्रों में श्रेष्ठ, वेद मंत्र है, वेदों में ओंकार को ही तारक मत्रं के रूप में प्रतिपादन किया गया है यह ज्ञानियों के लिये है, परन्तु राममंत्र सर्वसामान्य जनों के लिये है, इसमें कोई विवाद नहीं है। वैदिक तारक मंत्र ओंकार ही हैं यह मेरा मत है।

प्रश्न– ओंकार की सामर्थ्य क्या है?

उत्तर– ओंकार तो समस्त वेदों का सारभूत है, ब्रह्माद्वैत का प्रकाशक तथा सर्वात्मक है। ओंकार का उच्चारण समस्त वेदों के उच्चारण के समान है उसका निरूपण सम्पूर्ण वेदार्थ निरूपणात्मक है। भूत–भविष्य और वर्तमान सब ओंकार ही है। ओंकार के समान शोधक **'शुद्धिकारक'** तथा मुक्तिप्रद और कोई मंत्र नही है ओंकार को प्रणव भी कहा है। यह प्रकृति के प्रपंचार्णव से तरने के लिये रमणीय नाव है, मुक्तिप्रद है। श्रुति स्मृतियों में इसे प्रणव कहा है। शिव पुराण में इसकी विशेष व्याख्या हैं। देखिए–

प्रो हि प्रकृतिजालस्य संसारस्य महोदधे।
नवं नावान्तरं रम्यं प्रणवं वै विदुर्बुधाः।।
प्र–प्रपंचो न नास्ति वो युस्माकं च बोधयन्।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं यः प्रणवं विदुः।।

(विद्येश्वरी संहिता 17/5)

'प्र' प्रकृति से संसाररुप समुद्र तथा **''नव''** संसार समुद्र से तरने की नाव–नवीन नौका, यानी प्रणव संसार समुद्र से पार होने के लिये नवीन नाव है। तथा प्रणव स्वयं ही कहता है कि– **'प्र'** प्रपंच–संसार **'न'** नहीं है **'व'** आपके लिये, यानी मुझ प्रणव का श्रद्धा भक्ति पूर्वक

जप करने वाले आप साधकों के लिये संसार बन्धन नहीं है। प्रणव साधकों को बलात् बन्धन से छुड़ाकर मोक्ष में ले जाता है। प्रणव का जप करने वाले योगियों साधकों के पापों को नष्ट करके बन्धनों को पार कर **'नव'** यानी नूतन ज्ञान देकर **'शिव'** बना देता है। शिव को नूतन कहा है। **'प्रणव'** दिव्य ज्ञान देकर **'नूतन'** नवीन–शिव बना देता है अतः नित्य नियम से प्रणव का जप करें।

प्रणव को स्थूल और सूक्ष्म ऐसे दो प्रकार का कहा है। **'नमः शिवाय'** यह मंत्र स्थूल प्रणव है। एकाक्षर मंत्र **ॐ** यह सूक्ष्म प्रणव है। भोग और मोक्ष के लिये स्थूल प्रणव का जप करना चाहिये तथा जीवन्मुक्ति के लिये सूक्ष्म प्रणव का जप करना चाहिए।

सूक्ष्म प्रणव को **'ह्रस्व'** तथा **'दीर्घ'** ऐसे दो प्रकार का कहा है। जो **''अ–उ–म्''** कार रूप प्रणव है यह **'ह्रस्व'** प्रणव है तथा अकार उकार मकार तथा बिन्दु–नाद–शब्द–काल और कला से युक्त है वह दीर्घ प्रणव है। अकार उकार तथा मकार रूप से जो ह्रस्व प्रणव है वह शिव शक्ति का अभिन्नरूप माना गया है, वह सब पापों को नष्ट करता है। निष्पाप होने की इच्छा वालों को ह्रस्व प्रणव का जप करना चाहिए। मुक्ति की इच्छा वालों को दीर्घ प्रणव का जप करना चाहिए। जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति की इच्छा वालों को **'ऊँ नमः शिवाय ऊँ'** इस महामंत्र का जप करना चाहिए। यह मंत्र ही तारक मंत्र है। सब वेदों में प्रणव को ही तारक मंत्र कहा है। गीता में भी श्रीकृष्ण ने ओंकार को अपना स्वरूप कहा है। **''प्रणवः सर्ववेदेषु''** सम्पूर्ण वेदों में **'प्रणव'** हूँ। यही प्रणव यानी ओंकार तारक मंत्र है।

प्रश्न– वेद मंत्रों का क्या प्रभाव है?

उत्तर– प्रणव के समान ही वेदों के सब मंत्र अपूर्व ज्ञान दिव्य शक्ति एवं अलौकिक विज्ञान से भरपूर हैं, कल्याणमय हैं। प्रत्येक मंत्र का अर्थ जानकर उसका अनुष्ठान करने पर ही इच्छित फल प्राप्त किया जा

सकता है। जिस किसी मंत्र का अनुष्ठान करना हो, उस मंत्र के ऋषि–छन्द देवता विनियोग एवं विविध प्रकार के न्यास आदि जानकर ज्ञानपूर्वक अनुष्ठान करने पर अवश्य ही साध्य की सिद्धि होती है।

वेद में शिव–विष्णु–भगवान्–इन्द्र–मित्र–वरुण–अग्नि–वायु आदि ईश्वर वाचक अनन्त नाम आये हैं, तथा अन्य तत्त्वों पदार्थों के भी नाम आये हैं जो सब अनुष्ठेय हैं। जिस मंत्र में जिस तत्त्व या देव का नाम हो, वर्णन हों उसकी उपासना करने से भवसागर से तरा जा सकता है। अतः सब वेद मंत्र तारक मंत्र हो सकते हैं।

प्रश्न– **उदाहरणार्थ वेद में से शिव आदि कुछ ईश्वर वाचक नामों का अर्थ समझाने की कृपा करें।**

उत्तर– सुनो ''**ॐ नमः शिवाय**'' (यजुः 16/41) मगंलमय कल्याणकारी शिव को नमस्कार तथा ''**विष्णोः कर्माणि पश्यत** '' (यजुः 6/4) व्यापक परमात्मा के सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति आदि विलक्षण कर्मो को देखो। ''**तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः**'' (यजु. 6/5) उस व्यापक विष्णु के परम पद का ज्ञानी जन नित्य दर्शन करते हैं इसके अनुसार '**ॐ विष्णवे नमः**' यह मंत्र वैदिक होने से कल्याणकारी है। **विष्णवे त्वा**। (यजुः 5/21) हे सर्वव्यापक विष्णु! मैं आपकी प्रसन्नता के लिये आपकी उपासना करता हूँ। तथा इन्द्र भगवान् आदि नाम भी ईश्वर वाचक हैं यथा ''**इन्द्रो विश्वस्य राजति**'' (यजुः 36/8) ऐश्वर्यवान् परमात्मा सम्पूर्ण विश्व के ऊपर शासन करता है। ''**इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा**'' (यजु. 8/37) वरुण राजा तथा इन्द्र सम्राट है। ''**भग एव भगवाँ २।। अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्त स्याम**'' हे देव! आप ऐश्वर्य सम्पन्न होने से भगवान् हैं। आपका (समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य) ऐश्वर्य हमें प्रदान करें, जिससे हम भी भगवान् बनें। आपके द्वारा दिये हुए पृथ्वी आदि तत्त्व, अन्न विविधरत्न सुवर्णादि, धन, गौ–हाथी आदि उत्तम पशुधन, स्त्री पुत्र तथा बन्धु बान्धव आदि सब प्रकार का धन प्राप्त करके हम सब

प्रकार से सुखी हों, ऐश्वर्यवान् बनें। अस्तु इस प्रकार उदाहरण के तौर पर आपकी इच्छानुसार ईश्वर के दो चार नामों के निर्देश कर दिये हैं।

प्रश्न– द्विजों को ईश्वर के किस नाम का जप करना चाहिये?

उत्तर– द्विजों को गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए। प्रणव तथा भूः आदि तीन महाव्याहृति सहित ब्रह्मस्वरूपिणी गायत्री का जप हमेशा करना चाहिये। गायत्री के जप से सब पापों का क्षय होकर ज्ञान की प्राप्तिपूर्वक ऐहिक सुख प्राप्ति के साथ अन्त में आनन्दतत्त्व बह्म की प्राप्ति होती है। गायत्री तो चारों वेदों का सार है–

यथा च मधु पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते।।

जैसे पुष्पों का सार मधु, दूध का सार घी और रस का सार दूध है, वैसे सब वेदों का सार गायत्री है। गायत्री जीव ब्रह्म की एकता के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करती है। तथा मानव के सब मनोरथों को सिद्ध करती है।

प्रश्न– गायत्री मंत्र किस प्रकार ब्रह्म का बोधक है?

उत्तर– गायत्री मंत्र शुद्ध ब्रह्म का मंत्र होकर उसी को लक्ष्य कराता है। **''तत्त्वमसि''** महावाक्य में ब्रह्म को लक्ष्य कराने वाला 'तत्' पद गायत्री में वर्तमान है, जो लक्ष्यार्थ में शुद्ध ब्रह्म का बोधक है। तथा इस मंत्र में आया हुआ सवितुः पद विशिष्ट ब्रह्म का बोधक है परब्रह्म तथा अपर ब्रह्म इन दोनों को शुद्ध ब्रह्म और विशिष्ट ब्रह्म कहा गया है। शुद्ध ब्रह्म माया रहित चेतन है, जो निर्विशेष–निरवयव–शान्त–निर्गुण–निराकर है। माया तथा माया के कार्यरूप जगत् का अधिष्ठान है। गायत्री मंत्र में इसी ब्रह्म को लक्ष्य कराने वाला 'तत्' पद पड़ा है। ब्रह्म का जो मायाविशिष्ट रूप है, जो सगुण निराकार है, वह मायाविशिष्ट चेतन है, जो माया को अपने आधीन करके सर्वतंत्र स्वतंत्र है। सर्वज्ञत्व

आदि गुणविशिष्ट हैं, यही ईश्वर है, जो विश्व की उत्पत्ति आदि करता है, सर्वशक्तिसम्पन्न है, जो सर्वद्रष्टा तथा सर्वकर्ता है, जो ज्ञानस्वरूप होने से निर्भ्रान्त है। समस्त जीवों के शुभाशुभ कर्मों का साक्षी तथा उनके कर्मों का फल देने वाला है। वही अपर ब्रह्म **ईश्वर** या **ईश्वर चेतन** कहा जाता है। इसके बोधक गायत्री मंत्र में ''**सवितुः**'' पद है, जो अपने सनातनधर्म में पूज्य पंचदेवों का समन्वित रूप है। **गणेश–शिव–शक्ति–विष्णु** और **सूर्य** यें पंचदेव हैं। इनका बोध '**सवितुः**' पद से होता है। ये पाँचों देव समान–ज्ञान शक्ति आदि से सम्पन्न हैं। इनमें कोई छोटा–बड़ा नहीं है सब समान हैं, विशिष्ट ब्रह्म हैं, ब्रह्म स्वरूप हैं, प्रत्येक साधक के द्वारा पूज्य हैं। इन पंचदेवों में से जिस साधक का जो इष्टदेव हो वह '**सवितुः**' शब्द से अपने इष्ट देव की पूजा व ध्यान करके मुक्त हो सकता है। इस प्रकार गायत्री मंत्र परब्रह्म तथा अपर ब्रह्म का ज्ञान कराने वाला है।

प्रश्न– गायत्री मंत्र कोई देवी का मंत्र तथा कोई सूर्य का मंत्र है ऐसा कहते हैं तो क्या यह सच है?

उत्तर– नहीं, वेद मंत्र यौगिक हैं। उनको किसी एक अर्थ में या देव विशेष में बाँधा नहीं जा सकता। अतः देवी के उपासक गायत्री मंत्र से देवी की उपासना, सूर्योपासक सूर्योपासना, शिवोपासक शिवोपासना, वैष्णव भक्त विष्णु की उपासना एवं गणेशोपासक गायत्री के माध्यम से गणेश की उपासना कर सकते हैं, यह उचित है। देव भेद करना अनुचित है ये सब देव ब्रह्म स्वरूप हैं, ये परोक्षज्ञान से सब गायत्री द्वारा उपास्य हैं।

पुरश्चरण करने से गायत्री मंत्र सिद्ध हो जाता है, जो साधकों की समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ है। भोग तथा मोक्ष दोनों ही देता है। इस मंत्र को विधि–विधान–पूर्वक सद्–गुरु से ग्रहण करके इसका पूजन जप ध्यान– होम–हवन–तर्पण–मार्जन–ब्रह्म भोजन आदि कर कराके प्रेय तथा श्रेय प्राप्त कर सकता है। विश्वामित्र व्यास–वशिष्ठ आदि ऋषियों ने गायत्री का जप ध्यान आदि करके ही

अनन्त ज्ञान शक्ति आदि प्राप्त किये थें। आप भी प्राप्त कर सकते हैं। संध्या काल में ब्रह्मा आदि देवता भी गायत्री का जप तथा ध्यान करते हैं इसी से वे सृष्टि की उत्पत्ति आदि का ज्ञान तथा सामर्थ्य प्राप्त करते हैं।

प्रणव को अक्षर ब्रह्म कहा है वह सब मंत्रों में प्रधान है। अन्य ईश्वर वाचक नामों के आगे ओंकार जोड़ने पर वे नाम मंत्र हो जाते हैं। ओंकार न जोडने पर वे नाम नाम ही रहते हैं। मंत्र नही होते ओंकार जोडने पर ईश्वर वाचक नाम–मंत्र होकर साधकों को धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष देने में समर्थ हो जाते हैं। अतएव गुरुजन शिष्यों को ओंकार व्याहृति तथा शिरः संयुक्ता गायत्री आदि मंत्रों का उपदेश करते है।

सन्यासियों को भी शुद्ध ब्रह्मस्वरूप गायत्री का अर्थानुसन्धान पूर्वक जप करना चाहिए।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च शतमष्टोत्तरं जपेत्।
वानप्रस्थो यतिश्चैव सहस्रादधिकं जपेत्।।

गृहस्थ और ब्रह्मचारी नियम पूर्वक गायत्री का 108 बार जप करें। तथा वानप्रस्थी और संन्यासी हजार से भी अधिक जप करें। गायत्री मंत्र के जप में प्रथम प्रणव तीन महाव्याहृति के साथ मन्त्र तथा अन्त में प्रणव लेने का विधान है, परन्तु गृहस्थियों को और ब्रह्मचारियों को अन्त में प्रणव नहीं लेना चाहिये। अन्त में प्रणव लेने से उनकी लौकिक उन्नति नहीं होती।

अन्ते यः प्रणवं कुर्यात् नाऽसौ वृद्धिमवाप्नुयात्।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि प्रणव गायत्री आदि वेद मंत्र परब्रह्म परमात्मा के वाचक हैं तथा परमात्मा वाच्य है। अतः वाच्य–वाचक का अभेद है। अतः साधकों को अभेदोपासना करनी चाहिये। इससे उनका जन्म मरण का चक्र छूट जायेगा।

मुक्ति

प्रश्न– तारक ओंकार मंत्र अथवा वेद के किसी भी मंत्र से प्राप्त होंने वाली मुक्ति का क्या स्वरूप है? वह मुक्ति स्वाभाविक है या नैमित्तिक?

उत्तर– वाह जी वाह! आप बड़े बुद्धिमान हैं अच्छे प्रश्न करते हैं। अब अन्तर सुनिये– वेद वेदान्त आदि शास्त्रों की सहायता तथा सद्गुरु की कृपा से **'अहं ब्रह्मास्मि'** आदि वाक्यों के माध्यम से अपरोक्ष ज्ञान–दृढ़ होने पर जो मुक्ति होती है वह नित्यमुक्ति है, स्वाभाविक है। परन्तु कुछ द्वैतवादी मुक्ति आदि को नैमित्तिक भी मानते हैं। वास्तव में अविद्या के आवरण से जिसको अपने स्वरूप की विस्मृति हुई है ऐसे जीवात्मा को ज्ञान के द्वारा अपने स्वरूप की स्मृति होना और स्व–स्वरूप में अखण्ड स्थिति होना ही **मुक्ति** है। ज्ञान होनें पर जीवन्मुक्ति होती है बाद में देह का विलय होने पर **कैवल्य–मोक्ष** होता है। जिसको **विदेह मुक्ति** कहते हैं।

प्रश्न– जीवन्मुक्त के क्या लक्षण है?

उत्तर– जीवित अवस्था में ही काम–क्रोध–शोक–मोह आदि अविद्या के दोषों से छूट जाना तथा आत्मानन्द में निमग्न रहना ये जीवन्मुक्त के लक्षण हैं।

न रिवद्यते नो विषयैः प्रमोदते न सज्जते नापि विरज्यते च।
स्वस्मिन्सदा क्रीडति नन्दति स्वयं निरन्तरानन्दरसेन तृप्तः।।

जीवन्मुक्त महापुरुष प्रतिकूल विषयों के प्राप्त होने पर दुःखी नहीं होता तथा अनुकूल विषयों के मिलने पर आनन्दित नहीं होता। विषयों में आसक्त नही होता तथा प्रारब्धवशात् प्राप्त भोगों से विरक्त भी नहीं होता, वह तो निरन्तर आत्मानन्द से तृप्त होकर स्वयं अपने स्वरूप में ही क्रीडा करते हुए आनन्दित होता है।

जीवन्मुक्त पुरुष हर्ष–शोक–मोह–माया को छोड़ कर शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से स्थूल सूक्ष्म आदि शरीरों को भूलकर सब संकल्पों से

रहित होकर तुरीय आत्म–पद में स्थित हो जाता है, उसके स्थूल शरीर के प्रारब्ध कर्म का भोग पूर्ण होने पर मूल अज्ञान का नाश होने के कारण देहपात के बाद उसका आत्मा शुद्ध ब्रह्म के स्वरूप में स्थित हो जाता है तब उसे **विदेह मुक्त** कहते हैं।

प्रश्न– **स्वर्ग की प्राप्ति तथा ऐसे उत्तम लोकों की प्राप्ति, सालोक्य–सामीप्य–सार्ष्टि–सायुज्य आदि की प्राप्ति को भी मोक्ष ही कहते हैं न ?**

उत्तर– कहते तो हैं, परन्तु ये सब अद्वैत वेदान्त सम्मत नहीं हैं। कर्म प्रधान पूर्व मीमांसक स्वर्ग की प्राप्ति को ही मोक्ष मानते हैं। वैष्णव लोग वैकुण्ठ की प्राप्ति को सालोक्य मोक्ष होना कहते हैं।

प्रश्न– **सालोक्य आदि चार प्रकार की मुक्ति का स्वरूप बताने की कृपा करें।**

उत्तर– भगवान् के समान लोक की प्राप्ति को **''सालोक्य''** मुक्ति कहा है। जैसे राजा की राजधानी में रहना वैसे भगवान् के वैकुण्ठ में, साकेत–अक्षरधाम–गोलोक आदि में निवास होना यह **सालोक्य मुक्ति** है। भगवान् के समीप में रहना **सामीप्य मुक्ति** है। जैसे राजा के सेवक उसके पास रहते हैं। भगवान् के समान रूप प्राप्त करना यह **'सारूप्य'** मुक्ति है भगवान् की सृष्टि में रहना यह **'सार्ष्टि'** मुक्ति है। इसमें रहकर भगवान् के समान ऐश्वर्य–सत्य–संकल्प आदि प्राप्त होतें हैं ये चार प्रकार की मुक्ति वस्तुतः मुक्ति ही नहीं है एक.प्रकार की दासता है। तथा ऐसी मुक्ति मानने से भगवान् भी परिच्छिन्न सिद्ध होते हैं, जो वेद–वेदान्त को मान्य नहीं हैं।

प्रश्न– **वेद वेदान्तादि शास्त्रों पर अनेक आचार्यों ने भाष्य–टीका आदि लिखे हैं और उन्होंने अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रमाण तथा युक्तियों से श्रुति स्मृतियों के अर्थो का प्रतिपादन करके किसी ने नैमित्तिक तथा किसी ने स्वाभाविक मुक्ति मानी है तो क्या सब के सिद्धान्तों का समन्वय हो सकता है?**

उत्तर– सबका समन्वय होना तो संभव नहीं है, किसी का किसी अंश में समन्वय हो सकता है, यह बहुत विचारणीय विषय है।

प्रश्न– कौन कौन आचार्य तथा दार्शनिक मुक्ति का क्या स्वरूप मानते हैं? यह बताने की कृपा करें।

उत्तर– **न्याय दर्शन** के रचयिता महर्षि गौतम मानते हैं कि प्रमाण प्रमेय आदि सोलह पदार्थों के तत्त्व–ज्ञान से अनात्मभूत देहादि में आत्मा की जो मिथ्या ज्ञानरूप भ्रान्ति है उसकी जब निवृत्ति हो जाती है तब रागादि दोषों की निवृत्ति होने पर शुभाशुभ कर्मों की निवृत्ति हो जाती है। इस निमित्त के अभाव में नैमित्तिक अनेक योनियों में जन्म की निवृत्ति और उससे गर्भवास से लेकर मृत्यु पर्यन्त के सब दुःखो की निवृत्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद द्रव्य–गुण–कर्म–सामान्य–विशेष और समवाय इन छह पदार्थों के ईश्वरानुग्रहवश यथार्थ ज्ञान से दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होना ही मोक्ष है, यह मानते है।

सांख्यवादी कपिल मुनि प्रकृति पुरुष के विवेक प्रत्यय से मुक्ति मानते है।

योगदर्शनकार महर्षि पतंजलि ईश्वर की कृपा से जीव अष्टांग योग का अभ्यास करके अपना अज्ञान नष्ट करे, तब आत्मा बुद्धि आदि से भिन्न दुःखों से रहित होकर स्व–स्वरूप में स्थित हो जाय– इसी को मुक्ति मानते है।

पूर्व मीमांसक मानते हैं कि मनुष्य धर्माधर्म का यथावत परिज्ञान प्राप्त करके अधर्म का त्याग करके धर्मानुष्ठान करके स्वर्ग लाभ कर लें यही मुक्ति है।

वेदान्त दर्शनकार व्यास जी– ज्ञान के द्वारा यह जीव स्वरूप की स्थिति प्राप्त कर ले– यही मोक्ष है अथवा अद्वैतवाद में अविद्या–कामना तथा कर्म की उपादान भूत कारण रूप अज्ञान की निवृत्ति होने

पर आत्मा की अपने ब्रह्म स्वरूप में स्थिति होने को ही मोक्ष माना है।

विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज के मत में जगत् का कर्ता वासुदेव पद वाच्य परमात्मा की उपासना से मोक्ष होता है– ऐसा माना है।

द्वैतवादी मध्वाचार्य स्वतन्त्र ईश्वर तथा जीव का पारस्परिक भेद ज्ञान होने से मुमुक्षु सांसारिक दु:खों से छूट कर दु:खरहित आनन्द का उपभोग करता है। ईश्वर के साथ प्रमोद करता है– यही मोक्ष है– ऐसा मानते हैं।

शुद्धाद्वैतवादी बल्लभाचार्य की मान्यता है– अग्नि और विस्फुलिंग के समान अविद्यारूप उपाधिरहित शुद्ध जीव और मायारहित परमात्मा का ऐक्य होने पर जीव को गोलोक की प्राप्ति होना ही मोक्ष है।

इस प्रकार आस्तिक आचार्यों के मुक्ति विषयक विचारों का संकेत ही किया है।

नास्तिकों में **बौद्ध 'सर्वं क्षणिकं सर्वं दु:खम् सर्वं स्वलक्षणम् सर्वं शून्यम् शून्यम्'** इस प्रकार भावनाचतुष्टय सिद्ध हो– वह परम पुरुषार्थ है यानी सब क्षणिक है, सब दु:खात्मक है, सब स्वलक्षण है और सब शून्य है। ऐसी भावना चतुष्टम से मोक्ष हो सकता है– ऐसा बौद्धों का कथन है।

जैन सम्पूर्ण कर्म बन्धन से छूटकर असंगरूप से जीव की स्थिति होना– यही मोक्ष है। ऐसा मानते हैं।

मुक्ति के सम्बन्ध में यहाँ जो थोडे सिद्धान्त दर्शाये है ये सब संकेतमात्र हैं। मुक्ति यह बड़ा गहन विषय है। साधकों को दर्शन ग्रन्थों के द्वारा गुरुजनों की सन्निधि में बैठकर विचार करने का यह विषय है।

प्रश्न– महर्षि दयानन्द सरस्वती जी मुक्ति का क्या स्वरूप मानते हैं? कृपया बतलावें।

उत्तर– वे आत्मा, परमात्मा तथा प्रकृति को नित्य मानते हैं। और जीवात्मा जब ब्रह्म की उपासना करता है। तब उपासना की सिद्धि के रूप में सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में प्रवेश करता है। और उसमें स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करता हुआ ब्रह्म का आनन्द भोगता है, परन्तु जीव भाव मिटता नहीं हैं। ब्रह्मानन्द का भोग ही मोक्ष है। फिर यह जीवात्मा मोक्ष में से कारक पुरुष के रूप में ससांर में जन्म ले लेता है। यह उनका मत है।

शरीर और धर्म

प्रश्न– शरीर प्रथम है या धर्म?

उत्तर– **धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम्।** (चरक)

ऐसे तो धर्म ही प्रथम है क्योंकि जन्म जन्मान्तरों से जीवात्मा के साथ सत्य धर्म का सम्बन्ध है तथा इस शरीर से तो अभी सम्बन्ध हुआ है, तो भी धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। धर्म का सम्बन्ध मन से है, मन का बुद्धि से, बुद्धि का आत्मा से तथा आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है। इसलिए धर्म की रक्षा के लिए ही शरीर है अतः शरीर मन आदि का स्वस्थ होना आवश्यक है तभी धर्मानुष्ठानपूर्वक मानव प्रेय तथा श्रेय सम्पादन कर सकता है।

प्रश्न– शरीर प्रथम या धर्म? इसका अधिक स्पष्टीकरण करें।

उत्तर– हाँ, शरीर और धर्म का अनादि काल से परस्पर कार्यकारणभाव है। अतः प्रथम कौन? ऐसा प्रश्न करना अनुचित है। जैसे वृक्ष और बीज– बीज में से वृक्ष तथा वृक्ष से बीज होता देखा जाता है परन्तु इन दोनों में पहला कौन? यह प्रश्न असंगत है। प्रवाह रूप से दोनों अनादि हैं, दोनों का कार्य कारण भाव है। शरीर से धर्मानुष्ठान होता है, अनेक प्रकार के शुभाशुभ कर्म होते हैं उनसे सुख–दुःख आदि का उपभोग होता है। इस प्रकार धर्म से शरीर शरीर से धर्म का प्रवाह चलता है।

जैसे ''सृष्टि और प्रलय'' इन दोनों में से पहला कौन? जन्म मरण में से भी पहले कौन? यह प्रश्न नहीं बनता, ये सब प्रवाह रूप से अनादि हैं।

प्रश्न– कार्य कारण भाव का क्या अर्थ है?

उत्तर– जो किया जाय उसे कार्य कहते हैं वह फलभाव है। और जो करता है उसे कारण कहते है, वह बीजभाव है।

प्रश्न– शरीर का क्या लक्षण हैं?

उत्तर– **चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्** (न्याय दर्शन 1/1/11)

चेष्टा–इन्द्रियाँ और अर्थ (विषय) के आश्रय रूप शरीर हैं, जिसके आधार पर इच्छित पदार्थों को ग्रहण करने की चेष्टा होती है, जो इन्द्रियों का तथा अर्थों का आश्रय–आधार है, जिसके आधार से इन्द्रियाँ अपने विषयों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति करती हैं। तथा इन्द्रियसन्निकर्षोत्पन्न ज्ञान जन्य सुख–दुःख के भोग का जो कारण रूप है, वह शरीर है।

प्रश्न– शरीर कितने हैं और उनके नाम क्या हैं?

उत्तर– शरीर तीन हैं। स्थूल–सूक्ष्म और कारण ये इनके नाम हैं।

प्रश्न– ये शरीर केवल जीव के ही हैं या ईश्वर के भी हैं?

उत्तर– ये जीव और ईश्वर दोनो के हैं। अनादि अविद्या जीव का कारण शरीर है तथा माया ईश्वर का कारण है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेद्रियाँ, पंच प्राण तथा मन और बुद्धि ये सत्रह तत्व मिलकर जीव का सूक्ष्म शरीर है तथा समष्टि सूक्ष्म शरीर ईश्वर का सूक्ष्म शरीर है। पंचीकृत पंच महा–भूतों से उत्पन्न पच्चीस तत्वों का समुदाय एक शरीर जीव का स्थूल शरीर है तथा सब स्थूल शरीरों का समुदाय ईश्वर का स्थूल शरीर है। इनमें व्यष्टि समष्टि का भेद है।

एक स्थूल शरीर में तद्रूपता का अभिमान करने वाला जीव

विश्व कहलाता है। समष्टि स्थूल शरीर में तद्रूपता करने वाला ईश्वर **वैश्वानर** कहलाता है। एक सूक्ष्म शरीर में तद्रूपता वाला जीव तैजस तथा समष्टि सूक्ष्म शरीरों का अभिमानी ईश्वर **हिरण्यगर्भ** कहलाता है। एक कारण शरीर में आत्माभिमान करने वाला जीव **प्राज्ञ** तथा समष्टि कारण शरीरों में तादात्म्यभाव वाला चेतन **ईश्वर** कहलाता है। जीव और ईश्वर में समष्टि व्यष्टि का भेद है। ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अज्ञ है। ईश्वर स्वतंत्र है, जीव परतंत्र है। जीव कर्मों का कर्ता है, ईश्वर फल देता है। ईश्वर सृष्टि कर्ता है, जीव द्वैत का कर्ता एवं भोक्ता है। जीव जब ईश्वर की भक्ति करता है, तब बन्धन से छूटता है। कर्म करना और फल भोगने का जीव का चक्र चलता रहता है। ईश्वर की भक्ति से या अपरोक्ष ज्ञान से इसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न– **धर्म की क्या व्याख्या है?**

उत्तर– धर्म की व्याख्या इसी पुस्तक में आगे की जायेगी यहाँ तो अपने–अपने वर्णाश्रमधर्मों का पालन करना ही धर्म है।

प्रश्न– **एक मनुष्य बीमार पड़ा, उसे डाक्टर से दवा लेने को कहा। उसने कहा– 'मैं डाक्टर से दवा नहीं लूँगा यह हमारे धर्म के विरुद्ध है।' धर्म का सम्बन्ध तो मन के साथ है तो फिर दवा लेने में क्या आपत्ति है?**

उत्तर– निःसन्देह डाक्टर की दवा से धर्मभ्रष्ट हो जाते है। क्योंकि डाक्टर लोग दवा में अण्डा आदि अभक्ष्य पदार्थ डालते हैं, जिससे बुद्धि भ्रष्ट होती है। ज्ञानतंतु क्षीण होते हैं ऐसा होने पर सूक्ष्म आत्मतत्त्व समझ में नहीं आता, मन चंचल होकर सांसारिक प्रवृत्तियों में फँस जाता है अतः मनुष्य ईश्वर प्राप्ति रूप अपने लक्ष्य से चूक जाता है।

प्रश्न– **गृहस्थियों को रोग निवारणार्थ तथा स्वास्थ्य लाभ के लिये डाक्टर की दवा लेने में कोई दोष नहीं दिखता।**

उत्तर– शास्त्रों में लिखा है कि ''सुरां न पिबेत्, मांसं न भक्षयेत्'' मद्यपान न करे। मांस न खाये। अतः जिन दवाओं में शराब अण्डे या मछली

का तेल अथवा पशु आदि की चर्बी या मांस आदि हो ऐसी दवाएँ एवं ऐसे पदार्थ त्याज्य हैं।

प्रश्न– तो क्या बीमार ही रहें?

उत्तर– बीमार क्यों रहें, आरोग्यता के लिये आयुर्वेद शास्त्र में अनेक प्रकार की हिंसा–रहित, मद्य–मांस रहित, मन बुद्धि को शुद्ध करने वाली, स्वास्थ्यप्रद ओषधियों का वर्णन है उनका संयमपूर्वक योग्य अनुपान तथा पथ्यपूर्वक सेवन करके रोग मुक्त होना चाहिये।

प्रश्न– आयुर्वेद किस वेद का उपवेद है तथा उसका क्या अर्थ है?

उत्तर– आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है तथा उसका अर्थ निम्न प्रकार है–

आयुर्हिताहितं व्याधेः निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदः स उच्यते।।

मनुष्य की आयु, उसका हित–अहित, रोग का कारण, स्वरूप और उसके नाश का उपाय जिस शास्त्र में हो उसे विद्वानों ने **आयुर्वेद** कहा है। आयुर्वेद में रोग–नाश तथा स्वास्थ्य–लाभ के लिए अति उत्तम ओषधियों का वर्णन है। शल्य–चिकत्सा तथा सृष्टि विज्ञान भी विस्तृत रूप से आयुर्वेद में उपलब्ध है। अतः उपयोगिता समझकर इसका गहन अध्ययन करना उचित है। इसके लिये प्रयत्न तथा संशोधन पूर्वक ज्ञान प्राप्त करने से प्रेय–श्रेय सिद्ध हो सकता है।

गोमेध आदि यज्ञों में हिंसा नही होती

प्रश्न– वेदो में तो गोमेध, अश्वमेध, अजमेध आदि यज्ञों मे गाय, घोड़ा बकरे आदि को मार उनके हवन करने का विधान है। तो फिर आप हिंसायुक्त होने से डाक्टर की दवा त्याज्य क्यों बताते हैं।? क्या वैदिक हिंसा, हिंसा नहीं है?

उत्तर– धन्य है आपकी बुद्धि को, जो आपको वेदो में गाय आदि को मारकर हवन करने की विधि मिल गई। कोई वेद मंत्र तो प्रमाण देना था।

प्रश्न– हाँ लीजिये–

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते।
प्रीताह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम्।।

(अथर्ववेद 10/9/4)

जो शतौदना गाय को मारकर उसका मांस पकाता है। उसका मनोरथ सिद्ध होता है उसके पितृ प्रसन्न होते हैं तथा वे स्वर्ग में जाते हैं।

उत्तर– धन्य हैं आप! आपने अर्थ का अनर्थ कर डाला। इस मंत्र का अर्थ यह नही है, सच्चा अर्थ निम्न प्रकार है– इस मंत्र में ''**यः शतौदनां पचति**'' यह वाक्य है इसका अर्थ है, ''जो शतौदना को पाल–पोषकर पुष्ट करता है, परिपूर्ण बनाता हैं उसका मनोरथ सिद्ध होता है और वह स्वर्ग में जाता है उसके पितर प्रसन्न होते हैं।'' अतः यहाँ, गो सेवा का व्रत लेना, ऐसा है। वेद में हिंसा का घोर विरोध है।

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्त।

(अथर्ववेद 7/5/5)

मूर्ख याजक श्वान तथा गाय के अंगो से विविध यज्ञ करते हैं। यहाँ यज्ञों में हिंसा करने वाले याज्ञिकों को मूर्ख याजक कह कर हिंसा का निषेध किया है। अथर्ववेद के दशवें काण्ड में जिन जिन मंत्रो में '**पच्**' धातु का प्रयोग है उन्हे देखकर नासमझ लोग वेदों में हिंसा करने का विधान है– ऐसा मानने लगते हैं तथा कहने लगते हैं। यह उनकी मूढ़ता है तथा ऐसा मानना मिथ्या है। उन मंत्रो में ''**पक्तारं पक्तारः–पचति**'' आदि पद हैं। इन सब में '**पच्**'– धातु है जिसके कई अर्थ हैं– (1) पकाना (2) सेंकना–भूँजना (3) पचना, पचाना (4) पकना, पकाना (5) परिपूर्ण बनाना (6) पिघलना, पिघलाना आदि। इन सब अर्थों में यहाँ परिपूर्ण बनाना यही अर्थ सारे सूक्त में प्रयुक्त हुआ है। यह मानने पर ही अर्थ की संगति बैठती है। उदाहरणार्थ–

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने।।

(अथर्ववेद 9/10/7)

हे देवि! हे गौ! जो लोग तुम्हें पुष्ट करने वाले हैं और तुम्हे शान्ति देने वाले हैं वे तेरी रक्षा करेंगे। हे शतौदने! तू उनसे भय न कर ! ''शमितारः में **'शम्'** धातु है। जिसके ''शान्त करना, देखना, बध करना, प्रकट करना'' आदि अनेक अर्थ हैं। इसलिए **''हे शतौदने!''** जो लोग तुझे परिपूर्ण बनाते हैं, तुम्हें शान्ति देते हैं उनसे भय न कर क्योंकि वे तेरी रक्षा करते हैं। यही अर्थ ठीक है, परन्तु इसके विरुद्ध हे शतौदने! जो लोग तेरा वध करके तेरा मांस पकाते हैं वे तेरी रक्षा करते हैं तू उनसे भय न कर। ऐसा विपरीत अर्थ किसी प्रकार भी संगत नहीं है।

प्रश्न– हमने सुना है कि 'वशा (वंध्या) गौ को मारकर उसका हवन करना चाहिए– ऐसा वेद में लिखा है तो क्या सच नहीं?

उत्तर– नही–नहीं, आपने **'वशा'** का अर्थ **'वंध्या'** किया यह बिलकुल झूठा है और उसके हवन की कल्पना भी निर्मूल है। देखो अथर्ववेद में लिखा है –

''ससूव हि तामाहुर्वशेति'' (अथर्ववेद 10/10/23)

जो गाय संतान उत्पन्न करने के योग्य होती है संतान को जन्म देती है उसे वशा कहा है।

प्रश्न– ''दिवं प्रेहि शतौदने'' (अथर्ववेद) यह मंत्र बोलकर याज्ञिक लोग गाय को काटकर स्वर्ग में भेजते हैं यह सच है क्या?

उत्तर– नहीं, इस प्रकार वाच्यार्थ लेकर गाय को काटकर स्वर्ग में भेजने की कल्पना करना उचित नही है। मंत्र का ध्वनितार्थ ही लेना चाहिए यथा– हे शतौदने? तू स्वर्ग में जा यानी सुखी हो जा– यह अर्थ ही ठीक है। जो कदाचित् इस अथर्व श्रुति का अर्थ आपके कथन के

अनुसार लें तो इसके आगे पाँचवी ऋचा में **''स स्वर्गमारोहति यो ददाति शतौदनाम्''** जो शतौदना का दान करता है वह स्वर्गारोहण करता है। यह अर्थ न करके शतौदना का दान करने वाले दाता को मारकर स्वर्ग में चढ़ानेकी कल्पना करनी पड़ेगी, जो अयोग्य है। इससे शतौदना को होम करके– स्वर्ग मे भेजने की क्लिष्ट कल्धना करना अयोग्य है।

प्रश्न– शतौदना गाय का अर्थ क्या है?

उत्तर– जो गाय संतान उत्पन्न करती हैं उसे **'वशा'** कहा है तथा संतान उत्पन्न करने के बाद सौ मनुष्यों को अपने दूध से तृप्त करे, सौ मनुष्यों के लिए पर्याप्त दूध दे, उसे **शतौदना** कहा है। किसी समय इच्छित दूध देने वाली गाय **'वशा'** और अपने दूध से सौ मनुष्यों को तृप्त कर देने वाली गाय को **'शतौदना'** कहा जाता है। इसलिए गाय को खूब खिला पिलाकर हृष्ट पुष्ट करके वशा और शतौदना बनाना चाहिए। उनके स्वास्थ्य का भी ध्यान रखकर गौ सेवा करना ही **गो–मेध** यज्ञ है।

गो–मेध

प्रश्न– गो–मेध का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर– शतपथ ब्राह्मण में गो नाम अन्न तथा प्राण का है। गाय, वाणी, इन्द्रियाँ तथा पृथ्वी को भी गो कहा है। तथा **'मेध'** मेधा का अर्थ बुद्धि है। **पवित्र वाणी का संयोजन शुद्ध बुद्धि के साथ हो– इसका नाम गो– मेध है।** आर्यमुनि ने गो–मेध की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की है– **''मेध्यन्ते पवित्रीक्रियन्ते यस्मिन् स गो–मेधः''** जिस सभा में वाणी का संस्कार किया जाय उस विराट सभा का नाम गो–मेध है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने गो नाम पृथ्वी कहा है। तथा पृथ्वी में हल चलाकर उसमें खेती करना ही गो–मेध यज्ञ कहा है। जिस भूमि में गो–समूह निवास करता है वहाँ की भूमि उर्वरा (फलद्रूप) हो जाती

हैं। उर्वरा भूमि में अन्न बहुत उत्पन्न होता है। तथा उसमें विशेष प्राणतत्त्व–जीवनशक्ति रहती है। खाद और पानी आदि डाल कर उर्वरा भूमि बनाना यह भी एक गो–मेध यज्ञ है। अथवा गाय को वन–वन में नूतन–नूतन वनस्पति खिलाना शुद्ध जल पिलाना और उसे किसी प्रकार का रोग न हो जाय इसका ध्यान रखते हुए गोरक्षण करना यह गो–मेध यज्ञ है। इसी से गाय **'वशा'** और **'शतौदना'** होकर सब प्रकार से मनुष्यों का पालन करने मे समर्थ होगी। ऐसा गो–मेध यज्ञ मनुष्य मात्र को करना चाहिये।

अथैष गोसवः स्वराज्यो यज्ञः (ताण्ड्य ब्रा 19/13)

यह गोसव–गोसेवा स्वराज्य यज्ञ है। स्वराज्य साधन जो गोसव (गो सेवा समूह उत्सव) अथवा गो–मेध यज्ञ है तथा **'यज्ञो वे गौः'** गौ ही यज्ञ है **'अन्नं वै गौः'** गौ ही अन्न है, इत्यादि तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में गो–मेध का अर्थ स्पष्ट किया है। गाय के महत्त्व पर वेदों में बहुत कुछ लिखा गया है। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मंत्र में ही गाय **'अघ्न्या'** यानी हनन करने के अयोग्य कही गई है। तथा तेवीसवें अध्याय के 48 वें मंत्र में अमूल्य बताई है।

ऋग्वेद 8/101/15 में उसके वध तथा मांस भक्षण आदि का सहेतु निषेध किया है। तथा गाय को क्षत्रियों की माता, बाह्मणों की बहिन, वैश्यों की कन्या बता कर उसे समुन्नत जीवन की केन्द्र–भूत कहा है अतः सबको गौ–रक्षा का संकल्प लेकर गौ–सेवा पूर्वक अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहिये।

मंत्र पढ़िये–

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।।

मंत्रद्रष्टा महर्षि कहते हैं कि समुन्नत जीवन की आधारभूत निरपराध गाय का हे सुज्ञ मानव! हनन नहीं करना, क्योंकि वह दूध–

दही, घी आदि पंचगव्य के द्वारा तुम्हारे ऊपर अनन्त उपकार करती है। इससे वह अदिति, अखण्डनीय, अवध्य है, यज्ञ की आधार है अतः गोसेवा करके उसे संतुष्ट करो।

वन्दनीयाश्च पूज्याश्च गावस्सेव्यास्तु नित्यशः।
गावः कृशातुरा पाल्याः श्रद्धया पितृ–मातृ–वत्।।

गौवें नित्य वन्दन करने योग्य, पूजने योग्य, सेवा करने योग्य हैं अतः माता–पिता के समान कृश बलहीन दुःखी गौवों का पालन करना चाहिये। ऐसी गौवों का पालन करना गो–मेध यज्ञ है। सेवा से संतुष्ट हुई गाय पाप का नाश करती है। श्रद्धापूर्वक सुपात्र को दान की हुई गाय दाता को स्वर्ग में ले जाती है। अच्छी प्रकार संरक्षण प्राप्त गाय धन देती है। अतः गाय के समान कोई धन नही है। **''गावस्त्रैलोक्यमातरः''** गौवें तीनों लोको की माता हैं। इनका रक्षण करना ही यज्ञ है।

प्रश्न– योग के ग्रन्थों में लिखा है 'कि गोमांसं भक्षयेन्नित्यं' इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर– **गो शब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।**
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्।।

यहाँ गो मांस का शब्दार्थ है– जिह्वा को खेचरी मुद्रा के द्वारा कपालछिद्र में प्रविष्ट करना ही गोमांस भक्षण की संज्ञा दी गयी है। क्योंकि जिह्वा को 'गो' कहा है। वही कपाल में प्रविष्ट होकर आत्मानन्द देती है। इस प्रकार वेद शास्त्र में गो–मेध के बहुत अर्थ हैं।

अश्वमेध

प्रश्न– अश्वमेघ यज्ञ का क्या तात्पर्य है तथा मेध् धातु का क्या अर्थ है?

उत्तर– 'मेध्' धातु के कोष मे अनेक अर्थ बताये हैं जैसे जानना, निन्दा करना, परस्पर मिलना, वध करना आदि। पाणिनि के धातु सूत्र में भी

मेधृ–मेधा हिंसनयो: संगमे च! अर्थात् मेधा (बुद्धि) की वृद्धि करनी, संगति करना यानी समाज का संगठन करना, परस्पर मिलना–मिलाप करना, मित्रता करना, एकता करना– एक दूसरे को जानना जोडना– प्रेम करना– धारणावती बुद्धि का बल बढ़ाना, तेज बढ़ाना, पवित्रता करना तथा उत्साह बढ़ाना आदि **'मेध्'** के अनेक अर्थ हैं **'मेध्'** शब्द भी एक यज्ञ का नाम है।

इसी प्रकार अश्व शब्द के भी अनेक अर्थ हैं। यथा तण्डुलकण सूर्य–नक्षत्र–वीर्य–यज्ञ आदि। केवल एक घोड़े का नाम ही अश्व हो ऐसी बात नहीं है। एक ओषधि का नाम भी अश्व है– अश्व या अश्वगंधा आदि। ब्राह्मण ग्रन्थो में राष्ट्र को **'अश्वमेध'** कहा है। जिन साधन या कर्मों के द्वारा राष्ट्र की समृद्धि एवं शान्ति बढाई जाय उसका नाम **'अश्वमेध'** है। **राष्ट्रं वा अश्वमेध:** (शतपथ ब्राह्मण 13/1/16) राष्ट्र ही अश्वमेघ है। **''राजा राष्ट्रं अश्वमेधेन यजेत्।''** सार्वभौम चक्रवर्ती राजा अश्वमेध से राष्ट्र की उन्नति करे तथा राज्य शासन–विधान आदि से राष्ट्र की रक्षा करे। राष्ट्र की रक्षा ही अश्वमेघ है। घोड़े का वध करना यह अश्वमेघ यज्ञ नही है।

अजमेध

प्रश्न– अजमेध का तात्पर्य क्या है?

उत्तर– **अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां** (श्वेताश्वतर.) अजा नाम त्रिगुणात्मिका प्रकृति का है। उसे ही अज–प्रकृति–माया–अविद्या आदि वेदान्त में कहा है। उस अविद्या को ज्ञानाग्नि में होम देना, यही अजमेध यज्ञ है।

प्रश्न– हमने सुना है कि 'अज' नाम बकरे का है। और उसे मारकर हवन करना, यह अजमेध यज्ञ है तो क्या यह सच है?

उत्तर– नहीं, नहीं, चिकित्सा शास्त्रों में **'अजा'** नाम की ओषधि है। देखिए– **''अजानामोषधि रजश्रृंगीति विज्ञायते''** (चरक प्र. अ. 1) अजा अजमोदा अश्वगन्धा–अश्व–महिष–मेष–गुग्गल आदि ये सब नाम तथा **'अज'**

नाम अजवाईन आदि औषधियों के नाम हैं। महाभारत के शान्ति पर्व मे '**अज**' नाम बीज का कहा है। देखिये–

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यम् इति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ।।

यज्ञ में बीज से हवन करना– ऐसी वैदिक श्रुति है। बकरे से यज्ञ करना यह मिथ्या है। इस विषय मे व्यास जी तथा ऋषियों का अन्तिम निर्णय है **''कि यज्ञ में प्राणियों की हिंसा नही करना''** हिंसा करना महान् पाप है। ''प्राणिहिंसा करनी हो तो यज्ञ में हो सकती है। न करनी हो तो बीज से यज्ञ करना'' ऐसा उभयात्मक मत देने वालों को भी भयंकर पाप लगता है। अतः यज्ञ का एक नाम है '**अध्वर**' 'ध्वरति हिंसायाम्' के अनुसार '**ध्वर**' नाम हिंसा का है। परन्तु हिंसा का निषेध करने के लिये यज्ञ का नाम ही '**अध्वर**' हिंसा रहित कर्म या यज्ञ है। देवताओं ने पशु हिंसा का निषेध किया है और कहा है कि ''पशु को मारकर हवन करना यह सज्जनों का धर्म नहीं है।''

प्रश्न– यज्ञ मे बलिदान देने की विधि है, इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर– अरे भाई! नासमझ मांसाहारी पण्डितों ने ही उनमें हिंसा अर्थ निकाल कर पवित्र वेद–वाक्यों को वदनाम किया है। वे बलिदान में जिसकी बलि देनी है उसकी तो बलि देते नहीं, उल्टे पशु मारकर पाप बढ़ाते हैं। उपनिषदों में तथा त्रिसुपर्ण में तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि को पशु कहा है तथा विवेक–विचार आत्मज्ञान रूप तलवार से इनकी बलि देने का आलंकारिक भाव दिखाया है। ऐतरेय ब्राह्मण में **''भूमि ही पशु है''** ऐसा कहा है। क्योंकि भूमि से ही चावल–धान्य आदि अन्न उत्पन्न होता है वही हवनीय द्रव्य हैं अन्न से ही यज्ञ करना चाहिये। चर प्राणियों को मत मारो– यह आदेश वेदों का तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का है। अतः वेदों में प्राणिहिंसा का घोर विरोध किया है।

प्रश्न– अजमेध तथा अजामेध मे क्या अन्तर है?

उत्तर– अजा नाम प्रकृति का है। वह जड़ है, ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति है, वही सृष्टि की रचना में कारण भूत है। **मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।** (गीता) तथा 'अज' शब्द का अर्थ अजन्मा ब्रह्म है। **''स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः''** (मुं. 2/1/2) वह ब्रह्म बाह्याम्यन्तरवर्ती अज–अजन्मा है। **अजोऽस्यैकपात्** (यजुः 5/33) हे भगवन्! आप अज एकपाद हैं– यानी जन्म रहित हैं, यह सारा विश्व आपका एक पाद है– **''पादोऽस्य विश्वा भूतानि''** (ऋग्वेद 10/90/3) आदि प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि अजा प्रकृति का नियामक और अधिष्ठान अजन्मा ब्रह्म है, जो चेतन है। यह विश्वसृष्टि एक प्रकार का यज्ञ है इसका नियामक मायावी महेश्वर है। माया से संसार यज्ञ की सफलता है यही अजमेध या अजामेध यज्ञ का तात्पर्य है।

प्रश्न– कई शहरों में तथा देहात में भी माता जी को बलि चढाई जाती है तो क्या यह ठीक है?

उत्तर– नहीं, ठीक नहीं है। किसी भी देवी देव के नाम से किसी भी पशु की बलि नहीं देनी चाहिये। देवी तो जगत् की माता है। पशु भी उसके पुत्र है। अतः माता अपने पुत्रों का आहार नहीं कर सकती। और यदि वह ऐसा करे, तो फिर उसको माता कैसे कहा जा सकता है वह तो डाकण ही हो गई? अतः पशु की हिंसा करना अनुचित है।

प्रश्न– कलकत्ता में महाकाली के मन्दिर में तथा तुलजापुर की भवानी के मन्दिर में तथा अन्यत्र भी कई मन्दिरों में देवी के नाम से बकरे की बलि दी जाती है इसका क्या?

उत्तर– यह भी अनुचित है। बलि देने के लिये कद्दू, नारियल, केला, फल–फूल आदि हैं साथ ही अपने काम–क्रोध आदि की बलि देनी चाहिए, पशुओं की नहीं। जो पशुओं की बलि चढाते हैं वे देवी के नाम से अपनी मांस भक्षण की कामना को पूर्ण करने के लिये ही ऐसा करते

हैं। वे दण्डनीय हैं, शिक्षा के पात्र हैं। भारत सरकार को ऐसे धूर्त लोगों को कड़क शिक्षा यानी दण्ड देना चाहिये और सम्पूर्ण देव–स्थानों की पवित्रता के लिये पशुबलि सर्वथा कानूनन बन्द कर देनी चाहिये। जनता को भी ऐसे घृणित कार्यों को बन्द कराने के लिये आन्दोलन करना चाहिये। और ऐसे हिंसा प्रधान मन्दिरों का तथा ऐसे मांसाहारी लोगों का बहिष्कार करना चाहिये।

नरमेध

प्रश्न– नरमेध यज्ञ का क्या मतलब है?

उत्तर– यर्जुवेद के तीसवें अध्याय का नाम पुरुष मेध है। इसमें सृष्टि विज्ञान एवं ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में पुरुष यानी परमात्मा बुद्धि करना ही पुरुषमेध यज्ञ है। जो सर्वात्म– भाव का सूचक है।

पुरुषमेध, नरमेध, मनुष्य यज्ञ, नृयज्ञ आदि नरमेध वाचक शब्दों का एक ही भाव है। 'मेध्' धातु का अर्थ तो मैं पहले बता चुका हूँ।

नरमेध की व्याख्या करने से पहले यज्ञ शब्द की व्याख्या करनी योग्य है।

प्रश्न– यज्ञ शब्द का अर्थ क्या है?

उत्तर– **'यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** यज् धातु से यज्ञ शब्द बना है, जिसका अर्थ देव पूजा–समाज का संगठन और दान करना है। देव शब्द ईश्वर का बोधक है इससे ईश्वर की उपासना यानी भक्ति करनी देव–पूजा है। **'विद्वांसो हि देवाः'** (शतपथ ब्रा.) विद्वान् ही देव हैं अर्थात् विद्वान् ज्ञानी–योगी–तपस्वी आदि देव हैं, इनका सम्मान देवपूजा है, समाज के नेता, धार्मिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वचिन्तक, गृहस्थ, राजा आदि भी सम्मान के पात्र हैं, अतः इनका सत्कार करना– मित्रता करके उपकार करना भी देवपूजा ही है। नर यानी **'न रतिः, विषयेषु न रमते'** जो सासांरिक विषयों में रममाण नही ऐसे संयमी को नर कहा है। **'न कर्म लिप्यते नरे'** ऐसे **'नर'** के साथ

मेध और यज्ञ शब्द जोड़ने पर ''**नर मेध यज्ञ**'' शब्द बन गया, जिसका अर्थ मनुष्यों का सम्मेलन, वेदान्त सम्मेलन, भक्ति सम्मेलन, धर्म सम्मेलन, मनुष्यों में सत्कर्म भगवद्भक्ति एवं तत्त्वज्ञान प्रकट करना, मनुष्यों में परस्पर मित्रता की भावना प्रकट करना, एकता की सिद्धि के साथ सत्य–धर्म प्रकट करके परोपकार करना यह **'नरमेध यज्ञ'** हुआ। **नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्** (मनु. 3/17) अतिथि का सत्कार करना भी नरमेध है। इतना होने पर भी मूर्ख लोग नरमेध का अर्थ 'नरमांस का हवन' करना मानते हैं इस अज्ञानता को दूर करना चाहिये।

प्रश्न– **नरमेध में तो 'नर' किसी मनुष्य सिद्ध योगी या किसी महान् ज्ञानी व्यक्ति की देवी को बलि चढाई जाती है। इसी के भोग श्री शंकराचार्य, जड़ भरत आदि बने थे, परन्तु ये दैवेच्छा से बच गये थे तथा श्रीराम लक्ष्मण को भी अहिरावण ने देवी को बलि चढाने के लिये देवी के पास बैठा दिया था, उनको श्री हनुमान् जी ने छुड़ाकर देवी को पाताल में भेज़कर राक्षसों को मार डाला था। इससे तो नरमेध में नर बलि चढ़ाने की सिद्धि होती है।**

उत्तर– नहीं, ऐसा नहीं माना जा सकता। नरमेध में नर की हिंसा करने का विधान नहीं है। तभी तो ऐसा कृत्य करने को तत्पर हुए कापालिक का नाश करने के लिये पद्मपाद में नृसिंह भगवान् का आवेश हुआ और उन्होंने कापालिक का नाश किया, हनुमान जी ने अहिरावण के साथ दुष्ट राक्षसों का संहार किया तथा जड भरत की रक्षा के लिये देवी ने स्वयं प्रकट होकर बलि चढाने वाले दुष्टों का संहार कर डाला। इस प्रसंग से यह सिद्ध हो गया कि देवी या देव को नरबलि या पशुबलि पसन्द नहीं है। ऐसी बलि से देव देवियाँ नाराज होते हैं। अतः ऐसे दुष्कर्मों से दूर रहना चाहिये।

प्रश्न– **कुछ लोग 'मेरा अमुक कार्य सि़द्ध हो जाये तो मै अमुक देव या देवी को पशुबलि चढाऊँगा' ऐसी मानता करते हैं। तो क्या यह ठीक है?**

उत्तर– नहीं, ऐसी मानता मानना मूढ़ता है। ऐसे कितने ही किस्से वर्तमान अखबारों में आते हैं, जिनको सरकार कानून की सहायता से दण्ड देती है– यह अपने देखते हैं। इसलिये ऐसे हिंसक कार्य से सदा दूर ही रहना चाहिये।

प्रश्न– अब समझ मे आ गया कि वेदों में किसी भी प्राणी की हिंसा का विरोध है। यज्ञ भी एक अहिंसक सात्त्विक कर्म है, जिसको करने से मनुष्य सद्‌गुणी–धर्मात्मा–सत्यवादी–परोपकारी बन कर अपना लोक–परलोक सुधार लेता है। परन्तु वेदों में हिंसा का विरोध है इस विषय में और थोड़े प्रमाण देने की कृपा करें।

उत्तर– ठीक है लीजिये प्रमाण– **'अश्वं मा हिंसीः'** घोडे की हिंसा मत कर। **''गां मा हिंसीरदितिं विराजम्''** गाय की हिंसा न कर क्योंकि यह अदिति–अखण्डनीय–अवध्य है **''अविं मा हिंसीः''** भेड़–बकरी की हिंसा न कर। **''इमं मा हिंसीः द्विपादं पशुम्''** इस द्विपाद पशु यानी मनुष्य की हिंसा मत कर। इस प्रकार घोड़ा–गाय–भेड़–बकरी–बकरा–मनुष्य आदि के वध का निषेध करने वाले सैकडों प्रमाण हैं अतः इन सब की उपयोगिता जानकर इनकी रक्षा करनी चाहिये। ऋग्वेद में लिखा है–

आरे गो–हा नृ–हा वधो वो अस्तु।

(ऋग्वेद 7/56/16) (हिन्दु धर्म रहस्य पृष्ठ188)

गाय का वध तथा मनुष्य का वध करने वाले को यहाँ से दूर करो। अतः निश्चय हुआ कि सब यज्ञ निष्कल्मष–हिंसा रहित तथा मित्रता एवं संगठन साधने वाले हैं।

प्रश्न– संक्षेप मे यज्ञ का आध्यात्मिक रहस्य समझाइये।

उत्तर– हाँ लीजिये, जितेन्द्रिय होकर इन्द्रियों की वृत्ति को मन में होम दो यानी मन में लीन करो– यह **गो–मेध यज्ञ** है। प्राणायाम की क्रिया के द्वारा प्राण का निरोध करना **अश्वमेध यज्ञ** है। प्रकृति–पुरुष का

विवेक प्रत्यय से मोक्ष प्राप्त करना यह **अजमेध यज्ञ** है तथा मनुष्यों में आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की वृद्धि करके सर्वात्म भाव प्राप्त करना **नरमेध यज्ञ** है।

प्रश्न– पितृमेध गृहमेध आदि यज्ञ भी तो है?

उत्तर– हाँ हैं।

प्रश्न– इनका क्या तात्पर्य है?

उत्तर– माता–पिता–सास–श्वसुर तथा बड़े बूढ़ों की सेवा करना उनकी आज्ञा का पालन करके उन्हें सुख पहुँचाना तथा उनका आशीर्वाद लेना **पितृ यज्ञ** है। यही **पितृमेध** है। जीर्णोद्धार एवं रंग रोगन आदि के द्वारा मकान को सुदृढ़ व्यवस्थित एवं स्वच्छ उपयोगी बनाना, यह **गृहमेध यज्ञ** है।

तप

प्रश्न– तप का क्या स्वरूप है ?

उत्तर– **ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः।**
दानं तपो यज्ञं तपो भूर्भुवः स्वर्ब्रह्मैतदुपास्यैतत्तपः।। (ना. उ.)

ऋत यानी शास्त्रानुमोदित सदाचार पालन तप है। सत्य–यथार्थ भाषण तप है। शान्त–शान्ति का हेतु ज्ञान तप है। दम–इन्द्रिय दमन–मनोनिग्रह तप है। दान तप है। यज्ञ तप है। भूर्भुवः स्वः ब्रह्म यानी सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म की उपासना करना तप है।

प्रश्न– तप का क्या लक्षण है?

उत्तर– तप अर्थात् तपना–तपाना–शुद्ध करना आदि। शरीर इन्द्रियाँ तथा मन का समाधान तप का लक्षण है। तैतिरीय उपनिषद् में बल्ली 1 अनुवाक 9 तप के लिए खास पढ़ना चाहिये। वहाँ ऋत से लेकर स्वाध्याय–प्रवचन शास्त्राध्ययन–अध्यापन अथवा वेदपाठ रूप ब्रह्म–यज्ञ को भी तप ही कहा है। अतः स्वाध्याय प्रवचन तप है। नित्य पढते रहो, प्रवचन करते रहो– यह तप है।

प्रश्न– ‘तप’ यह उपासना है तो इससे ब्रह्म की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर– प्रश्नोपनिषद् में प्रसंग है कि सुकेशा आदि छः ऋषि परब्रह्म की प्राप्ति के लिये पिप्पलाद ऋषि के पास गये, तब ऋषि ने उनको कहा यद्यपि आप सब तपस्वी हैं, तो भी ‘**भूय एवं तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्वत्सरं संवत्स्यथ**’ (प्रश्न 1,2) तप यानी शरीर–इन्द्रियाँ मन के संयम के साथ विशेषतः ब्रह्मचर्यपूर्वक श्रद्धा के साथ आस्तिक बुद्धि से सादर गुरु–शुश्रूषा में तत्पर रहकर एक वर्ष यहाँ निवास करो, तब मैं ब्रह्मज्ञान कराऊँगा। **तस्यैतपः ....प्रतिष्ठा।** (केन 4/8)

“**तपः कायेन्द्रिय–मनसां समाधानम्**” (शांकर भाष्य) उस ब्रह्म की प्राप्ति में उपायभूत तप आदि प्रतिष्ठा है। क्योंकि तप ज्ञानरूप है। विचार ही तप है। **सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा** (मुण्डक उ. 3/1/5) सत्य यानी मिथ्या भाषण का त्याग रूप तप से आत्मा की प्राप्ति होती है।

मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्येकाग्रं परमं तपः (म. भा. शा. 150/4)

मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है। इस स्मृति के अनुसार तप यानी मनसहित इन्द्रियनिग्रहरूप तप से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। क्योंकि आत्मदर्शन के अभिमुख होने के कारण ‘**तप**’ उसका अनुकूल साधन है। **यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः** (मुण्डक उ. 1/2/9) जो सर्वज्ञ है तथा विशेष रूप से सबको जानता है वह सर्ववित् है। जिसका ज्ञानमय अर्थात् सर्वज्ञतारूप ज्ञान विकार ही तप है। ऐसे तपःस्वरूप एवं ज्ञानस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति ज्ञानरूप तप से हो– यह स्वाभाविक ही है।

प्रश्न– **क्या विचार भी तप है ?**

उत्तर– हाँ हाँ। शरीर का संयम, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह पूर्वक एकान्त शान्त स्थान में बैठकर परब्रह्म का विचार करना यह तप ही है। इसमें भृगु ऋषि का प्रमाण है। भृगु ने अपने पिता वरुण से ब्रह्म–ज्ञान की प्रार्थना

की। तब वरुण ने कहा– अन्न–प्राण–नेत्र–श्रोत्र–मन और वाक् ये ब्रह्म की उपलब्धि के साधन हैं तथा ब्रह्म का लक्षण बताया कि जिससे ये सब प्राणी उत्पन्न होते है, उत्पन्न होकर जिससे जीवित रहते हैं और अन्त में सब जिसमें लीन हो जाते हैं– वह ब्रह्म है। तप से ब्रह्म को जान, तप ही ब्रह्म है। तब एकान्त में विचार (तप) करके भृगु ने क्रमशः अन्नमय–प्राणमय–मनोमय–विज्ञानमय इन कोशों से भिन्न आनन्दमय को विचाररूप तप के द्वारा ही ब्रह्म को जाना था। तैत्तिरीय की भृगुवल्ली में इसका विस्तृत विवरण है, वहाँ ब्रह्म की प्राप्ति में तपरूप विचार ही साधन रूप में बताया गया है। **वस्तु–सिद्धिर्विचारेण।** संकल्प रूप विचार ही तप है इस विषय में निम्न चौपाइयाँ देखने योग्य हैं।

तपबल रचइ प्रपंच विधाता। तपबल विष्णु सकल जगत्राता।।
तपबल शंभु करहिं संहारा। तपबल शेष धरहिं महि भारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहु जाय तप अस जिय जानी।।

(रामायण बाल. पार्वतीतप प्रसंग)

तप के बल से विधाता सृष्टि की रचना करते हैं, विष्णु रक्षा करते है, शंभु संहार करते हैं तथा शेष जी पृथ्वी को धारण करते हैं अतः सब कार्यों की सिद्धि के लिए वन में जाकर तप करो।

यहाँ तप–विचार या संकल्प ही है। **'एकोऽहं बहु स्याम्'** इत्यादि में ईक्षणरूप तप से ही सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम दिखाया है। यही बात ऐतरेयोपनिषद् में कही है–

''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति''

(ऐत. 1/1/1)

पहले एकमात्र आत्मा ही था, उसने विचार किया कि 'लोकों की रचना करूँ, तब उसने अंभ–मरीचि– मर और आप आदि लोकों की रचना की। उस ईश्वर ने विचार किया कि मेरे रचे लोकों की रक्षा के

लिए लोकपालों की रचना करूँ। तब उसने अग्नि आदि लोकपालों को उत्पन्न किया। उसका ज्ञानमय संकल्प है। एक पुरुषाकार पिण्ड के उदेश्य से ईश्वर ने अभिध्यान किया, उस अभितप्त पिण्ड से मुख आदि छिद्र उत्पन्न हुए उनमें देवताओं ने प्रवेश किया। इस प्रकार ईश्वर के संकल्प से सृष्टि होना कहा है।

प्रश्न– **आत्मा तो सर्वश्रेष्ठ–सर्वज्ञ–सर्वत्र–सर्वशक्तिसम्पन्न, क्षुधा–पिपासा रहित–सम्पूर्ण सांसारिक धर्मों से रहित नित्य सत्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव, अजन्मा, अजर–अमर–अमृत–अभय और अद्वय है। आप्तकाम–पूर्णकाम है तो फिर उसनें संकल्प क्यों किया ?**

उत्तर– श्रुति मे ईश्वर के लिये ईक्षणक्रिया प्राणियों के पूर्व के शुभाशुभ कर्मों के फलोपभोग के लिये दर्शाई है, क्योंकि सृष्टि प्रवाह रूप से अनादि है। सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद पुनः सृष्टि का प्रवाह चलता रहता है प्रलय काल आने पर पूर्व सृष्टि के सब जीव अपने अपने शुभाशुभ कर्म, जिनका फल भोगा नही गया है उन कर्मों सहित सब जीव उस निर्विकल्प चेतन ईश्वर में लीन हो जाते हैं, पुनः जब सृष्टि का समय आता है तब जिस आत्मा में अपने बिना भोगे कर्मो के सहित जीव लीन हो गये थे उन्हीं का फल भोग कराने की इच्छा से ईश्वर संकल्प करता है कि मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ तब ईश्वर के संकल्प से सृष्टि होती है।

प्रश्न– **याज्ञवल्क्य संहिता में कहा है कि–**

विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम्।।
शास्त्र प्रतिपादित मार्ग– विधिपूर्वक कृच्छ्र चान्द्रायणादि क्रियाओं से शरीर का शोषण करना, यह उत्तम तप है तो क्या यह ठीक है?

उत्तर– ऐसा कृच्छ्र चान्द्रायणादि तप मन्द अधिकारियों के लिये है।

प्रश्न– **तो उत्तम या मध्यम अधिकारियों के लिये कौन सा तप है?**

उत्तर– **ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक्कायकर्मभिः ।**
ते तपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम्।।

जो मन–वाणी–शरीर और कर्मो से पाप नहीं करते, वे महात्मा तपस्वी हैं। शरीर का शोषण करना तप नही है।

प्रश्न– तो सच्चा तप कौन सा है तथा तप की आवश्यकता क्या है?

उत्तर– सच्चा तप तो– कायिक, वाचिक तथा मानसिक पाप नहीं करना हैं तथा अनादि काल से क्लेशकर्म आदि की वासनाओं से चित्त में नाना प्रकार के पापरूप जो मलीन संस्कार पड़े हैं तथा राजस–तामस भावों की प्रधानता से जो अशुद्धि है, उसको नष्ट करने के लिये तप की आवश्यकता है।

प्रश्न– कायिक पाप कौन सा है?

उत्तर– **अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।**
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्।। (मनु)

चोरी, हिंसा तथा परस्त्रीगमन ये तीन शारीरिक पाप हैं इनका त्याग करके शारीरिक तप करना चाहिये।

प्रश्न– कायिक तप क्या है?

उत्तर– **देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।**
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। (गीता 17/14)

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी जनों तथा माता पिता आचार्य एवं वृद्ध जनों की सेवा–सत्कार करना तथा बाहर–भीतर की पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर सम्बन्धी तप हैं।

प्रश्न– वाचिक पाप क्या है?

उत्तर– **पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।**
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्।। (मनु)

कठोर वाणी, मिथ्या भाषण, सब की निन्दा–चुगली तथा निष्प्रयोजन

बात कहना, ये वाणी के चार पाप हैं। इनका त्याग करो।

प्रश्न– **वाचिक तप कौन सा है?**

उत्तर– **अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।**
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। (गीता 17/15)

किसी को उद्वेग न करे ऐसा प्रिय तथा हितकारक यथार्थ भाषण और वेद शास्त्रों का अध्ययन एवं परमेश्वर के नाम के जप का अभ्यास यह निःसंदेह वाणी का तप है।

प्रश्न– **मानसिक पाप क्या है?**

उत्तर– **परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्।**
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ।। (मनु)

दूसरे के धन को लेने की इच्छा, मन में हिंसा, दगा आदि करने की इच्छा, परलोक नहीं हैं, देह ही आत्मा है ऐसा मिथ्या आग्रह करना ये तीन मानसिक पाप हैं इनका भी त्याग करो।

प्रश्न– **मानसिक तप क्या है?**

उत्तर– **मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।**
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।। (गीता 17/16)

मन की शुद्धि, प्रसन्नता, शान्तभाव तथा भगवान् का चिन्तन करने का स्वभाव, मनोनिग्रह तथा अन्तःकरण की पवित्रता यह मन का तप है।

इस प्रकार कायिक, वाचिक मानसिक पाप का त्याग एवं इन तीनों के तप से जीवन में अद्भुत सामर्थ्य एवं आत्मनिष्ठा आती है।

प्रश्न– **तप से क्या सिद्ध हो सकता है?**

उत्तर– तप का बड़ा प्रभाव है देखिये–

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।। (मनु)

जिसको पार करना कठिन है, जिसको प्राप्त करना मुश्किल है, जिसमें प्रवेश करना कष्ट है, जिस कार्य को करने में बड़ा प्रयास है, वह सब तप से सिद्ध हो जाता है। क्योंकि तप की शक्ति का उल्लंघन नहीं हो सकता।

प्रश्न– आपने कहा था कि अनादि काल से बद्ध क्लेश कर्म की वासना से चित मे जो पापरूप संस्कार जमा हैं तथा राजस–तामस द्रव्य की प्रधानतारूप जो अशुद्धि रहती है, उसकी निवृत्ति के लिये तप की आवश्यकता है तो क्या ऊपर बताये हुए तीन प्रकार के तपों से ये दोष मिट सकते हैं?

उत्तर– हाँ! अवश्य मिट सकते हैं। इन तपों का आचरण करें। साथ ही भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में सात्विक–राजस तथा तामस तपों का वर्णन किया है, उनमें से सात्विक तप करना चाहिये। पूर्व में गीता अध्याय 17 के श्लोक न. 14–15 और 16 में जो कायिक–वाचिक एवं मानसिक तप कहे हैं वे सात्विक तप हैं। 17 वें श्लोक में कहा है कि– फल को चाहने वाले योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकार के तप को सात्विक कहते हैं। इस तप से आत्मोन्नति के साथ सब कार्य सिद्ध होते हैं।

उपवास–व्रत

प्रश्न– उपवास करना भी तो तप ही है न?

उत्तर– भूखे प्यासे रहकर शरीर को सुखाना यह कोई तप नही है। भगवान् श्री कृष्ण ने भी लंघन रूप तप का निषेध किया है।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागवलान्विताः ।।
कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्।। (गीता 17/5–6)

जो मनुष्य शास्त्र–विधि से रहित केवल मनःकल्पित घोर तप

को तपते हैं, दम्भ और अहंकार से युक्त तथा कामना एवं आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं, जो शरीर रूप से स्थित भूत समुदाय को और अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं। उन अज्ञानियो को तू आसुर–स्वभाव वाले जान। शास्त्रों के विरुद्ध उपवासादि घोर आचरणों द्वारा शरीर को सुखाना एवं भगवान् के अंशस्वरूप जीवात्मा को कष्ट देना, भूत समुदाय को और अन्तर्यामी परमात्मा को कृश करना है, अतः ऐसा आचरण तप नहीं कहला सकता।

प्रश्न– व्रत और उपवास में कुछ अन्तर है?

उत्तर– किसी पुण्यतिथि में पुण्य प्राप्ति के लिये उपवास का अनुष्ठान करना '**व्रत**' है। और इष्टदेव के पास बैठना '**उपवास**' है। वस्तुतः मानसिक संकल्प ही व्रत है तथा उपवास यह शारीरिक क्रिया है।

प्रश्न– व्रत के कितने भेद हैं?

उत्तर– प्रवृत्ति–रूप और निवृत्ति–रूप ये व्रत के दो भेद हैं।

प्रश्न– प्रवृत्ति–रूप व्रत किसको कहते हैं?

उत्तर– द्रव्य विशेष का भोजन और पूजा आदि व्रत प्रवृत्ति रूप हैं।

प्रश्न– निवृत्ति–रूप का क्या लक्षण है ?

उत्तर– केवल उपवास तथा भजन निवृत्ति रूप व्रत हैं।

प्रश्न– व्रत के कितने प्रकार हैं?

उत्तर– नित्य, नैमत्तिक तथा काम्य ऐसे ये व्रत के तीन भेद हैं।

प्रश्न– इन तीनो का स्वरूप संक्षेप से समझाने की कृपा करें ?

उत्तर– जिस व्रत के न करने से दोष लगता है वह **नित्य व्रत** है। जैसे सन्ध्या–पूजा–भजन–अतिथि सत्कार आदि। तथा जो व्रत विशेष फल की प्राप्ति के लिये किया जाता है वह **काम्य व्रत** है जैसे अवैधव्य की कामना से किया जाने वाला ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को वट

सावित्री व्रत, स्वर्ग लाभ के लिये किया जाने वाला यज्ञ आदि। तथा किसी निमित्त के प्राप्त होने पर किया जाने वाला **नैमित्तिक व्रत** है। जैसे जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि आदि व्रत एकादशी एवं पापक्षयार्थ चान्द्रायणादि व्रत।

प्रश्न– व्रत कब करना चाहिये ?

उत्तर– हेमाद्रिव्रत खण्ड के अनुसार पूर्णिमा तथा प्रादोषिक व्रतों को छोड़कर शेष सब व्रत अखण्डा तिथि में प्रारम्भ करने का विधान है। तथा गुरु, शुक्र के वाल्य, वृद्धि और अस्त काल में या मलमास में व्रत का आरम्भ नहीं करना चाहिये।

प्रश्न– व्रत कितने प्रकार से किया जाता है ?

उत्तर– कायिक तथा मानसिक भेद से दो प्रकार का व्रत होता है। निश्चित काल तक अन्न जल ग्रहण न करना अथवा फल दूध आदि निश्चित समय में लेना किसी से कुछ न माँगना, जागरण करना आदि कायिक व्रत का प्रकार है और अहिंसा–सत्य–अस्तेय–बह्मचर्य–अकल्मष मौन–जप–स्मरण–ध्यान आदि मानसिक व्रत की विधि है।

प्रश्न– व्रत मे किन किन नियमों का पालन करना चाहिये ?

उत्तर– व्रत के पहले दिन से ही संयम–ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करना चाहिये तथा मद्य मांस आदि का त्याग कर देना चाहिये। पवित्रता की रक्षा करते हुए व्रत के आरम्भ में संकल्प करना चाहिये तथा यथा संकल्पित विधि से संयमपूर्वक व्रत पूर्ण करना चाहिये।

उपवास शब्द का अर्थ

प्रश्न– उपवास शब्द का अर्थ क्या है?

उत्तर– ''उप: समीपे भगवत्सान्निध्ये वास: स्थिति:'' यानी भगवान् के पास में बैठना ही उपवास है। वाराहोपनिषद् में कहा भी है–

उप: समीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनो:।
उपवास: स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्।। (वाराहोपनिषद्2/69)

अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा के पास बैठना, यह उपवास है परन्तु शरीर को सुखाना यानी काया का शोषण करना उपवास नहीं है। कहा भी है–

उपावृत्तस्य पापेम्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयो सर्वभोगविवर्जितः।।

अर्थात् पापों के आवरण से रहित होकर सत्य धर्म ज्ञान मुक्ति त्याग–वैराग्य आदि शुभ गुणों के साथ बैठना यह सर्वभोग रहित भगवत् स्वरूप में स्थिति होना ही उपवास है।

प्रश्न– **तो क्या लंघन करना व्रत या उपवास नहीं है?**

उत्तर– **'व्रतन्तु नैव लंघनम्'** लंघन करना यह व्रत नहीं है। **'व्रतं मानसिक संकल्पम्'** मानसिक शुभ, शुद्ध संकल्प ही व्रत है। वृहस्पति स्मृति मे कहा भी है–

शरीरं पीड्यते येन सुशुभेनापि कर्मणा।
अत्यन्तं तन्न कर्तव्यमनायासः स उच्यते।।

शुभ कर्म से भी जो शरीर को पीडा़ होती है, तो ऐसा शुभ कर्म भी अति नहीं करना, इसलिये लंघन रूप कर्म से शरीर क्षीण होता है, अतः मत करो।

प्रश्न– **व्रत क्यों करना चाहिये ?**

उत्तर– आरोग्यता के लिये, अल्पज्ञता की निवृत्ति के लिये तथा यर्थाथता जानने के लिये व्रत किया जाता है।

प्रश्न– **आरोग्यता का व्रत के साथ क्या सम्बन्ध है ?**

उत्तर– आरोग्यता की प्राप्ति के लिए आयुर्वेद में अनेक उपाय बताये हैं। उनमें कभी कभी लंघन करके भी स्वास्थ्य की रक्षा के लिये व्रत उपवास करने का विधान है। उसी को धर्मशास्त्र और पुराणों में धर्म नाम देकर– उपवास करने से पुण्य होता है तथा न करने से पाप होता है। –ऐसा कहा गया है।

प्रश्न– अल्पज्ञता की निवृत्ति के लिये उपवास क्यों?

उत्तर– धर्मशास्त्रों में उपवास आदि करने से पुण्य होता है तथा न करने से पाप होता है यह पढ़कर या सुनकर कितने ही स्त्री पुरुष तथा बालक अल्पज्ञ होने से पाप के डर से तथा पुण्य प्राप्ति के लोभ से अन्धश्रद्धा से उपवास करने लगते हैं। खास कर स्त्रियों और उनमें भी विधवा स्त्रियों के लिये व्रत–उपवास करना एक प्रकार का धर्मबन्धन ही माना जाता है। इसलिये अधिक प्रमाण में विधवा स्त्रियाँ ही व्रत करती देखी जाती हैं, जो वे व्रत न करें तो उनके प्रति रूढ़िग्रस्त समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यह अल्पज्ञता या अज्ञता है। व्रत का फल क्या? और क्या नहीं इस बात को आज के जमाने में बहुत कम लोग जानते है। यही अल्पज्ञता का प्रमाण है इस अल्पज्ञता की निवृत्ति के लिये व्रत का वास्तविक स्वरूप जानना आवश्यक है।

प्रश्न– यथार्थता को जानने के लिये व्रत का क्या प्रयोजन है?

उत्तर– **'क्रतुमयोऽयं पुरुषः'** (शतपथ ब्रा. 6/3/1) यह पुरुष क्रतुमय है। क्रतु संकल्प का नाम है। **'स क्रतुं कुर्वीत'** (छांदोग्य 3/14/1) वह संकल्प करें। यानी दृढ़ प्रतिज्ञा करें। **'क्रतुश्च मे'** (यजुः 18/1) **''क्रतुः संकल्पो यज्ञो वा''** क्रतुः यानी संकल्प अथवा यज्ञ है। अम्युदय की कामना वाले मनुष्य को कुचिन्तन का त्याग करके सच्चिन्तन करना चाहिये। दुःख ही जिनका फल है ऐसे अनृत (मिथ्या) आचरण व्यभिचारादि पाप कर्मों को छोड़ने कें लिये तथा सुख ही जिसका फल है ऐसे सत्य–ब्रह्मचर्य आदि पुण्य व्रतों को ग्रहण करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा–शुद्ध संकल्प करना आवश्यक है। इस संकल्प की निर्विघ्न सफलता के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। यथा–

ओम् अग्ने व्रतपते! व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।। (यजुः 1–5)

अर्थ– हे अग्ने? (ब्रह्म बुद्धि करके उपासना करने से सर्व अभीष्ट

प्रदान करें वह जगदीश्वर) हे व्रतपते! सत्य आदि व्रतों के पालक! परमेश्वर! आपके द्वारा उपदिष्ट वेद–शास्त्र की आज्ञा के अनुसार आपकी कृपा से व्रत– अर्थात् सत्य– ब्रह्मचर्य अहिंसा–अस्तेय–युक्ताहारविहार–संध्या–मंत्रजप–ध्यान–योग–दान–अक्रोध आदि लक्षण वाले अभ्युदय निःश्रेयस् के साधनरूप व्रतों का मै अनुष्ठान करूँगा– यह मेरी प्रतिज्ञा है। आपकी कृपा से मैं दृढ़ पुरुषार्थ से उन सब व्रतों का अनुष्ठान करने में समर्थ बनूँ, वे मेरे व्रत फलपर्यन्त निर्विघ्न पूर्ण हों– यह मेरी आपसे प्रार्थना है। यह मेरा व्रत सफल सिद्ध हो। हे भगवन्! मैं इस असत्य आचरण से, जो अधोगति कराने वाला है इससे और असत् भाषण–असद्विचार–असत्संग–मिथ्याभिमान–मिथ्याज्ञान से पृथक् होकर शास्त्रप्रसिद्ध त्रिकालाबाध्य सत्य को ग्रहण करता हूँ। सत्कर्म– सद्भाषण–सद्विचार–सत्संग–सदभिमान–सदात्मज्ञान, जो वेदादि शास्त्रों के प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से तथा विद्वानों के सत्संग से स्वान्तःशुद्धिपूर्वक सुविचार से सम्यक्तया परीक्षण करके निश्चित हुआ है और जो सब के लिये सुखकारक तथा हितकारक है, उस सत्य को ग्रहण करने के लिये मैं आपकी शरण लेता हूँ अर्थात् अन्तर्यामी ब्रह्मतत्त्व का जो त्रिकालाबाध्य आनन्दस्वरूप है उसको प्राप्त होता हूँ। इस प्रकार सत्य– आदि के द्वारा सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो जाय, यह व्रत की यथार्थता है।

प्रश्न– क्या व्रत से ब्रह्म की प्राप्ति होती है?

उत्तर– हाँ! व्रत से दीक्षा–दक्षिणा–श्रद्धा आदि से सत्यस्वरूप ब्रह्म का दर्शन होता है इसलिये व्रत आदि ब्रह्म–साक्षात्कार के साधन है। देखिये–

ओम् व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

(यजुः19/30)

व्रतेन–सत्य ब्रह्मचर्यादि व्रत से तथा शौच संतोष आदि नियम

लक्षणवाले व्रत से **दीक्षा**– ज्ञान प्राप्ति की योग्यता रूप अधिकार प्राप्त होता है। **दीक्षया**– दीक्षा से दक्षिणा यानी प्रतिष्ठा श्री– ब्रह्मविद्या प्राप्ति की दक्षता प्राप्त होती है। (दक्षिणा–दक्षिणया विभक्तिलोपः) दक्षिणा से श्रद्धा अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है **श्रद्धा से ''सत्यम्'' ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म''** की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ब्रह्म प्राप्ति में प्रथम साधन व्रत ही है।

प्रश्न– उपवास में लंघन करना चाहिये या नही ?

उत्तर– अजीर्ण होने पर पेट में किसी प्रकार का विकार होने पर तथा रुग्णावस्था में लंघन करने से कोई हानि नहीं होती, परन्तु आयुर्वेद में सर्वथा लंघन का निषेध किया है। अतः अपनी प्रकृति के अनुसार दूध–शरबत आदि लेना चाहिये, संतरा, मौसम्बी आदि फल या फलों का रस लेना चाहिये, सर्वथा लंघन करना हानिकारक है।

प्रश्न– एकादशी आदि के व्रत में दैनिक भोजन दाल भात आदि नहीं लिया जाता, परन्तु आलू–शींघाड़ा, मोरिया, खजूर, द्राक्षा, दूध, चाय आदि लिया जाता है तो यह ठीक है न?

उत्तर– चाय तो लेनी ही नहीं चाहिये, क्योंकि चाय का तो सदा के लिये निषेध है– इसमें भी जब व्रत हो तब तो चाय का सर्वथा त्याग करना चाहिये। दूध तथा शुद्ध सात्विक शरबत–फल–फलादि ले सकते हैं। बहुत लोग एकादशी के दिन फलाहार में बहुत व्यंजन बनाते है–जैसे शींघाड़ा का शीरा (हलवा) मोरिया का भात–राजगिरा की पूरी, कढ़ी, आलू का बड़ा, मूँगफली के लड्डू आदि के साथ सेंधा नमक, हरीमिर्च, पुदीना–सूरन आदि डालकर स्वादिष्ट भोजन बनाकर खाते हैं, यह योग्य नही है।

प्रश्न– ऐसा भोजन लेने में क्या आपत्ति है?

उत्तर– प्रथम तो आर्थिक दृष्टि से नुकसान है। प्रतिदिन के सादे भोजन में जितना खर्च होता है व्रत वाले उपर्युक्त भोजन में चार गुणा अधिक

खर्च हो जाता है। दूसरा ऐसा भोजन राजस–तामस होने के कारण आलस्य–प्रमाद–काम–क्रोध आदि दोषों को प्रकट करता है। अत: ऐसा भोजन त्याज्य है।

प्रश्न– **व्रत के दिन फलाहार करना या भोजन?**

उत्तर– व्रत के दिन दूध रसदारफल शरबत (बाजार का नहीं) कन्द–मूल आदि लेना चाहिये। अधिक भूख हो तो भोजन लेने में भी दोष नहीं है। व्रत में मात्र भात नही लेना चाहिये।

प्रश्न– **सात्विक भोजन क्या है?**

उत्तर– **आयु:सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना:।**
रस्या: स्निग्धा: स्थिरा: हृद्या आहारा: सात्विकप्रिया:।।

(गीता 17/8)

आयु–बुद्धि–बल–आरोग्य, सुख और प्रीति को बढाने वाले, रसयुक्त चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन के पदार्थ सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। यह सात्विक भोजन है।

प्रश्न– **ऐसा भोजन कौन से पदार्थो से बनता है ?**

उत्तर– धान्य में गेहूँ–चना–चावल–मूँग–अरहर की दाल–मधुर रस में मिश्री, भाजी मे तांदलिया– परवल– सूरण–सेंधा नमक–आमला–गाय का दूध–दही–घी–किसमिस–धनियाँ–जीरा–कालीमिर्च आदि सात्विक पदार्थ हैं। इन पदार्थों के योग से बना हुआ भोजन सात्विक है तथा आयुर्वेदा–नुकूल होने से पथ्य भी है। ये सब वस्तुएँ सत्य की कमाई के द्रव्य से प्राप्त की हों तब सात्विक मानी जाती है। दो नम्बरी धन से प्राप्त वस्तुएँ अशुद्ध हैं, इनसे बना भोजन करने से मन मलीन हो जाता है।

प्रश्न– **तेल–मिर्च–इमली–गरम मशाला आदि तो खाना चहिये न?**

उत्तर– उपवास में तो ये पदार्थ त्याज्य हैं ही। नित्य के भोजन मे भी इनका प्रय़ोग अधिक लाभप्रद नहीं है। जिसको अपना जीवन सात्विक एवं

मन–बुद्धि को निर्मल बनाने की इच्छा हो, उसे ऊपर बताये हुए सात्विक भोजन को ही अपनाना चाहिये।

प्रश्न– राजस पुरुष का आहार कैसा होता है?

उत्तर– (गीता 17/9) कड़वे–खट्टे– लवणयुक्त, बहुत गरम–तीखे–रूखे, दाहकारक और दु:ख चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।

प्रश्न– तामस पुरुष को कैसा आहार प्रिय होता है?

उत्तर– (गीता 17/10) जो भोजन अधपका, रस रहित, दुर्गन्धयुक्त, वासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

प्रश्न– सात्विक, राजस, तामस पुरुष के क्या लक्षण हैं?

उत्तर– इसके लिये गीता का चौदहवाँ अध्याय पढना चाहिये। यहाँ तो ऊपर बताये हुए तीन प्रकार के भोजन में से जिसको जैसा भोजन प्रिय हो उसको उसी कोटि का जानना चाहिये।

प्रश्न– वर्तमान में तो पहचत्तर टका (प्रतिशत) मनुष्य राजस तामस भोजन करते हैं तो इसका क्या है?

उत्तर– तभी तो आज के मनुष्यों के शरीर में शक्ति का अभाव है, निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं है विवेक वैराग्यादि तो न जाने कहाँ गायब हो गये। बल–वीर्य–तेज–ओज नष्ट हो गया सा प्रतीत होता है। परिणामत: खाँसी–दमा–टी. वी.–कैन्सर आदि अनेक रोगों के शिकार मनुष्य दिखते हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति को सात्विक आहार ही लेना चाहिये, जिससे बुद्धि बढ़े, मन एकाग्र हो, शारीरिक सम्पूर्ण शक्तियों का विकास होकर मानव जीवन सुखमय होकर सफल हो जाये।

पर्व और उत्सव

प्रश्न– पर्व किसको कहते हैं ?

उत्तर– विशेष तिथियाँ–जयन्तियाँ–चतुर्दशी–अष्टमी–आमावस–पूर्णिमा–संक्रान्ति–चन्द्रग्रहण–सूर्यग्रहण–महाशिवरात्रि आदि दिन पर्व कहलाते है।

प्रश्न– उत्सव का क्या मतलब है ?

उत्तर– पर्व के दिन तीर्थ स्नान–दान–उपवास–मंत्रजप श्राद्ध–ब्रह्मण भोजन–यज्ञ–सभा–प्रवचन–कथा कीर्तन किया जाता है वह उत्सव कहलाता है।

प्रश्न– पर्वकाल में क्या करना चाहिये और पर्वतिथियाँ कौन कौन हैं ?

उत्तर– प्रायः सब पर्वो में पवित्रता पूर्वक स्नान–दान–देवदर्शन–मंत्रजप–कथा–कीर्तन–भजन–ध्यान–ब्रह्मभोज–समष्टिभोज–यज्ञ–यागादि के साथ अनेक धार्मिक तथा आध्यात्मिक कार्य करने चाहिये। किसी विशेष पर्व में तो बड़े उत्सव मनाये जाते हैं जैसे– मकर संक्रान्ति–मौनी अमावस्या–माघ मास में प्रयाग में कुम्भ का मेला लगता है। लाखों करोड़ों की संख्या में यात्री आकर कल्पवास–गंगास्नान– भजन–कीर्तन आदि करके पूरे मास तक उत्सव मनाते हैं। बसन्त पंचमी को सरस्वती जन्मोत्सव मनाया जाता हैं। वसन्तोत्सव के बाद फाल्गुन में महाशिवरात्रि में शिवपूजन होता है। फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से होलाष्टक बैठता है तथा पूर्णिमा को होलिका दहन का बड़ा उत्सव होता है, जो शूद्रों का प्रधान उत्सव है। उसके बाद चैत्र शुक्ल में नववर्ष के साथ नवरात्र महोत्सव की धूम रहती है। रामायण के अखण्ड पाठ या नवाह्नपाठों के साथ रामनवमी महोत्सव होता है। वैशाख शुक्ल पक्ष में अक्षय तृतीया–परशुराम जयन्ती, पंचमी को श्री शंकराचार्य जयन्ती तथा ज्येष्ठ शुक्ल दशमी गंगा दशहरा तथा निर्जला एकादशी–आषाढी पूर्णिमा में व्यास पूजन श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव, श्रावणी पूर्णिमा में श्रावणी उपाकर्म

पूरे भारत में मनाया जाता है। इस दिन ब्राह्मण यज्ञोपवीत बदलते हैं प्रायश्चित्त, ऋषि पूजन एवं यज्ञ आदि करके बड़ा महोत्सव मनाते है। उसी दिन रक्षाबन्धन होता है। यह ब्राह्मणों का महोत्सव है। उसके आठ दिन बाद श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव सारे भारत में सर्वत्र मनाया जाता है। आश्विन पितृपक्ष में पन्द्रह दिन तक पितरों की शान्ति के लिये श्राद्ध–तर्पण एवं ब्रह्मभोज का सिलसिला चलता रहता है, दान दक्षिणा दी जाती है। उसके बाद आश्विन नवरात्र महोत्सव आता है, जो शक्ति आराधना का महोत्सव है–धटस्थापन, नव दुर्गा पूजन, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती पूजन– यज्ञ के बाद विजयादशमी का बड़ा महोत्सव होता है– रामलीला होती है, कुम्भकर्ण रावण के पुतले जलाये जाते हैं– यह क्षत्रियों का पर्व माना जाता है इसके बाद शरदोत्सव शरद–पूर्णिमा का पर्व मनाया जाता है। इसके बाद कार्तिक अमावस्या को दीपावली महोत्सव का आनन्द लेते हैं, सर्वत्र दीपकों के प्रकाश से वातावरण तेजोमय होकर चमकने लगता है। इस समय में मकानों की सफाई– सफेदी–सजावट के साथ सारे गाँव–शहर–सड़क–गली आदि में दीपमाला जलाकर उत्सव मनाया जाता है। साधक– वृन्द रात्रि पर्यन्त मंत्रजप के द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं। यह पर्व वैश्यों का माना जाता है। इसमें महालक्ष्मी की आराधना होती है। दीपावली के अगले दिन अन्नकूट मनाया जाता है। कार्तिक मास में प्रबोधिनी एकादशी–तुलसी विवाह–देवदिवाली उत्सव के साथ गन्ने के रसपान का प्रारम्भ होता है। कार्तिकी पूर्णिमा त्रिपुरारि पूर्णिमा में शिवपूजन होता है इसी दिन भगवान् शिव ने त्रिपुरासुर का संहार किया था। कार्तिक पूर्णिमा के दिन गंगादि देवनदियों में स्नान का विशेष महत्व है। इसी प्रकार सारे देश में जहाँ–तहाँ प्रान्तीय उत्सव भी होते रहते है। जैसे महाराष्ट्र में गणेशोत्सव, बंगाल में दुर्गापूजन, ओड़ीसा में रथयात्रा (जगन्नाथपुरी), कर्नाटक तथा द्रविड़ में पोंगल मास, पूर्व में रामलीला, कृष्णलीला आदि। ये सब उत्सव

उत्साह बढ़ाते हैं। कहीं कहीं तो बड़े मेले लगते हैं, जो धर्म संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा करते हैं।

प्रश्न– पर्वों का महत्व क्या है। इनसे क्या लाभ है ?

उत्तर– पर्व काल में देश–देशान्तर में असंख्य मनुष्य एकत्र होकर पारस्परिक प्रेम से मिलते हैं, आदान–प्रदान करते हैं, पारस्परिक झगड़े मिटाते हैं। आन्तरिक राग–द्वेष मिटाते हैं, शारीरिक एवं मानसिक पापों को धो डालते हैं, पुण्यार्जन करके लोक में अपना यश फैलाते हैं तथा परलोक में अखण्ड सुख प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस प्रकार अपनी संस्कृति सभ्यता का विस्तार करके उसकी रक्षा करते हैं। ऐसे उत्सवों पर्वों के होते रहने से बड़ा लाभ है। सहकार–सहिष्णुता–सदाचार पालन–यम–नियम–संयम–परोपकार के साथ आत्मीयता की वृद्धि होती है, अपना ज्ञान बढ़ाते हैं साथ ही समाज का संगठन होता है। अतः ऐसे उत्सव मनाते ही रहना चाहिये।

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीपान्तर्गत प्रथम किरण समाप्त।

ऊँ शिवः सर्वं सर्वत्र

प्रश्नोत्तर प्रदीप

द्वितीय किरण

धर्म

प्रश्न– धर्म किसको कहें तथा उसका क्या स्वरूप है।

उत्तर– धर्म शब्द **'धृञ्'** धारणे धातु से बना है, जिसका अर्थ धारण करना है। **''धरति लोकान्, ध्रियते पुण्यात्मभिर्वा''** अर्थात् जो लोकों को धारण करें अथवा पुण्यात्माओं के द्वारा जो धारण किया जाय वह धर्म है। महाभारत में धर्म की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है–

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।

(मं. भा. कर्ण प. 69/59)

धारण करने से वह धर्म है। धर्म ही सम्पूर्ण प्रजा को धारण करने वाला है। जो धारणा से युक्त है वह धर्म है– यह निश्चित अर्थ है।

किसी भी वस्तु की आत्मा या अनात्मा की जो विधायक वृत्ति यानी विशेषरूप से धारण करने वाली वृत्ति है उसे ही धर्म कहा गया है या यों कहना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ का व्यक्तित्त्व जिस वृत्ति पर निर्भर है वही उस पदार्थ का धर्म है। धर्म की न्यूनता से पदार्थ में न्यूनता आती है या उसका क्षय होता है तथा धर्म की वृद्धि से उस पदार्थ की वृद्धि होती है या विशेषता होती है। पुष्प का एक धर्म है **'सुवास'** उसकी वृद्धि उसकी कली का विकास है तथा न्यूनता पुष्प का ह्रास है। वैशेषिक दर्शन में धर्म का फल बताते हुए धर्म की सुन्दर परिभाषा दी है **''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म''** धर्म वह है कि जिसके सेवन से लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक निःश्रेयस् की सिद्धि हो।

''**अथातो धर्म जिज्ञासा**'' इस सूत्र से ही आचार्य जैमिनी ने **पूर्व मीमांसा** का आरम्भ किया है। धर्मानुकूल कर्म को ही जानने की इच्छा से विचारपूर्वक निश्चय किया कि 'वेद तथा ऋषियों के द्वारा जिस कर्म को करने की प्रेरणा दी जाय' वही धर्म है, अर्थात् धर्म का लक्ष्यार्थ धर्मानुसार–आचरण करना है, अतः इस दृष्टि से धर्म व्यापक है–नित्य है– यौगिक है।

प्रश्न– धर्म की व्यापकता पर विशेष प्रकाश डालें?

उत्तर– दुनियाँ में प्रत्येक पदार्थ तथा प्राणी का अपना स्वाभाविक धर्म अवश्य होता है। और जिसका जो धर्म होता है वह धर्मी में हमेशा रहता हैं जैसे अग्नि की उष्णता ,जल की शीतलता आदि। जो वस्तु नित्य है उसका धर्म भी नित्य होता है, क्योंकि वस्तु की नित्यता के साथ उसके धर्म की नित्यता स्वाभाविक है। इसलिये '**धर्म**' शब्द का उपयोग सब वस्तु–अवस्तु–आत्मा–अनात्मा के साथ व्यापक रीति से हो सकता है। अनेक प्राणि–पदार्थों के धर्मों का विस्तृत विवेचन किया जा सकता है जैसे–आकाश का धर्म, अग्नि का धर्म, पृथ्वी का धर्म, काल धर्म, देश धर्म, वस्तु धर्म, जीव धर्म, देह धर्म, देवता धर्म, राक्षस धर्म, मनुष्य धर्म, सैनिक धर्म, किसान धर्म, पशु धर्म आदि सब का धर्म सबके साथ है?

प्रश्न– साक्षात् धर्म का लक्षण क्या है?

उत्तर– **वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। (मनु स्मृ. 2/12)

वेद, स्मृति, श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा किया गया सदाचार का आचरण तथा अपने आपको प्रिय ऐसा आत्मसंतोष, ये चार साक्षात् धर्म के लक्षण हैं।

प्रश्न– धर्माचरण का क्या अर्थ है?

उत्तर– '**दम्भेन हीनः क्रियते स धर्मः**' दम्भरहित होकर जो यज्ञ–दान–तप–

ध्यान–पूजा–पाठ आदि शुभकार्य किया जाय वह धर्माचरण है। दम्भाचरण धर्माचरण नहीं है। अपनी आन्तरिक शुभ सात्विक वृत्ति से शरीर–मन वाणी के द्वारा जो जप–व्रत–यज्ञादि का अनुष्ठान त्याग–तप आदि किया जाय उसे धर्माचरण कहते है। '**धर्मस्य निर्व्याजता**' अतः निष्कपटता ही धर्म का भूषण है।

प्रश्न– दम्भ से भी धर्माचरण होता है क्या ?

उत्तर– हाँ, महाभारत मे लिखा है–

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।

यज्ञ–अध्ययन–दान–तप–सत्य–धृति–क्षमा तथा अलोभ ये धर्म के आठ प्रकार हैं।

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति।।

उपर्युक्त धर्म के आठ प्रकार में से प्रथम चार यानी यज्ञ, अध्ययन, दान और तप ये दम्भ से भी किये जा सकते हैं। ''**कालनेमि जिमि रावण राहू**'' परन्तु सत्य, धृति, क्षमा और अलोभ ये दम्भ से नहीं किये जा सकते। कई लोग लोगों को दिखाने के लिये यज्ञादि का आचरण करते देखे जाते हैं, परन्तु वास्तव में वे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये कपट से ऐसा करते हैं, उनके मन में कुछ और तथा आचरण में कुछ और ही होता है– यह दुरात्मा का लक्षण है। वे मान प्रतिष्ठा चाहते हैं, धर्म की आड़ में छल कपट करके अपना स्वार्थ साध लेते है। परन्तु ऊपर के आठ में से पीछे के चार सत्य, धृति, क्षमा और लोभ न करना ये दम्भ से नहीं किये जा सकते, ये लक्षण तो विशिष्ट एवं श्रेष्ठ महापुरुषों में ही देखने को मिलते हैं। ऐसे महात्मा ही ''**आत्मवत्सर्वभूतेषु**'' सर्वात्मभाव में स्थित होकर समदृष्टि रखते हैं।

प्रश्न– क्या धर्माचरण में सर्वात्मभाव आवश्यक है?

उत्तर– **श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।**
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

धर्म का सारतत्त्व सुनो और सुन करके निश्चय करो यानी तदनुकूल आचरण करो। अपने से प्रतिकूल व्यवहार दूसरों के साथ मत करो। अर्थात् प्राणिमात्र के साथ दया–सरलता–मित्रता एवं सत्य का व्यवहार करो, क्योंकि सबमें एक ही आत्मा विराजमान है ऐसा व्यापक भाव रखकर सबको सुख मिले, किसी को दुःख न हो– ऐसा बर्ताव करना मुख्य धर्म है। गीता में कहा भी है–

आत्मौपम्मेन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।। (गीता 6/32)

हे अर्जुन ? जो योगी अपने ही समान सम्पूर्ण प्राणियों में सुख दुःख समान देखता है, वह योगी परमश्रेष्ठ माना गया है। यही समत्त्वभाव रूप धर्म सर्वोत्तम है।

प्रश्न– धर्म के अनेक लक्षण हैं, परन्तु थोड़े ही धर्माचरण से सर्वात्मभाव की प्राप्ति हो जाय– ऐसा धर्म कौन सा है?

उत्तर– **संक्षेपात्कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वः।**
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

हे मनुष्यो! आपके लिये मैं संक्षेप में ही धर्म का वर्णन करता हूँ। सुनो परोपकार ही बड़ा पुण्य है तथा पर–पीड़ा यह बड़ा पाप है अतः परपीड़ा रूप अधर्म न करके परोपकार करो, परोपकार ही सच्चा धर्म है, इसी से सर्वात्मभाव की प्राप्ति हो सकती है।

प्रश्न– व्यापक धर्म के क्या लक्षण हैं?

उत्तर– मनुस्मृति में धर्म के दश लक्षण बताये हैं, जो सार्वभौम विश्व के मानवमात्र के लिये हितकारक, अति आवश्यक ग्राह्य एवं उपयोगी हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मन. 6/12)

धृति (धीरज–धैर्य), क्षमा, दम–मनोनिग्रह, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, (पवित्रता) इन्द्रियनिग्रह (विषयो से इन्द्रियों को रोकना), बुद्धि (शास्त्रादि का ज्ञान), विद्या (आत्मबोध), सत्य, अक्रोध (क्रोध न करना) ये व्यापक धर्म के दश लक्षण है। जो मनुष्य धर्म के इन दशविध लक्षणो को समझकर तदनुकूल आचरण करता है वह सर्वात्मभाव प्राप्त कर सद्गति को प्राप्त करता है।

प्रश्न– **अहो! इस दशविध धर्म के आचरण से मनुष्य परमगति तक पहुँच जाता है, तो कृपा करके इनमें से प्रत्येक का महत्व अलग–अलग समझावें। पहले 'धृति का लक्षण बतलायें?**

धृतिः

उत्तर– धीरज धैर्य यह धर्म का प्रथम लक्षण है। इससे यह सूचित होता है कि प्रत्येक मनुष्य को हर दशा में धीरज से काम लेना चाहिये। जल्दी नहीं करे। गीता में– ''**तेजः क्षमा धृतिः शौचम्**'' (गीता 16/3) तेज, क्षमा, धृति एवं शौच को देवी सम्पति के रूप मे वर्णन किया है तथा कहा है कि ''**दैवी सम्पद्विमोक्षाय**'' (गीता 16/5) दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये है। तथा (गीता18/33/34/35) में सात्विकी, राजसी तथा तांमसी धृति बताई है। वहाँ '**धृत्या यया**' जिस अव्यभिचारिणी धृति से मन प्राण इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर ध्यान योग द्वारा परमात्मा में लगाया जाय वह सात्विकी धृति है, इससे परमात्मा का साक्षात्कार होता हैं लोक भाषा में कहावत है ''**धीरा सो गंभीरा**'' रामायण में तुलसीदास जी ने लिखा है कि आपत्ति काल में ही चार की परीक्षा होती है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपत काल परखिये चारी।।

तभी तो दशरथ को धैर्य बँधाते हुए महारानी कौशल्या ने कहा था– ''**धीरज धरिय तो पाइय पारू**'' इसी से नीतिकारो ने कहा है– ''**त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले।**'' अर्थात् विपत्ति काल में भी धीरज का त्याग न करें, कदाचित् धीरज से विपत्ति का अन्त आवे और स्वाभाविकी स्थिति पुनः प्राप्त हो जाय। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने प्रत्येक कार्य क्षेत्र में धैर्य धारण करे और अपने कार्य की सफलता प्राप्त करे। धृति यह धर्म का सार्वभौम अंग होने से मनुष्यमात्र के लिये आचरने योग्य है। धैर्यशाली मनुष्य दुःख में विचलित नही होता।

क्षमा

प्रश्न– क्षमा क्या है? और वह धर्म किस प्रकार से है ?

उत्तर– क्षमा दैवी सम्पत्ति है। '**ज्ञानस्याभरणं क्षमा**' क्षमा ज्ञान का आभूषण है क्षमा के बिना ज्ञान की शोभा नहीं। प्रतिकार करने की सामर्थ्य होते हुए भी प्रतिकार न करना क्षमा है। मनु ने कहा है– ''**अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन**'' परापवाद को सहन करना, दूसरे का अपमान न करना यह क्षमा है। देखिये–

कायेन मनसा वाचा शत्रुभिः परिपीडिते।
बुद्धिक्षोभनिवृत्तिर्या क्षमा सा मुनिपुङ्गव ।।

हे मुनिश्रेष्ठ! शरीर मन और वाणी से शत्रु के द्वारा पीड़ा (दुःख) दिया जाने पर भी बुद्धि में किसी प्रकार का क्षोभ न होना, यह क्षमा का स्वरूप है। वृहस्पति स्मृति मे कहा भी है–

बाह्ये वाऽध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित्।
न कुप्यति न वा हन्ति सा क्षमा परिकीर्तिता।।

अर्थात् किसी के द्वारा बाह्य (शारीरिक) अथवा आध्यात्मिक (मानसिक) दुःख उत्पन्न किया जाने पर भी उसके प्रति क्रोध नहीं करना और मारना भी नहीं, यह क्षमा है। क्षमा करना यह महापुरुषों के

धर्म का दूसरा अंग है। नीति में कहा है–''**क्षमा वीरस्य भूषणम्**'' क्षमा करना वीर का भूषण है। सुभाषित में भी कहा है– '**विपदि–धैर्यमथाभ्युदये क्षमा**' विपत्ति में धैर्य तथा सम्पत्ति (अभ्युदय) में क्षमा करना यह महापुरुषों का जन्मसिद्ध स्वभाव है। कहा भी है–

क्षमा बलमशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ।
क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न सिध्यति।।

अर्थात् अशक्तों का बल क्षमा है तथा सशक्तों का भूषण क्षमा है। इस लोक में क्षमा वशीकरण है, क्षमा से क्या सिद्ध नहीं होता। सब कुछ सिद्ध हो सकता है। कहा भी है ''**क्षमया..........वशीकुर्यात् जगत्सर्वम्**'' क्षमा से समस्त जगत् को वश में करें।

क्षमाशस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।।

जैसे घास रहित स्थान में पडी हुई अग्नि अपने आप शान्त हो जाती है वैसे क्षमारूपी शस्त्र जिसके हाथ में है दुर्जन उसका क्या बिगाड़ेगा वह स्वयं ही शान्त हो जायेगा। भर्तृहरि ने कहा है ''**क्षान्तिश्चेत् कवचेन किम्**'' जीवन मे यदि क्षमा है तो फिर कवच धारण का क्या प्रयोजन? कुछ नहीं। पुराणों में क्षमा के लिये असंख्य उदाहरण मिलते हैं। जैसे वशिष्ठ जी तो क्षमा की मूर्ति ही थे, विश्वामित्र ने उनका बड़ा अपकार किया था, तो भी क्षमा की मूर्ति वशिष्ठ ने अपकार के बदले मे उनका उपकार ही किया। ऐसे ही युधिष्ठिर भी क्षमाशील थे, कौरवों ने तथा दुर्योधन ने उनके अनेक अपकार किये, दुष्टता करते रहे तो भी युधिष्ठिर हमेशा क्षमा ही करते रहे। जब दुर्योधन अर्जुन आदि पाण्डवों को मारने के लिये वन में गये और संयोगवशात् उनको गन्धर्वों ने हराकर कैद कर लिया तब युधिष्ठर ने ही समझा बुझाकर अर्जुन तथा भीम को भेजकर उनको बन्धन से छुड़ाया था। इससे बड़ी क्षमा और क्या हो सकती है? इसीलिये कहा है–

''**धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी**'' धैर्य जिसका पिता और क्षमा उसकी माता है वह सदा सर्वत्र सुरक्षित ही है। अतः दैवी सम्पत्ति रूप क्षमा का आचरण प्रत्येक व्यक्ति के निःश्रेयस् का साधन होने से ग्राह्य है।

दमः

प्रश्न– 'दमः' का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– **दमः**– मनोनिग्रह यह धर्म का तीसरा अंग है। ''**मनसो दमनं दमः**'' मन को विषयों से रोककर परमात्मा के स्वरूप में स्थिर करना– मनो निरोध ही '**दम**' है। मन की वृत्ति अत्यन्त चंचल है तो भी मन को अपने वश मे करना असंभव नही है। '**अभ्यासवैराग्याम्यां तन्निरोधः**' (यो. द.) अभ्यास और वैराग्य से मनोनिरोध होता है। गीता में भी कहा है कि ''**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते**'' (गीता 6/35) यह मन अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है। ''**तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः**'' ईश्वर में मन की स्थिति के लिये बारम्बार प्रयत्न करना अभ्यास है। इस अभ्यास के द्वारा मन को वश में करके विषयों में दोषदृष्टि करके उनसे मन को हटाकर ईश्वर के चरण कमल में लगाने का नाम वैराग्य है। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन शीघ्र ही अपने अधीन हो जाता है। इस प्रकार मन का दमन ही '**दम**' है। यह आवश्यक धर्म है। देखो, जिसका मन जितना अधिक चंचल होगा वह उतना ही अधिक दुःखी होगा। लोगों को कहते सुनते देखते है कि मेरे भाई तुम उदास क्यों हो? सामने से उत्तर मिलता है कि ''क्या करूँ भाई! मेरा मन ही ठिकाने पर नहीं है इससे मुझे शान्ति नहीं है'' इससे यह सिद्ध होता है कि मन को शान्त करना अत्यन्त आवश्यक है। जब आप अपने मन को बलवान्–शान्त–दृढ़ और स्थिर बनायेगें तभी आपको पूर्ण सुख–अखण्ड शान्ति एवं आत्मज्ञान प्राप्त होगा। गीता में दम को दैवी सम्पत्ति में गिना है तथा मनु ने दम को मानवधर्म कहा हैं अतः उत्कर्ष कारक होने से मन का दमन करना मनुष्य मात्र का परम

कर्तव्य है।

प्रश्न– चित्त की वृत्तियाँ कितनी हैं? और उनका क्या फल है?

उत्तर– चित्त की पाँच वृत्तियाँ हैं। जो वृत्तियाँ योग साधन में विघ्नरूप एवं उत्साह मन्द करने वाली हों उनको क्लिष्ट अर्थात् बाधारूप कहा है तथा जो वृत्तियाँ योगाभ्यास में उत्साह बढ़ाने वाली तथा साधन में सिद्धि देने वाली हैं उनको अक्लिष्ट यानी सिद्धिदायक कहा गया है।

प्रश्न– ये पाँच वृत्तियाँ कौन सी हैं?

उत्तर– **''प्रमाण–विपर्यय–विकल्प–निद्रा–स्मृतयः''** (यो. द. 1/6)

प्रमाण–विपर्यय–विकल्प–निद्रा और स्मृति ये पाँच चित्त की वृत्तियाँ हैं।

प्रश्न– प्रत्येक वृत्ति का कार्य एवं फल क्या है?

उत्तर– क्रमशः समझिये–

प्रमाण–प्रमाणवृत्ति के प्रत्यक्ष–अनुमान और आगम ये तीन भेद हैं। जो इन्द्रियों से ग्रहण किया जाय वह **प्रत्यक्ष** है, जहाँ इन्द्रियों की गति न पहुँचे वहाँ किसी लक्षण से काम लेकर किसी वस्तु को जाना जाय वह **अनुमान** है। जैसे नदी में बाढ़ आई देखकर ऊपर के भाग में वर्षा हुई है ऐसा अनुमान से जाना जाता है। जहाँ प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों की गति न हो वहाँ वेद–शास्त्र प्रमाण हैं उसे **आगम प्रमाण** कहते हैं इस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है। इसको चित्त की प्रमाण वृत्ति कहते है। इसको ऐसा समझो– बुद्धि, मन और इन्द्रियों के द्वारा जानने में आने वाले जितने भी पदार्थ हैं, उनका अन्तःकरण और इन्द्रियों के साथ बिना किसी व्यवधान के सम्बन्ध होने से जो भ्रान्ति तथा संशयरहित ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष अनुभव से होने वाली **प्रमाण वृत्ति** है। जिन प्रत्यक्ष दर्शनों से संसार के पदार्थों की क्षणभंगुरता का निश्चय होकर उनमें दुःख की प्रतीति होकर वैराग्य हो जाता है तथा योग साधन में

रुचि–श्रद्धा एवं उत्साह बढ़ जाते हैं वह प्रमाण वृत्ति सरल सुगम है इसके विपरीत वृत्ति कठिन है। **अनुमान प्रमाण**– में किसी प्रत्यक्ष दर्शन के सहारे युक्तियों द्वारा जो अप्रत्यक्ष पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान होता है– जैसे धूम को देखकर अग्नि की विद्यमानता का ज्ञान होना। **आगम प्रमाण**–वेद–शास्त्र और आप्त (यथार्थ वक्ता) पुरुषों के वचन को **'आगम'** कहते हैं। जो पदार्थ मनुष्य के अन्त:करण और इन्द्रियों के प्रत्यक्ष नहीं है एवं जहाँ अनुमान की भी पहुँच नहीं है, उसके स्वरूप का ज्ञान वेद, शास्त्र और महापुरुषों के वचनों से होता है वह आगम से होने वाली चित्त की प्रमाण वृत्ति है।

विपर्यय– किसी भी वस्तु के असली स्वरूप को न समझकर उसे दूसरी ही वस्तु समझ लेना यह विपरीत ज्ञान ही विपर्यय वृत्ति है–जैसे छीप (सीप) में चाँदी की प्रतीति ।

विकल्प– जो केवल शब्द के आधार पर बिना हुए पदार्थ की कल्पना करने वाली चित्त की वृत्ति है, वह विकल्पवृत्ति है। आगम प्रमाण जनित वृत्ति से होने वाले विशुद्ध संकल्पों के सिवा सुनी–सुनायी बातों के आधार पर मनुष्य, जो नाना प्रकार व्यर्थ संकल्प करता है उन सबको विकल्प वृत्ति के ही अन्तर्गत समझना चाहिये।

विपर्यय वृत्ति में तो विद्यमान वस्तु के स्वरूप का विपरीत ज्ञान होता है और विकल्पवृत्ति में अविद्यमान वस्तु की शब्द ज्ञान के आधार पर कल्पना होती है। यही विपर्यय और विकल्प का भेद है।

निद्रा– अभाव के ज्ञान का अवलम्बन करने वाली वृत्ति निद्रा है। जिस समय मनुष्य को किसी भी विषय का ज्ञान नहीं रहता, केवल मात्र ज्ञान के अभाव की ही प्रतीति रहती है, वह ज्ञान के अभाव का ज्ञान जिस चित्तवृत्ति के आश्रित रहता है, वह निद्रावृत्ति है। निद्रा भी चित्त की वृत्ति विशेष है, तभी तों मनुष्य गाढ़ निद्रा से उठकर कहता है कि 'मुझे आज ऐसी गाढ़ निद्रा आयी है, जिसमें किसी बात की

कोई खबर नहीं रही।' इस स्मृति वृत्ति से ही यह सिद्ध होता है कि निद्रा भी एक वृत्ति है नहीं तो जगने पर उसकी स्मृति कैसे होती? महर्षि पतंजलि ने निद्रा को चित्त की वृत्ति माना है अन्य दार्शनिक नहीं मानते।

स्मृति– अनुभूत विषय की अविस्मृति को स्मृति कहते हैं। अर्थात् अनुभव किये हुए विषय का न छिपना, प्रकट हो जाना स्मृति है।

उपर्युक्त प्रमाण– विपर्यय–विकल्प और निद्रा इन चार प्रकार की वृत्तियों द्वारा अनुभव मे आये हुए विषयों के संस्कार चित्त में पड़े हैं, उनका पुनः किसी निमित्त से स्फुरित हो जाना ही स्मृति है।

उपर्युक्त इन पाँच वृत्तियों का निरोघ करना **योग** है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ (यो. द. 1/2)

इसी को दूसरे शब्दों में 'दम' या मनोनिरोध कहते है। यही निर्विकल्प समाधि है।

प्रश्न– चित्त निरोध यह समाधि है परन्तु चित्त की तो अन्य भूमिकाएँ हैं न, वे कौन सी है?

उत्तर– क्षिप्त–विक्षिप्त–मूढ–एकाग्र तथा निरुद्ध ये चित्त की पाँच भूमिकाएँ हैं।

प्रश्न– इनकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिये।

उत्तर– जैसे पीपल का पत्ता हवा से हिलता रहता हैं, जैसे दीपक वायु से चंचल बना रहता है वैसे ही वासना से मन निरन्तर चंचल बना रहे, स्थिर न हो वह चित्त की ''**क्षिप्त**'' भूमिका है। जिस विषय की प्राप्ति के लिये चित्त व्यग्र था उसे प्राप्त करके कुछ क्षणों के लिये चित्त स्थिर होकर पुनः चंचल हो जाय वह ''**विक्षिप्त**'' अवस्था है। काम–क्रोध–मोह–लोभ आदि के कारण अपने कर्तव्य अकर्तव्य का भान न रहना यह चित्त की '**मूढ़**' भूमिका है। सत्त्वगुण की अधिकता से निर्वात दीपक की भाँति चित्त का अपने ध्येय में स्थिर हो जाना, यह चित्त की

''**एकाग्र**'' भूमिका है। तथा चित्त योगाभ्यास के प्रभाव से परमात्मा के स्वरूप में लीन हो जाय वह चित्त की ''**निरुद्ध**'' अवस्था हैं इन पाँचों में से अन्तिम भूमिका निरुद्धावस्था को प्राप्त हुए चित्त को मनोनिग्रह यानी ''**दमः**'' कहना चाहिये।

अस्तेय

प्रश्न– अस्तेय धर्म क्या है ?

उत्तर– चोरी करने को ''**स्तेय**'' तथा चोरी न करने को ''**अस्तेय**'' कहते हैं। चोरी न करना यह धर्म का चौथा अंग ''**अस्तेय**'' है गीता में इसे दैवी सम्पत्ति कहा है, अतः कल्याणकारक है। चोरी करने को कोई सभ्य पुरुष उचित नही कहता। चोर भी चोरी तो करता है परन्तु मन में सोचता है यह काम अच्छा नहीं है, परिस्थिति वश चोरी में प्रवृत्त हो जाता है।

प्रश्न– आपने कहा कि चोरी करना यह निन्दित पाप कर्म है, अतः अधर्म है और चोरी न करना यह धर्म है यह कैसे ?

उत्तर– चोरी होने के बाद जिसकी वस्तु चुराई गई है उस व्यक्ति के मन तथा बुद्धि पर उस वस्तु के वियोग का आघात लगता है, मन दुःखी हो जाता है, यह एक प्रकार की हिंसा है। हिंसा करना महापाप है, यह अधर्म है। हिंसा न करना पुण्य है। धर्म है ''**अहिंसा परमो धर्मः**'' (म.भा.) अतः चोरी न करना धर्म है।

प्रश्न– चोर चोरी क्यों करता है?

उत्तर– चोर जिस वस्तु– द्रव्य या प्राणी– अधिभूत या अध्यात्म की चोरी करता है इसमें दो कारण हैं–''वस्तु का अभाव अथवा लोभवृत्ति'' जैसे सुवर्ण आदि धन के अभाव में चोरी करना या फिर लोभ वश चोरी करना। अधिकतया मनुष्य लोभ या तृष्णा अर्थात् धन की आसक्ति के कारण चोरी करने में प्रवृत्त होता है। ''**लोभः पापस्य कारणम्**'' लोभ चोरी आदि पाप करवाने में कारण भूत है। कहा भी है–

निःश्वोवष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो।
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति।।
चक्रेशः सुरराजतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति।
ब्रह्मा विष्णुपदं हरिः शिवपदं तृष्णावधिं को गतः।।

(श्लोक का अर्थ सरल है।)

इससे यह सिद्ध हो गया कि लोभ–अथवा तृष्णा आसक्ति चोरी में प्रबल कारण है। इसका सर्वथा त्याग करना उचित है।

प्रश्न– अधिभूत–अधिदेव और अध्यात्म चोरी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर– प्राणी की चोरी अधिभूत है। दूसरे की भूमि को अपनी भूमि में मिला लेना अधिदेव चोरी है। किसी के पास से तत्त्व ज्ञान–अध्यात्म विद्या प्राप्त कर लेना और उपकार न मानना–गुरु नही मानना, अपना स्वार्थ सिद्ध करके खिसक जाना यह अध्यात्म चोरी है। इन सब प्रकार की चोरियों का सर्वथा त्याग कर परोपकारमय जीवन बनाना यही सच्चा अस्तेय धर्म है।

शौच

प्रश्न– शौच भी धर्म है?

उत्तर– हाँ, मानवधर्म शास्त्र में मनुजी ने ''शौच'' को धर्म का पाँचवाँ अंग माना है तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में शौच को दैवी सम्पत्ति में गिना है। इससे शौच धर्म का महत्वपूर्ण अंग है।

प्रश्न– शौच का अर्थ क्या है और उसके प्रकार कितने हैं?

उत्तर– शौच का अर्थ शुद्धि–पवित्रता है, आन्तर शौच और बाह्य शौच ये शौच के दो प्रकार हैं।

बाह्यमाभ्यन्तरं चेति द्विविधं शौचमुच्यते ।
मृज्जलाभ्यां कृतं शौचं बाह्यं शारीरिकं स्मृतम्।।

मृत्तिका एवं जल के द्वारा की गई शुद्धि को बाह्य शारीरिक शौच

कहा है तथा मन के राग–द्वेष आदि दोषों को नष्ट करना आन्तरशौच है। दोनों प्रकार की शुद्धि होना आवश्यक है। शुद्धि के अवान्तर भेद बहुत हैं। यथा–

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।।

जल से शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, विद्या और तप से आत्मा की शुद्धि होती है तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

इस प्रकार शरीर–मन–आत्मा–बुद्धि की शुद्धि के साथ पंचभूत शुद्धि–गृह शुद्धि आदि का समावेश किया जा सकता है। यहाँ मन–बुद्धि की शुद्धि का तात्पर्य अन्तःकरण शुद्धि, स्नान से शरीर शुद्धि का तात्पर्य वस्त्र शुद्धि तथा गृह शुद्धि का तात्पर्य झाड़–बुहार कर, लीप–पोतकर–जीर्णोद्धार–रंगरोगन आदि करके वास्तु पूजा करने से गृह शुद्धि होती है। यज्ञ से पंचभूत शुद्धि तथा वस्त्र से छानने पर जलशुद्धि– कुआँ–बावड़ी आदि में निर्मली आदि ओषधि ड़ालने से जल शुद्धि होती है। सत्य का सेवन करने से मानसिक मल नष्ट होकर मनःशुद्धि तथा विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि होती है। शुद्ध सात्विक आहार से अन्तःकरण निर्मल हो जाता है, अन्तःकरण की शुद्धि से अटल स्मृति प्राप्त होती है। अटल स्मृति से सर्व अज्ञान ग्रन्थियों का भेदन होता है, उनसे जीवन्मुक्तावस्था या निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है उससे अखण्ड आनन्दानुभूति होती है अतः मनुष्य को बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार की शुद्धि प्राप्त करनी चाहिये। शुद्धि से जीवन स्वस्थ, यशस्वी, दीर्घजीवी और बलवान् बनाकर सुख–सम्पत्ति प्राप्त करके तत्त्वज्ञान सम्पादन कर अविनाशी परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करना चाहिये।

आनन्दस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति ही शौच का मुख्य फल है। ''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**'' विशुद्ध अन्तःकरण वाला ब्रह्मवेता पर–ब्रह्म को प्राप्त होता है।

प्रश्न– बाह्य शौच का फल क्या है?

उत्तर– **'शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः'** (यो. द. 2/40)

बाह्य शुद्धि के पालन से साधक की अपने शरीर में अपवित्र बुद्धि पवित्र होकर उसमें वैराग्य हो जाता है अर्थात् उसमें आसक्ति नहीं रहती, अभिमान नही होता और दूसरे सांसारिक मनुष्यों के साथ संसर्ग करने की इच्छा नहीं रहती अर्थात् उनके संग में भी प्रवृति या आसक्ति नहीं रहती।

प्रश्न– आन्तर शुद्धि का फल क्या है?

उत्तर– **सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।**

(यो. द. 2/41)

भीतर की शुद्धि का फल अन्तःकरण की शुद्धि, मन में प्रसन्नता– चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना, और आत्मसाक्षात्कार की योग्यता ये पाँच लाभ होते हैं।

किसी साधन द्वारा आन्तरिक शौच का अभ्यास करने से राग– द्वेष–ईर्ष्या आदि मलों का अभाव होकर मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल एवं स्वच्छ हो जाता है। मन की व्याकुलता का नाश होकर उसमें सदैव प्रसन्नता बनी रहती है। विक्षेप–दोष का नाश होकर एकाग्रता आ जाती है। तथा सब इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। अतः साधक में आत्मदर्शन की योग्यता आ जाती है।

इन्द्रिय–निग्रह

प्रश्न– इन्द्रियों का निग्रह करना भी धर्म है?

उत्तर– हाँ, वेद, उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थ एवं गीता आदि मोक्ष शास्त्रों में सर्वत्र इन्द्रिय निग्रह करने को कहा है तथा मनु ने इन्द्रियनिग्रह को धर्म का छठा अंग माना है। अतः इन्द्रियों को वश में करना धर्म है, इन्द्रियों के वश में हो जाना अधर्म है। धर्म का फल उत्कर्ष और मोक्ष है तथा

अधर्म का फल पतन और दुर्गति है। अथर्ववेद में कहा है– **''उद्यानं ते पुरुष नावयानम्''** हे पुरुष! तुझे यह मानव जीवन आत्मविनिग्रह करके उत्कर्ष के लिये मिला है अतः तू ऊर्ध्वगमन कर यानी आत्मोद्धार कर। तू अपना पतन मत कर। गीता में भी यही बात कही है–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। (गीता 6/5)

अर्थात् अपना उद्धार अपने आप करें। अपने आत्मा की अधोगति न करें। अतः इन्द्रिय–निग्रह करना यह धर्म है।

प्रश्न– इन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर– पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलकर दश इन्द्रियाँ है।

प्रश्न– पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कौन सी हैं?

उत्तर– श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है।

प्रश्न– कर्मेन्द्रियाँ कौन सी हैं?

उत्तर– वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पैर), उपस्थ (जननेन्द्रिय) और गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

प्रश्न– ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का किस कारण से भेद है?

उत्तर– श्रोत्र आदि इन्द्रियों से शब्दादि विषयों का ज्ञान होता है इसलिये इन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वागादि से बोलने आदि की क्रिया होती है इसलिये इन्हें कर्मेन्द्रियाँ कहा जाता है।

प्रश्न– क्या मन को इन्द्रिय कहा जा सकता है?

उत्तर– मन दश इन्द्रियों का अध्यक्ष है। कुछ लोग मन को अन्तर्बहिरिन्द्रिय कहते हैं। मन की वृत्तियाँ बाह्य एवं आभ्यन्तर पदार्थों का मनन करती हैं इससे उसे भी इन्द्रिय ही कहा है। अन्य इन्द्रियाँ केवल अपने विषयों को ही ग्रहण करती हैं, परन्तु मन गुण–दोष का भी विचार करता है तथापि मन इन्द्रियों के बिना विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ है।

प्रश्न– कुछ लोग मन को इन्द्रिय मानते हैं ऐसा कहने से तो शंका होती है कि क्या मन सर्वमान्य इन्द्रिय नहीं है?

उत्तर– हाँ, यह ठीक है। सब लोग मन को इन्द्रिय नही मानते। कुछ दार्शनिक तथा वेदान्ती मन को इन्द्रिय नहीं मानते। नैयायिक मन को रूप रहित, निरवयव तथा अणु–परिमाण है– ऐसा मानते है। सुख–दु:ख आदि की उपलब्धि की साधनभूत इन्द्रिय मन है– वह नित्य है– ऐसा अनुमान प्रमाण से मानते हैं, परन्तु यह अयोग्य है। रूप–रसादि सब विषयों का सम्बन्ध अपनी इन्द्रियों के साथ हो रहा है तो उनका ज्ञान भी एक साथ होना चाहिये, परन्तु ऐसा नही होता, जिस इन्द्रिय के साथ जब मन का सम्बन्ध होता है तभी उस विषय का ज्ञान होता है अन्य का नहीं। इसीलिये मन भी इन्द्रिय है और वह निरवयव है– ऐसी नैयायिकों की मान्यता का वेदान्ती खण्डन करते हैं और कहते हैं कि यह वेद विरुद्ध कल्पना है, जो मान्य नही हो सकती। मन निरवयव नहीं है वह सादि द्रव्य से बना हुआ है मन का कारण अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं, जो सादि द्रव्य है, इनसे उत्पन्न हुआ मन भी सादि होने से सावयव है। जैसे घड़ा सादि द्रव्य मिट्टी से बना है वह सावयव है वैसे मन भी सादि द्रव्य अंपचीकृत पंचमहाभूत से बना है वह भी सावयव है इसके सादित्व में ''**तन्मनोऽसृजत्**'' यह श्रुति प्रमाण है। वृत्तिरूप ज्ञान मन का धर्म है, इसमें ''**काम; संकल्पो.**'' यह श्रुति प्रमाण है।

प्रश्न– काम संकल्प आदि जो अन्त:करण के धर्म हों तो ''अहं इच्छामि'' अहं जानामि'' मै इच्छा करता हूँ मै जानता हूँ'' इत्यादि व्यवहार कैसे होगा? क्योंकि ''अहं'' शब्द का अर्थ आत्मा है तथा धर्म–ज्ञान–इच्छा आदि आत्मा के धर्म हैं– ऐसी प्रतीति होती है, काम संकल्प आदि को अन्त:करण के धर्म मानने से ''अहमिच्छामि'' आदि अनुभव की सिद्धि नहीं होगी, इसका क्या?

उत्तर– सुख–दुःख आदि आकार अन्तःकरण का परिणाम है वह सुख–दुःखाद्याकार परिणामी अन्तःकरण के साथ जब आत्मा की एकता का भ्रम हो जाता है तब अन्तःकरण के सुख दुःख आदि धर्म आत्मा में प्रतीत होने लगते हैं जैसे–जलाने की शक्ति का आश्रय अग्नि है, लोहा नही है, अग्नि के साथ लोहे का तादात्म्य अध्यास होने से अविवेकी मनुष्य लोहा जलाता है, ऐसा व्यवहार करने लग जाते है ऐसे ही अविवेकी मानव **''अहं सुखी अहं दुःखी''** इत्यादि व्यवहार के द्वारा सुख–दुःख आदि का आश्रय **''अहं''** पदवाच्य आत्मा को मानने लगते हैं, जो अयोग्य है क्योंकि आत्मा निर्विकार है उसमें सुख–दुःख काम–क्रोध आदि विकार मानना श्रुति तथा विद्धानों के अनुभव के विरुद्ध हैं, अतः सुख–दुःख आदि विकारी अन्तःकरण (मन) के ही धर्म है और वह अन्तःकरण यानी मन इन्द्रिय नहीं है, क्योकि मन इन्द्रिय है– इसमें कोई प्रमाण नही है।

प्रश्न– ''मनः षष्ठानीन्द्रियाणि'' (गीता 15/7) **वह आत्मा मन के सहित छह इन्द्रियों को ग्रहण कर लेता है यह गीता वाक्य मन इन्द्रिय है– इसमें प्रमाण है।**

उत्तर– यह कहना उचित नहीं है, क्योंकि इस वाक्य से इन्द्रियगत छः संख्या की पूर्ति मन से की गयी है, यह तो मन इन्द्रिय न होने पर भी हो सकती है। जैसे **''यजमानपंचमा इडां भक्षयन्ति''** इस वैदिक वाक्य में ऋत्विजों की पाँच की संख्या की पूर्ति, जो ऋत्विज नहीं हैं ऐसे यजमान से की गई है। यह कोई नियम नहीं है कि इन्द्रियगत संख्या की पूर्ति इन्द्रिय से ही हो, इन्द्रिय भिन्न से भी हो सकती है–देखिये–

''वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान्।।''

''महाभारत जिनमें पाँचवाँ है ऐसे वेदों को पढ़ाया'' इस स्मृति वाक्य में वेदगत पंचत्व संख्या की पूर्ति वेद भिन्न महाभारत से की गई है। इसी प्रकार इन्द्रियगत ''षट्त्व'' संख्या की पूर्ति इन्द्रिय– भिन्न

मन से की गयी है देखिये– ''**इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः**'' (क. उ. 1/3/10) इन्द्रियों से उनके विषय श्रेष्ठ हैं और विषयों से मन उत्कृष्ट है, इस श्रुति से मन इन्द्रिय नहीं है यह सिद्ध होता है।

प्रश्न– **''इन्द्रियाणां मनश्चास्मि''** (गीता 10/22) **'इन्द्रियों में मन मै हूँ' इस वचन में भगवान् श्री कृष्ण ने मन को अपना स्वरूप बता कर इन्द्रिय कहा है, अतः मन इन्द्रिय नहीं है यह सिद्ध नहीं होता।**

उत्तर– ऐसा कहना उचित नहीं है, कारण है कि उसी प्रसंग में ''**नक्षत्राणामहं शशी**'' नक्षत्रों में चन्द्रमा को अपना स्वरूप बताया है, जो वस्तुतः चन्द्रमा नक्षत्र नहीं है, यदि इन्द्रियों में प्रधान मन को इन्द्रिय मानोगें तो चन्द्रमा को भी नक्षत्र मानना पड़ेगा, जो नक्षत्र नहीं है।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। (मुण्डको. 2/1/3)

उस परमेश्वर से प्राण–मन और सब इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। इस श्रुति में इन्द्रियों से भिन्न मन की उत्पत्ति परमात्मा से हुई ऐसा निरूपण है अतः मन इन्द्रिय नहीं है।

मन को इन्द्रिय मानने वाले नैयायिकों के मत में अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति दोष आता है। वेदान्त में मन को इन्द्रिय न मानने से यह दोष नहीं आता, इसलिये मन को इन्द्रिय मानने में प्रमाण नहीं है, दोष भी आता है। अतः मन को इन्द्रिय न मानने में दोष भी नहीं है, प्रमाण भी है। अतः मन में इन्द्रियत्व की सिद्धि नहीं होती।

प्रश्न– **इन्द्रियाँ उनके विषय और देवताओं की त्रिपुटी क्या है, यह समझाने की कृपा करें।**

उत्तर– इन्द्रियाँ अध्यात्म हैं। विषय अधिभूत तथा दिशा आदि अधिदैव हैं।

प्रश्न– **इन्हें स्पष्ट समझाएँ।**

उत्तर–

ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटी

अध्यात्म	अधिभूत	अधिदैव
श्रोत्र	शब्द	दिशा
त्वक्	स्पर्श	वायु
नेत्र	रूप	सूर्य
रसना	रस	वरुण
घ्राण	गन्ध	अश्विनी कुमार

कर्मेन्द्रियों की त्रिपुटी

अध्यात्म	अधिभूत	अधिदैव
वाक्	वक्तव्य	अग्नि
हस्त	पदार्थ का ग्रहण त्याग	इन्द्र
पाद	गमन	विष्णु
उपस्थ	मैथुन	प्रजापति
गुदा	मलत्याग	यम

अन्त:करण चार की त्रिपुटी

अध्यात्म	अधिभूत	अधिदैव
मन	मनन	चन्द्रमा
बुद्धि	निश्चय	बृहस्पति
अंहकार	अहंभाव	रुद्र
चित्त	चिन्तन	क्षेत्रज्ञ

सब इन्द्रियों के देवता और विषय भिन्न हैं। इन्द्रियाँ अध्यात्म कहलाती हैं उनके विषय अधिभूत तथा देवता अधिदैव कहलाते हैं।

श्रोत्र–श्रोत्र अध्यात्म है विषय शब्द श्रवण है और देवता दिशा है अधिदैव के अनुग्रह से सब इन्द्रियाँ अपने–अपने विषय को ग्रहण करती हैं। सभी प्राणी कान से सुन्दर सुखदायी शब्द सुनना चाहते हैं

अतः कानों से गुरुजनों से तत्त्वज्ञान का श्रवण, ईश्वर की महिमा एवं सृष्टि विज्ञान का श्रवण करके आत्मज्ञानी बनना चाहिये। कुत्सित गायन सुनना अधर्म है, उससे जन्म मरण के चक्र में पड़ना पड़ता है दुःख का पार नहीं रहता। अतः 'अभद्र' शब्द श्रवण का त्याग करें, शब्द श्रवण में आसक्ति न करें, नहीं तो हिरण और सर्प के समान बन्धन की प्राप्ति हो जायगी।

वेद में लिखा है कि–''**मद्रं कर्णेभिः शृणुयाम**'' कानों से हम कल्याणकारी शब्द सुनें, जिसके श्रवण से सुख हो तथा परिणाम में मोक्ष की प्राप्ति हो।

त्वक्– त्वचा का देवता वायु है तथा विषय स्पर्श करना है। सभी लोग सुखदायी शान्तिप्रद स्पर्श की इच्छा करते है। शीतल मन्द सुगन्ध पवन का स्पर्श–आनन्दप्रद–स्त्री पुत्र आदि के स्पर्श की इच्छा होती है। परन्तु स्पर्श में आसक्ति नहीं होनी चाहिये, नहीं तो हाथी जैसा बन्धन हो जायेगा। स्पर्शेन्द्रिय को वश में करके भगवान् के कोमल चरणों का स्पर्श करना चाहिये– यही धर्म है।

चक्षु– चक्षुरिन्द्रिय का देवता सूर्य है विषय रुप को देखना है। सुन्दर और असुन्दर ऐसे दो प्रकार का रूप होता है। असुन्दर को छोडकर सुन्दर रूप का ही दर्शन करना धर्म है। वेदादि धर्मशास्त्रों का अवलोकन करो। सन्त महात्मा–सज्जन–गुरुजन तथा देवताओं का दर्शन शुभदर्शन है। दृष्टि को ज्ञानमयी बनाकर समस्त विश्व को आत्मभाव से देखिये। भगवद्भक्ति तथा आत्मज्ञान के द्वारा जगत् पिता परमेश्वर के स्वरूप का दर्शन करें। यही दर्शनीय सुन्दर रूप है, कल्याण कारक है।

दुर्जन–दुराचारी–दुर्व्यसनी–पापी–पाखण्डी और धूर्तों का संग, अन्याय–अत्याचारियों के दर्शन का त्याग करना चाहिये। सिनेमा–नाटक नहीं देखना चाहिये, नावल–कथा पढ़नी आदि सब असुन्दर दृश्य हैं, अकल्याणकारी हैं, जो त्याज्य हैं। इस प्रकार चक्षुरिन्द्रिय को स्ववश

में करके सन्मार्ग में मोड़नी चाहिये। न देखने योग्य वस्तु को देखना अधर्म है। रूप दर्शन की आसक्ति से पतंग का नाश होता है। अतः आसक्ति का त्याग करना चाहिये। किसी सुन्दर रूप को देखकर मनुष्य आसक्त हो जाता है। विल्वमंगल ने सुन्दर रूप देखा और मोहित हो गया आखिर वह आँखे फोड़कर सूरदास हो गये।

प्रश्न– तो क्या हम भी आँखे फोड़कर सूरदास बन जाँय?

उत्तर– न, आँखे फोड़ने की जरूरत नहीं है। आँखे तो परमात्मा ने रूप देखने के लिये ही दी हैं, परन्तु अच्छे बुरे दृश्य का विचार करके खराब दृश्य न देखकर सुन्दर रूप देखना चाहिये। लौकिक किसी रूप को देखकर मोहित नहीं होना चाहिये। अलौकिक स्वरूप भगवान् का है। भगवान् की रची हुई सृष्टि का सोन्दर्य भी दर्शनीय है। उसे देखें आनन्दित हों। प्रभु से अपने दर्शन की प्रार्थना करें और कहें– हे सर्वज्ञ! सर्वशक्ति समन्वित पूर्ण चेतन ब्रह्म! आपकी कृपा दृष्टि से हम सौ वर्ष तक आपके स्वरूप का दर्शन करते रहें।'' **''शरदः शतं पश्येम''** तथा **''दृंतेदृ॑ंहमा। ज्योक्ते सन्दृशिजीव्यासज्ज्योक्ते सन्दृशिजीव्यासम्''**

(यजुः. 36/24)

हे अनन्तबल विपुल सामर्थ्यसम्पन्न प्रभो! मैं आपके मंगलमय स्वरूप का अच्छी प्रकार दर्शन करता–करता चिर काल तक जीवित रहूँ, यानी मैं आपके कल्याणकारी स्वरूप का सदा दर्शन करता रहूँ। **''भद्रं पश्येमाक्षभिः''** (यजुः. 25/21)

जिह्वा– जिह्वा इन्द्रिय का देव वरुण तथा विषय रसास्वाद है। मनुष्यों को मधुरादि रसास्वाद में प्रीति रहती है। रस–लोलुपता भी हो जाती है, अमुक रस के बिना चलता नहीं है। यद्यपि आयुर्वेद में मधुर–अम्ल–लवण–कटु–कषाय तथा तिक्त इन छः रसों के सेवन का विधान है। इस पांचभौतिक शरीर के स्वास्थ्य के लिये छहों रसों का मर्यादित मात्रा में सेवन करना योग्य है। किसी भी रस का अधिक

मात्रा में सेवन करना हानिकारक है। जिह्वा की रस लोलुपता का त्याग करके रसना निरोध करना धर्म है। किसी भी रस का सेवन स्वाद की दृष्टि से नहीं, गुण की दृष्टि से करना उचित है। उपनिषदों में ''**रसो वै सः**'' कहकर भगवान् को रसरूप यानी आनन्दरूप बताया है। उस परमपवित्र भगवान् के मंगलमय नाम का जप करके अपनी जिह्वा की सृष्टि सफल कर लेनी चाहिये।

''**सा जिह्वा या शिवं स्तौति**'' अतः अनन्तकोटिब्रह्माण्डा–धिनायक परमेश्वर के पावन नाम का जप करके जिह्वावृत्ति को स्थिर करना परमधर्म है। सादा और सात्विक भोजन लेकर रोगादि से बचकर सुख सौन्दर्य पूर्ण जीवन बनाकर सौ वर्ष की दीर्घायु पाकर प्रभु के पावन परमपद के अधिकारी बनें। रसना को वश में करें। जीवन सफल बनायें।

घ्राण– घ्राणेन्द्रिय के देवता अश्विनीकुमार तथा विषय गंध सूँघना है। मनुष्य को नाना प्रकार की सुगन्ध सूँघने की आसक्ति रहती है इसका संयम करना आवश्यक है। अपनी भँवरे के जैसी दशा न हो जाय, इसका ध्यान रखें। प्रभु के चरण कमल की सुगन्ध का आनन्द लें। घ्राणेन्द्रिय को स्वाधीन करके परमात्मा की कीर्तिरूप अमृतमय सुगन्ध ग्रहण करना धर्म है।

वाक्– वागिन्द्रिय का देव अग्नि है तथा विषय बोलना है। अतः वाणी से मधुर बोलो '' **वाचं वदत भद्रया**'' सुखदायी वाणी बोलो '' **सा वाग् यया तस्य गुणान्गृणीते**'' वही वाणी है जो सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा शिव के गुण गाती है, गुणानुवाद करती है। यथार्थ भाषण करना वाणी का धर्म है। असत्य वचन–कठोर भाषण–निन्दा–चुगली–अप्रिय–अहितकर वचन बोलना वाणी का अधर्म है इसका त्याग करें।

प्रियवाक्यप्रदानेन तुष्यन्ति सर्वजन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

गीता में भी कहा है– **''सत्यं प्रियं हितं च यत्''**

प्रिय और हितकारक वाणी बोलने की बात भगवान् मनु ने भी कही है। यथा–

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न बोले, प्रिय बोले परन्तु असत्य नहीं बोले, यह सनातन–धर्म है।

''सत्यं वद'' (तैः उ. 1) सत्य बोलो, अस्तु–मीठा वचन बोलकर कोयल जगत् को वश में कर लेती है। कठोरवचनी कौआ तिरस्कार पाता है।

कागा किसका धन हरे कोयल किसको देय।
मीठा वचन सुनाय के जग अपनो कर लेय ।।

नीति में भी कहा है–

लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्रबान्धवाः।

जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम् ।।

वाणी से ही मनुष्य जगत् में प्रिय या अप्रिय हो जाता है। अतः जिह्वा के अग्र भाग में लक्ष्मी बसती है जिह्वा में ही मित्र–बन्धु–बान्धव बसते हैं जिह्वाग्र में ही बन्धन प्राप्ति और जिह्वाग्र में निश्चित मृत्यु का निवास है। अतः कल्याणमयी प्रिय एवं हित–मित–मिष्ठवाणी बोले।

हस्त– हाथ का देवता इन्द्र तथा विषय आदान–प्रदान (देना–लेना) है। **''हस्तस्य भूषणं दानम्''** हाथ का भूषन दान है अतः सदा दान करते रहो।

स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना।
अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं हि तत्स्मृतम्।।

अल्प में से भी अल्प धन, अन्न, वस्त्र औषध आदि अदीनभाव

से प्रतिदिन दान देतें रहना ही अकार्पण्य–कंजूस न होना है। ''**श्रद्धया देयम्**'' श्रद्धा पूर्वक दान देना चहिये। ''**श्रद्धया सत्यमाप्यते**'' श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

'श्रत् सत्यं धीयते यस्यां सा श्रद्धा' आस्तिक्य बुद्धिः पुण्यवतां मनोविशेषः'' श्रद्धया 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्माप्यते प्राप्यते। श्रद्धां बिना ज्ञानाभावात्। (यजुः. 19/30 महीधर भाष्य)

श्रत् नाम सत्य का है। सत्य को जिसमें धारण किया जाय वह श्रद्धा है, वह आस्तिक बुद्धि है, जो पुण्यवानों का मन–विशेष है। श्रद्धा से सत्य–ज्ञान–अनन्त–आनन्दस्वरूप ब्रह्म प्राप्त होता है। श्रद्धा के बिना ज्ञान नहीं होता अतः ''**श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्**'' श्रद्धावान् ज्ञान को प्राप्त करता हैं वेद में कहा है कि ''**श्रद्धा च मे**'' इस यज्ञ से मुझे श्रद्धा प्राप्त हो। श्रद्धासम्पन्न होकर मानव अपने हाथ से देश–काल और पात्र का विचार करके सुपात्र को दान दे, यह हाथ का धर्म है। हाथ से ईश्वर का पूजन करे। माता–पिता–अतिथि आचार्य–गुरुदेव–क्रान्तदर्शी–आप्तवक्ता–ज्ञानी महात्माओं का पूजन–सेवा– आज्ञा पालन करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करके उनको आवश्यक वस्तु देकर, अपना लोक परलोक सुधार लेना चाहिये। ''**दाता धर्मेण युज्यते**'' सुपात्र की सेवा एवं दान से दाता धर्म यानी ईश्वर से जुड़ जाता है। प्रेय तथा श्रेय दोनों ही प्राप्त कर लेता है।

पाद– पैर का देवता वामन है। गमन– आगमन विषय है। पैरों से पवित्र देश में भ्रमण करना चाहिये तथा देश विदेश में जाकर वैदिक धर्म का और सर्वाधार जगदीश्वर की भक्ति का प्रचार करना चाहिये।

''**तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रे भक्त्या पर्यरतः सदा।**'' (स्कान्दे)

उपस्थ– लिंग का – देव प्रजापति तथा विषय मूत्र–वीर्य विसर्जन है। मूत्र का वेग नहीं रोकना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना धर्म है। विवाहित पुरुष को पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से मैथुन करना विहित है। एक

पत्नी–व्रत धारण करना, पत्नी को पातिव्रत धारण करना धर्म है।

गुदा– गुदा का देव यम और विषय मलत्याग करना है। मलवेग कभी रोकना नहीं चाहिये क्योंकि मलमूत्र के वेग को रोकने से अनेक रोगों के होने की सम्भावना रहती है। **''सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मलाः।''**

इस प्रकार दशों इन्द्रियों के देवता–विषयों का संक्षेप में वर्णन किया गया। तदनुसार इन्द्रिय–निग्रह करके मनुष्य अलौकिक दिव्यशक्ति प्राप्त कर लेता है तथा अपने मानव जीवन को सफल बना लेता है। ओजस्–तेज–बल– वीर्य–सौन्दर्य–गांभीर्य आदि असंख्य सद्गुणों को प्राप्त करके परम सुख प्राप्त करता है।

प्रश्न– इन्द्रियों का निरोध कब होता है?

उत्तर– मन को वश में करने से इन्द्रियाँ अपने वश में हो जाती हैं।

प्रश्न– मन का देवता कौन है? विषय क्या है और मन के वश में होने से सब इन्द्रियाँ वश में कैसे हो जाती हैं?

उत्तर– मन का देव चन्द्रमा तथा विषय–मनन यानी संकल्प–विकल्प है। मन अन्तःकरण की एक वृत्ति है। मन–बुद्धि चित्त और अहंकार यह अन्तःकरण–चतुष्टय कहलाता है। बुद्धि का देव बृहस्पति तथा विषय निश्चय करना है। चित्त का देवता वासुदेव है विषय चिन्तन करना है। अहंकार का देवता रुद्र है तथा विषय 'अहं–अहं' ऐसा अभिमान करना है।

मन की सम्पूर्ण वृत्तियों को रोकने से योग सिद्ध होता है सब इन्द्रियाँ मन के आधीन हैं। मन राजा है, इन्द्रियाँ प्रजा हैं। प्रजा हमेशा राजा के आधीन होती है। वेद में लिखा है–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदुसुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमज्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मे मंनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(शु. यजुर्वेद 38/1)

अर्थ– जागते पुरुष का, जो मन चक्षुरादि की अपेक्षा से दूर जाता है तथा जो दिव्य–मन विज्ञानात्मा का ग्राहक है, जो सुषुप्ति में से पुनः जाग्रत में आता है, जो विषय प्रकाशक सब इन्द्रियों की एक ज्योति है यानी जो सब इन्द्रियों का प्रकाशक है। वह मेरा मन शुभ–पवित्र–शिव–कल्याणकारी–संकल्प यानी विचार वाला होवे। अर्थात् मन में धर्म विषयक विचार उत्पन्न हों।

यह निश्चय हुआ कि 'मन के बिना इन्द्रियाँ अपने विषय का ज्ञान नहीं करती,' जिस इन्द्रिय के साथ मन होता है वही इन्द्रिय अपने विषय को ग्रहण करती है। अतः मन की वृत्ति शान्त होने पर इन्द्रियों की वृत्ति भी अपने आप शान्त हो जाती है। मन स्वभाव से चंचल है इसको सांसारिक–प्राणी–पदार्थों में से हटाकर अपना लक्ष्य, जो परमात्मा है उसके स्वरूप में लगाने का प्रयत्न करना चाहिये।

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।। (गीता 6/26)

यह अस्थिर और चंचल मन जिन–जिन सांसारिक पदार्थों में विचरता है उन–उन पदार्थों से उसका नियंत्रण करके बारम्बार परमात्मा में ही लगाना चाहिये। संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं को निःशेषता से यानी वासना और आसक्ति सहित त्याग करके मन के द्वारा इन्द्रियों को सब ओर से सम्यक्तया रोककर वश में करके धीरे–धीरे उपराम हो जाय। धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके परमात्मा के सिवाय अन्य कोई चिन्तन न करे। ऐसा अभ्यास निरन्तर करते रहने से तथा संसारिक विषय– पदार्थों की नश्वरता–क्षणिकता आदि दोष देख कर उनमें वैराग्य होने से मन वश में हो जाता है। कहा भी है–

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः।।

(यो. द. 1/14)

यह अभ्यास दीर्घकाल तक निरन्तर और आदरपूर्वक श्रद्धा–विश्वासयुक्त होकर सतत करता रहे। ऐसा हो, तभी अभ्यास परिपक्व होकर मन को स्थिर करता है।

प्रश्न– दीर्घकाल तक अभ्यास करने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर– परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति के लिये आजीवन मन की वृत्तियाँ यत्नपूर्वक विषयों में से हटाकर लक्ष्य में स्थिर करते रहना, इसका नाम दीर्घकाल अभ्यास है। **'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्'** (गीता 6/46) जन्म जन्मान्तरों से ईश्वर की प्राप्ति के लिये यत्न करने पर पाप कर्मों का नाश होने पर अन्तःकरण निर्मल होता है, निर्मल अन्तःकरण में ज्ञान उत्पन्न होता है और उससे परम–गति प्राप्त होती है। ''**ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।**'' जन्मान्तरों तक ईश्वर प्राप्ति के लिये अभ्यास करते रहने को दीर्घकाल अभ्यास कहते हैं या वर्तमान जीवन में अहर्निश भगवत् चिन्तन–ध्यान में तत्पर रहने को दीर्घकाल अभ्यास कहते हैं। प्रातः तीन घण्टे और सायंकाल में तीन घण्टे नित्य–पूजा–पाठ–जप–ध्यान–योगाभ्यास आदि में तत्पर रहने को दीर्घकाल अभ्यास करना कहा जा सकता है।

प्रश्न– नैरन्तर्य अभ्यास का क्या मतलब है?

उत्तर– नैरन्तर्य– यानी निरन्तर–लगातार अभ्यास प्रतिदिन नियम पूर्वक निर्धारित समय पर आत्मप्राप्ति रूप प्रयत्नों यानी ईश्वर के भजन–ध्यान में लगे रहने को निरन्तर अभ्यास कहा है। इससे यह सूचित होता है कि यह अभ्यास हर स्थिति में हर रोज करना चाहिये। बीच में एक दिन या दो दिन आदि का व्यवधान सिद्धि साधक नहीं होता, लगे ही रहना चाहिये।

प्रश्न– अभ्यास में एकाध दिन छूट जाये तो क्या हानि है?

उत्तर– पहले तो नियम भंग होता है तथा अनभ्यास से साधना की उन्नति में अन्तराय (विघ्न) रूप है। जैसे एक दिन अन्न–जल आदि का त्याग

करने से अशक्ति आती है ऐसे एक दिन अभ्यास न करने से साधना में मन्दता आ जाती है।

प्रश्न– सत्कारपूर्वक अभ्यास करने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर– पूज्यभाव से– आस्तिक्य बुद्धि से अभ्यास करना मन में पूर्ण श्रद्धा तथा अखण्ड विश्वास रखकर **कंटाले** बिना प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिये। **''स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा''** अर्थात् उस योग का अभ्यास न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साह युक्त चित्त से करना कर्तव्य है। तभी साधक का मन साधना में परिपक्व अवस्था को प्राप्त होकर परवैराग्य से युक्त बन सकेगा।

प्रश्न– वैराग्य किसे कहना, वैराग्य का लक्षण क्या है?

उत्तर–
ब्रह्मलोक लौं भोग जो चहे सबन को त्याग।
वेद अर्थज्ञाता मुनी कहत ताहि वैराग।।

वेदवेत्ता मुनि कहते हैं कि इस लोक से लेकर ब्रह्मलोक तक के जो भोग हैं उन सब के त्याग का नाम वैराग्य है। तात्पर्य यह है कि सांसारिक विषय पदार्थ एवं प्राणियों की आसक्ति मिटकर मन विशेष रूप से श्रद्धा–भक्तिपूर्वक ईश्वर में लग जाये यह वैराग्य है।

प्रश्न– वैराग्य कितने प्रकार का है?

उत्तर– वैराग्य दो प्रकार का है **''वैराग्यं द्विविधं। परमपरं चेति''** पर और अपर। इनमें अपर वैराग्य के चार भेद हैं– यतमान–व्यतिरेक–एकेन्द्रिय और वशीकार।

प्रश्न– यतमान वैराग्य का तात्पर्य क्या है?

उत्तर– ''अस्मिन्संसारे इदं सारमिदमसारमिति सारासारविवेको यतमान वैराग्यम्'' इस संसार में यह (आत्म–ब्रह्म) सार (सत्य) है, यह (संसार–अनात्म) असार–मिथ्या है। इस प्रकार का ज्ञान ही यतमान वैराग्य है।

प्रश्न– व्यतिरेक वैराग्य किसको कहते है?

उत्तर– ''**चित्तगतदोषाणां मध्ये एतावन्तः पक्वाः एतावन्तोऽपक्वा इति विविच्याऽपक्व दोष निरोधयत्नो व्यतिरेक वैराग्यम्।**'' चित्त में रहते हुए दोषों में से इतने दोष तो निकल गये हैं और अब इतने दोष निकलने शेष हैं। बाकी रहे हुए राग–द्वेषादि दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना– व्यतिरेक वैराग्य है।

प्रश्न– एकेन्द्रिय वैराग्य का स्वरूप क्या है?

उत्तर– पूर्व संस्कारानुसार मन में विषयों की इच्छा होती हो, तो भी इन्द्रियों को एक मन में रोकने का प्रयत्न करना एकेन्द्रिय वैराग्य है। ''**विषयाऽ–ध्यास सत्त्वेऽपि मनसीन्द्रियनिरोधावस्थानमेकेन्द्रिय वैराग्यम्**''

प्रश्न– वशीकार वैराग्य का क्या लक्षण है?

उत्तर– ''**वशीकारवैराग्यमैहिकामुष्मिकविषयजिहासा।**'' इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण विषयों के त्याग की इच्छा ही वशीकार वैराग्य है। योग दर्शन में कहा है– ''**दृष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।**'' दृष्ट और आनुश्रविक अर्थात् देखे हुए और सुने हुए यानी लौकिक और पारलौकिक विषयों में चित्त की, जो सर्वथा तृष्णा रहित स्थिति है, वह वशीकार नामक वैराग्य है। इसके भी तीन भेद हैं। 'मन्दं तीव्रं तीव्रतरं चेति' मंद, तीव्र और तीव्रतर ये तीन भेद हैं।

प्रश्न– मंद वैराग्य का क्या लक्षण है?

उत्तर– ''**पुत्रदारादिविषयवियोगे धिक् संसारमिति बुद्ध्या विषयजिहासा मन्दवैराग्यम्।**'' स्त्री–पुत्र–धनादि प्राणी–पदार्थ रूप विषयों का वियोग होने पर धिक्कार है इस दुःखमय संसार को। ऐसी बुद्धि से जो विषयों के त्याग की इच्छा है, वह मन्द वैराग्य है।

प्रश्न– तीव्र वैराग्य किसे कहना?

उत्तर– ''**पुनरावृत्तिसहितब्रह्मलोकादिपर्यन्तं मास्त्विति स्थिरबुद्ध्या विषय–जिहासा तीव्रतरम्।**'' इस लोक से लेकर पुनरावृत्ति वाले ब्रह्मलोकादि

पर्यन्त के सम्पूर्ण प्राणी–पदार्थादि विषयों के स्थिर बुद्धि से, जो त्याग की इच्छा है, वह तीव्रतर वैराग्य है।

प्रश्न– **वशीकार वैराग्य में लौकिक और पारलौकिक भोगों की इच्छा का सर्वथा त्याग हो जाता है तो फिर इसमें मंद आदि भेद होने का कारण क्या?**

उत्तर– यद्यपि वशीकार में सम्पूर्ण विषयतृष्णा का अभाव हो जाता है, परन्तु मन में जन्म–जन्मान्तरों की सुप्त वासना रहती है किसी कारण से वह वासना जाग्रत हो जाती हैं। परिणामतः मन्दादि वैराग्य में भेद हो जाते हैं। बालब्रह्मचारी सौभरी ऋषि को जल में मत्स्य–विहार देखने से विषय वासना जाग्रत हुई, इससे उन्होंने मान्धाता की पचास कन्याओं के साथ विवाह किया, यह वशीकार में मन्द वैराग्य का दृष्टान्त है।

राजा भरत राज्य वैभव का त्याग करके वन में तपस्या के लिये गये, वहाँ एक मृग शावक में मोह होने से उनको तीन जन्म लेने पड़े। यह तीव्र वैराग्य का उदाहरण है तथा तीव्रतर वैराग्य का उदाहरण शुकदेव जी का है।

प्रश्न– **पर वैराग्य का क्या लक्षण है?**

उत्तर– **''तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।''** (यो. द. 1/16) परब्रह्म परमेश्वर सच्चिदानन्द चैतन्य पुरुष के ज्ञान से जड़ प्रकृति के तीनों गुणों में और उनके कार्यों में तृष्णा का जब सर्वथा अभाव हो जाये तब वह रागरहित अवस्था पर–वैराग्य कही गई है। नचिकेता और मैत्रेयी जैसा वैराग्य हो तब मन परा निवृत्ति को प्राप्त होकर ब्रह्मस्वरूप में स्थित हो जाता है। **''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।''** (यो. द. 1/3) उस समय द्रष्टा आत्मा की अपने ब्रह्मस्वरूप में स्थिति हो जाती है।

यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः।
अनिङ्गनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्मतत्तदा।। (गौ. का. 3/40)

योगाभ्यास के द्वारा निरुद्ध किया हुआ चित्त जब सुषुप्ति में लीन

न हो तथा वायुशून्य स्थान में स्थित दीपक के समान निश्चल और अनाभास रहता है यानी किसी भी कल्पित विषयभाव से प्रकाशित नहीं होता तब वह ब्रह्म ही हो जाता है। अर्थात् उस अवस्था में चित्त ब्रह्मस्वरूप से निष्पन्न हो जाता है। यह शान्त अवस्था जीवन्मुक्ति मानी गई है।

प्रश्न– इन्द्रियों का लय चिन्तन कैसे करना?

उत्तर– **यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।**
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।

(क. उ. 1/3/13)

विवेकी पुरुष वागादि सम्पूर्ण इन्द्रियों का मन में उपसंहार करे, मन का प्रकाशस्वरूप बुद्धि में लय करे। बुद्धि को महत्तत्त्व में लीन करे और महत्तत्त्व को शान्त आत्मा में नियुक्त करें।

वाचं नियच्छादात्मनि तं नियच्छ बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धि साक्षिणि।
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे विलाप्य शान्तिं परमां भजस्व ।।

अर्थात्– वाणी को मन में लीन करो, मन का लय बुद्धि में करो, बुद्धि को बुद्धि के साक्षी चैतन्य में लीन करो तथा उसका निर्विकल्प ब्रह्म में लय करके परम शान्ति प्राप्त करो। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य के द्वारा साधक सब इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को चैतन्य ब्रह्म में लीन करके सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। इस प्रकार यहाँ इन्द्रिय निग्रह तथा मनोनिरोध को धर्म कहा है।

धी–बुद्धि

प्रश्न– बुद्धि का देवता और विषय क्या है?

उत्तर– बुद्धि का देव बृहस्पति तथा विषय निश्चय करना है।

प्रश्न– क्या बुद्धि भी धर्म है? उसका धर्म क्या है?

उत्तर– हाँ–हाँ, बुद्धि धर्म है। संसार में ऐसा कोई पदार्थ–प्राणी अथवा तत्त्व नहीं है कि जिसका कोई धर्म न हो। यथा– पानी का तरलत्व शीतलत्व और मधुरत्व धर्म है। आकाश का अवकाश तथा शब्द धर्म है। अग्नि का उष्णत्व–दाहकत्व धर्म है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ का अपना धर्म है। प्राणियों में भी कर्तृत्व–भोक्तृत्व–ज्ञातृत्व आदि धर्म है। प्राणों का प्राणन क्रिया धर्म है। ऐसे ही बुद्धि का विज्ञानयुक्त निर्धारण यानी निश्चय करना धर्म है। इसलिये मनुष्य को उत्तम बुद्धि प्राप्त करके प्रेय–श्रेय सिद्ध करना चाहिये। लौकिक–सुख–सम्पत्ति और समृद्धि तथा पारलौकिक निःश्रेयस् बुद्धि के द्वारा सम्पादन किया जा सकता है। **''बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्''** बुद्धि ही बल है। बुद्धिहीन मनुष्य शारीरिक बल होते हुए भी बलहीन है। अतः बुद्धिमान् बनना आवश्यक है।

प्रश्न– बुद्धिमान् कैसे बनें?

उत्तर– भजन करने से बुद्धि बढ़ती है। वेदों में बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना की गई है अतः परमात्मा की कृपा से सद्बुद्धि प्राप्त होती है। किसी भी कार्य की सिद्धि के लिये सर्वज्ञ–सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा की भक्ति–उपासना–ध्यान–पूजा–मंत्रजप आदि करना चाहिये, जिससे प्रार्थक के मनोरथ की सिद्धि हो जाये। इस विषय में यह मंत्र पढ़िये–

ओम् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।

(यजुः. 32/10)

हे सर्वज्ञ! सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मन्! देवता अथवा विद्वान् तपस्वी महात्मा–ब्रह्मविद् ज्ञानी तथा वेदविद् ब्राह्मण–वृन्द जिस ज्ञानमयी धारणावती बुद्धि को प्राप्त करते हैं तथा धारण करते हैं तथा यथार्थ पदार्थ विज्ञान वाले पितृगण जिस बुद्धि का सेवन करते हैं, उस

ऋतम्भरा बुद्धि के साथ, हे परमात्मन्! आप अपनी अमृतमयी कृपा दृष्टि से अभी मुझे मेधा नामक बुद्धि से संयुक्त कीजिये। मेरी जड़ता नष्ट करके मुझे बुद्धिमान् बनाइये, जिससे आत्मतत्त्व प्राप्त किया जा सके– ऐसी बुद्धि प्रदान कीजिये।

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा।।

(यजुः. 32/15)

हे आनन्दस्वरूप वरप्रद वरुण! मुझे ज्ञानसम्पन्न बुद्धि दीजिये। हे विज्ञान पूर्ण अग्नि! हे प्रजापालक परमेश्वर! हे सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र! हे बलविज्ञान निधान वायुदेव! हे विश्वविधाता! आप मुझे उत्तम मेधावी बुद्धि प्रदान करें। द्विजांतियो के प्रसिद्ध गुरु मन्त्र गायत्री में भी परमात्मा से बुद्धि प्राप्ति की ही प्रार्थना की गई है। ''**धियो यो नः प्रचोदयात्**'' अतः प्रत्येक व्यक्ति को बुद्धिमान् बनना चाहिये। उत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये ईश्वरोपासना करनी चाहिये।

प्रश्न– बुद्धिमान् क्यों बनना और बुद्धिमान् क्या काम कर सकता है?

उत्तर– बुद्धिमान् पुरुष सब कुछ कर सकता है। बुद्धिमानों की सर्वत्र प्रतिष्ठा और प्रशंसा होती है। बुद्धिमान् स्वयं सुखी होता है और सारे संसार को सुखी बना सकता है। बिगड़े हुये कार्य को बुद्धिमान् ही सुधार सकता है। अन्याय से जाते हुए किसी के प्राण भी बचा सकता है। धर्म की रक्षा भी वह कर सकता है। अतः बुद्धिमान् बनना यह एक महत्त्वपूर्ण धर्म का अंग है। संसार में कोई मूर्ख रहना नहीं चाहता सब बुद्धिमान् बनना चाहते हैं। '**बुद्धिहीना विनश्यन्ति**' '**बुद्धिनाशात् प्रणश्यति**' इत्यादि शास्त्र वचन कितने प्रेरक हैं। अतः बुद्धियोग प्राप्त करके ईश्वर की प्राप्ति के लिये तथा संसार में सुख–शान्ति– समृद्धि की प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये। बुद्धि–ज्ञान आदि दैवी गुण ईश्वर के भजन से प्राप्त होते हैं। कहा भी है–

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।। (गीता 10/10)

श्री भगवान् कहते हैं कि उनके नित्य ध्यानयोग में तत्पर होकर प्रेमपूर्वक भजन करने वाले भक्तों को मैं ज्ञानमयी बुद्धि देता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार बुद्धियोगयुक्त होकर **'यावच्चन्द्रदिवाकरौ'** अपना यश अजर–अमर रखना चाहिये। **''कीतिर्यस्य स जीवति''** प्राचीन ऋषि–मुनि–शंकराचार्य तथा चाणक्य–बीरबल आदि का यश आज भी विद्यमान है। बुद्धि के द्वारा मनुष्य भूत–भविष्य–वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। अतः प्रार्थना है– **''स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु''** (श्वेता. 4/12) वह सर्वज्ञ परमात्मा मुझे शुभ बुद्धि से संयुक्त करे। अतः भगवान् मनु ने बुद्धि को धर्म का सातवाँ अंग मानकर **'धीः'** कहकर उसकी महत्ता बढ़ाई है। गीता में बुद्धि को दैवी सम्पत्ति माना है अतः यह उत्कर्षकारक श्रेयपद धर्म है। इसमें संदेह नहीं है।

प्रश्न– बुद्धि के कितने भेद हैं?

उत्तर– बुद्धि के सात्त्विक–राजस तथा तामस ये तीन भेद भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता अ. 18 श्लोक 30 से 32 में बताये हैं– हे पार्थ! प्रवृत्तिमार्ग तथा निवृत्तिमार्ग को, कर्तव्य–अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बन्ध और मोक्ष को, जो बुद्धि तत्त्व से जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी है। जिस बुद्धि से मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ रूप से नहीं जानता वह बुद्धि राजसी है। तथा तमो गुण से आवृत्त हुई बुद्धि अधर्म को धर्म मानती है तथा अन्य भी सम्पूर्ण अर्थों को विपरीत ही मानती है वह तामसी बुद्धि है। इनमें पूर्वोक्त सात्त्विकी बुद्धि ही उत्तम धर्म–मय है वही लोक परलोक सुधारती है।

और भी बुद्धि के बहुत भेद हैं उनमें–बुद्धि–मति और प्रज्ञा ये तीन महत्त्वपूर्ण अंग हैं। देखिये–

बुद्धिस्तात्कालिका ज्ञेया मतिरागामिगोचरा।
प्रज्ञा नवनवोन्मेषः प्रतिभाशालिनी स्मृता।।

जो प्रश्न उपस्थित होते ही तत्काल उत्तर दे दे वह **बुद्धि** है। इस में कवि कालिदास का उदाहरण है। जो भविष्य की बात को जाने वह **मति** है। जैसे योगीजन या ज्योतिषी जान लेते हैं तथा जो प्रतिक्षण नये नये तत्त्वज्ञान का उन्मेष–उत्कर्ष करावे वह प्रतिभा सम्पन्न **प्रज्ञा** है। इसमें आदि शंकराचार्य का उदाहरण ले सकते हैं।

योग शास्त्र में धारणा–ध्यान और समाधि, इन तीनों के एकत्र होने को संयम कहा है '' **तज्जयात् प्रज्ञालोकः**'' योगी जब संयम सिद्ध कर लेता है, तब योगी को बुद्धि का प्रकाश प्राप्त होता है। उसकी बुद्धि में अलौकिक ज्ञानशक्ति आ जाती है उसे योगदर्शन में ''**अध्यात्मप्रसाद**'' तथा ''**ऋतम्भरा**'' बुद्धि कहा है। निर्विकार समाधि के अभ्यास से योगी की बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल हो जाती है इसे '**अध्यात्म प्रसाद**' कहा है इस अवस्था में योगी की बुद्धि वस्तु के वास्तविक स्वरूप को ग्रहण करने वाली हो जाती है, इसमें संशय या भ्रम का लेश भी नहीं रहता।

वेद, शास्त्र और आप्त पुरुष के वचनों से वस्तु का सामान्य ज्ञान होता है वह **श्रुत बुद्धि** है। तथा अनुमान प्रमाण से वस्तु का जो ज्ञान होता है वह **अनुमान बुद्धि** है इन दोनों प्रकार की बुद्धि से वस्तु का यथार्थ पूर्ण ज्ञान नहीं होता परन्तु **ऋतम्भरा बुद्धि** से वस्तु के अंग–प्रत्यंगों सहित यथार्थ ज्ञान हो जाता है। इसलिये **ऋतम्भरा बुद्धि** सर्वश्रेष्ठ है। इस बुद्धि का प्रादुर्भाव होने पर अन्य बुद्धि जन्य संस्कार क्षीण हो जाते हैं तथा अन्य नवीन संस्कार प्रकट होकर पुरुष की परमात्मा के स्वरूप में प्रतिष्ठा हो जाती है मानव मोक्ष पा लेता है। अतः ऐसी बुद्धि प्राप्त करना धर्म है। मोक्ष पाना ही बुद्धिमान् बनने का प्रयोजन है।

विद्या

प्रश्न– विद्या प्राप्त करना भी धर्म है क्या?

उत्तर– हाँ! तैत्तिरीय उपनिषद् बल्ली अनुवाक् 11 में विद्या प्राप्ति के लिये आचार्य शिष्यों को आज्ञा पूर्वक उपदेश देते हैं **''स्वाध्यायान्मा प्रमदः''** अर्थात् उत्तम वेदादि विद्याओं के अध्ययन में प्रमाद न करो। तथा **''स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्''** स्वाध्याय तथा प्रवचन में प्रमाद नहीं करना चाहिये। **'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः'** वेदादि शास्त्र– धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र या अध्यात्मशास्त्र का स्वाध्याय निरालस होकर प्रतिदिन करो। स्वाध्याय शब्द **'स्व'** और **'अध्याय'** इन दो शब्दों से बना है। **'स्व'** का अर्थ अपना निजरूप है और अध्याय का अर्थ अध्ययन है। अतएव वेद शास्त्रों का अध्ययन करके अपने वास्तविक स्वरूप को जानना है। अपना वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म है अतः अपने को ब्रह्म स्वरूप में जानने के लिये विद्याभ्यास अति आवश्यक है। परमात्मा के स्वरूप का अध्ययन–विचार–ध्यान एवं योग प्राप्त करने का नाम स्वाध्याय है। यह स्वाध्याय ही **अध्यात्म विद्या** है। इसे प्राप्त करना मनुष्य मात्र का परम धर्म है। विद्या की महिमा अलौकिक है। किसी कवि ने विद्या को कल्पलता की उपमा दी है–

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते
कान्तेव चापिरमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मींस्तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।

विद्या माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान लौकिक तथा पारलैकिक हित में लगाती है। कान्ता (पत्नी) के समान दुःख दूर करके मनोरंजनपूर्वक आनन्द देती है, उत्तम ऐश्वर्य एवं दशों दिशाओं में कीर्ति फैलाती है। इस प्रकार कल्पलता के समान विद्या क्या क्या सिद्ध नहीं करती? अर्थात् सर्व–सिद्धि–प्रद है इसलिये प्रमाद–आलस्य आदि को त्याग करके उत्तम विद्या प्राप्त करो।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।। (चा. नी. 8/21)

जैसे किंशुक (पलास) का पुष्प सुशोभित होते हुए भी सुगन्धि न होने से महत्वहीन हो जाता है, वैसे ही रूपयौवनसम्पन्न तथा उत्तम कुल में जन्म लेने पर भी विद्याहीन व्यक्ति शोभा नहीं पाता। उल्टे नीच कुल में जन्म लेने वाले विद्वान् का देवता भी आदर करते हैं।

दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि सुपूज्यते।। (चा. नी. 8/19)

जैसे हंसों की सभा में बगुला शोभा नहीं देता, वैसे विद्वानों की सभा में विद्याहीन मूर्ख मनुष्य शोभा नहीं देता। अतः देश–राष्ट्र, संस्था–समाज जाति और घर में सब समय सर्वत्र सुख–शान्ति–संतोष तथा धन द्वारा सम्पत्ति कीर्ति और यश आदि की प्राप्ति विद्या से ही हो सकती है। विद्या से अमृत तत्त्व–परब्रह्म की भी प्राप्ति होती है।

विद्यया विन्दतेऽमृतम्। (केन2/4)

आचार्य श्री शंकर ने भी विद्यां को ब्रह्मगति देने वाली कहा है।

''विद्या हि का? ब्रह्मगतिप्रदा या'' (मणि माला)

नीतिकारों ने तो विद्या को विलक्षण धन कहा है–

न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।।

विद्यारूप धन को चोर चुरा नहीं सकता, राजा हरण नहीं कर सकता, भाई बाँट नहीं सकता। इसका कोई भार नहीं लगता, खर्च करने से अन्य सब धन समाप्त हो जाते हैं, परन्तु विद्या धन खर्च करने पढने–पढाने से नित्य बढ़ता है अतः विद्या धन ही सब धनों में सर्वश्रेष्ठ धन है।

प्रश्न– विद्या कितने प्रकार की है?

उत्तर– विद्या की कोई निश्चित संख्या बताई नहीं जा सकती, अतः अनन्त

प्रकार की विद्याएँ हैं तथापि भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न संख्या बताई है। शुक्राचार्य जी ने बत्तीस विद्याएँ गिनाई हैं- चार वेद, चार उपवेद, शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्द में छः वेद के अंग, मीमांसा, तर्क, सांख्य, वेदान्त, योग, इतिहास, पुराण, स्मृतियाँ, नास्तिकमत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकृति, काव्य, देशभाषा, अवसरोक्ति, यावन मत और देशादि की प्रान्तीय भाषा आदि। याज्ञवल्क्य ऋषि ने चौदह विद्याओं मे सब विद्याओं का अन्तर्भाव किया हैं यथा-

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः।।

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये चौदह विद्यायें हैं। यहाँ पुराण में उपपुराण, न्याय में वैशेषिक, मीमासां में वेदान्त और धर्मशास्त्र में महाभारत-रामायण-सांख्य योग-पाशुपत वैष्णव मत तथा सब स्मृतियों का अन्तर्भाव हो जाता है। इन चौदह विद्याओ में आयुर्वेद-धनुर्वेद- गान्धर्व वेद तथा अर्थवेद (अर्थशास्त्र) ये चार उपवेद मिलाने पर अठारह विद्याएँ हो जाती है। ये सब विद्याएँ ब्रह्म-प्राप्ति में साधनभूत मानी गई हैं। कहीं-कहीं निम्न चौदह विद्याएँ बताई हैं-

ब्रह्मज्ञान रसायनं स्वरधरं वेदास्तथा ज्योतिषम्।
व्याकरणं च धनुर्धरं जलतरं वैद्यककृषिमेव च।।
कोके वाहनवाजिनां नटनृत्तं सम्बोधनाचातुरी।
विद्यानाम चतुर्दशाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मंगलम्।।

मुण्डकोपनिषद् में परा और अपरा ये दो विद्याएँ जानने योग्य कही हैं-

''द्वे विद्ये वेदितव्ये........ परा चैवापरा च।'' (मुं उ.1/1/4)

प्रश्न– इन विद्याओं के अर्थ क्या है ?

उत्तर– जो धर्म और अधर्म के साधन तथा उनके फल का प्रतिपादन करने वाली हैं। उसे अपरा विद्या कहा हैं तथा जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है वह परा विद्या है।

प्रश्न– विद्या कैसे प्राप्त की जाय ?

उत्तर– जिस विद्यार्थी को जो शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा हो, उसे उस विद्या के विद्वान् के पास जाकर श्रद्धा–विश्वास–सेवा और ब्रह्मचर्य पूर्वक सरल भाव एवं नम्र होकर शिष्यत्व स्वीकार करके प्रश्न करके विद्या प्राप्त करनी चाहिये। याज्ञवल्क्य ने विद्या प्राप्ति के तीन साधन बतायें हैं यथा–

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नोपपद्यते।। (पा. शिक्षा)

तत्वज्ञानी गुरु की श्रद्धा पूर्वक सेवा करने से उत्तम विद्या प्राप्त होती है। अथवा पुष्कल धन देकर विद्या प्राप्त की जा सकती है। अथवा विद्या से विद्या प्राप्त होती है। विद्या प्राप्ति का चौथा कोई साधन नहीं है। गुरु सेवा से प्राप्त विद्या ही इस लोक तथा परलोक में सुख शान्ति समृद्धि एवं ब्रह्मानन्द की देने वाली है।

''आचार्याद्धयैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापदिति''

(छां. उ. 4/9/3)

धन आदि खर्च कर उपाध्याय से पढ़ी हुई विद्या न्यून फल देने वाली हैं परस्पर में आदान प्रदान (एक विद्या का विद्वान् दूसरी विद्या के विद्वान् को अपनी विद्या पढ़ा दे उससे अन्य विद्या पढ़ ले) से प्राप्त विद्या मध्यम फल देती है। यह भी विद्या प्राप्ति का एक सरल सुगम मार्ग है।

प्रश्न– इसके सिवा विद्या प्राप्ति का और भी कोई उपाय है?

उत्तर– हाँ, अपने इष्टदेव की सिद्धि से विद्या प्राप्त हो सकती है। पाणिनि ने

भगवान् शंकर जी के पास से ज्ञान प्राप्त करके व्याकरण शास्त्र की रचना की थी। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भगवान् सूर्य के पास सब वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था। इस प्रकार भगवान् की उपासना से जप तप के द्वारा विद्या सम्पादन की जा सकती है। इसके लिए बड़े यम–नियम–संयम आदि की जरुरत पड़ती है। सरस्वती की उपासना करके महाकवि कालिदास ने अद्भुत विद्या शक्ति प्राप्त की थी। इसी प्रकार अन्य साधक भी इष्ट सिद्धि करके लौकिक पारलौकिक प्रेय–श्रेय–प्रद अध्यात्म विद्या प्राप्त कर सकते हैं। अधिकतया विद्वान् होने के लिए भगवान् महादेव की उपासना करनी चाहिये।

''**ज्ञानमिच्छेत्महेश्वरात्।**'' (भागवत) तथा
''**ईशानः सर्वविद्यानाम्**'' (तै. आ.)

सम्पूर्ण विद्याओं के आदि उपदेशक भगवान् शिव हैं। अतः शिवोपासना करके विद्वान् बनो।

प्रश्न– विद्या प्राप्ति का फल क्या है ?

उत्तर– ''**विद्याफलं स्यादसतो निवृत्तिः**'' (विवेक चूड़ामणि)

असत् से निवृत्त होना विद्या प्राप्ति का मुख्य फल है। विद्या के अन्य दो फल हैं– पहला फल है लोक में मान–प्रतिष्ठा धन यश–गौरव सुख–ऐश्वर्य आदि का मिलना तथा परलोक में परमात्मा के अविनाशी परम पद की प्राप्ति। कवियों ने विद्या की महिमा खूब गाई है। कहीं कल्पलता कहीं कामधेनु कहकर गुणगान किया है–

''**कामधेनुगुणा विद्या**''

अतः विद्वान् में सब शुभ गुण निवास करते है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।।
विद्या बन्धुंजनो विदेशगमने विद्या परा देवता।
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।। (नीतिशतक)

अर्थात् विद्या ही मनुष्य का सुन्दर रूप हैं (जो रूप सुन्दर हो और विद्या न हो तो वह रूप भी कुरूप ही है) विद्या ही ढका हुआ गुप्त धन है। विद्या भोग–यश और सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। जिसके हृदय में विद्या रूपी दिव्य चक्षु का उदय हुआ वह सर्वज्ञ हो जाता है परदेश गमन में विद्या ही बन्धु बान्धवों के समान सहायक होती है। विद्या ही श्रेष्ठ देवता है। विद्या ही राजाओं में पुजवाती है, धन नहीं। अतः विद्या बिना मनुष्य पशु समान है– पशुतुल्य है। ऐसी अद्भुत अध्यात्म विद्या प्राप्त करके अपुनरावर्ती ब्रह्म लोक को प्राप्त किया जा सकता है– मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

''एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते'' (प्र. उ. 1/10)

अतः वहाँ से मृत्युलोक में पुनः आना नही होता। ऐसी ब्रह्मगति प्रदान करने वाली विद्या परादेवता है। इसे प्राप्त करके मानव अजर–अमर–अभय होकर आत्मनिष्ठ बने यह परम कर्तव्य अथवा परम धर्म है।

प्रश्न– गीता में तो ब्रह्मलोक तक के सब लोकों को पुनरावर्ती कहा है न?

उत्तर– इसका तात्पर्य इतना ही है कि जो उपासना रहित पंचाग्निविद्या अश्वमेध और ब्रह्मचर्यादि साधनों से उत्तरायण मार्ग से गये हों, वे ही काल से परिच्छिन्न ब्रह्मलोक से वापस संसार में आते हैं, परन्तु जो ईश्वरोपासना और ब्रह्मोपासना करके विमुक्त होते है। वे फिर इस संसार में नहीं आते, क्योकि विद्वान् पुरुष तो देश काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न दिव्य अमर पद को प्राप्त हो जाता है। इसलिए पराविद्या से ही मनुष्य अपने लक्ष्य ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। और ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होनें के कारण उसका पुनरागमन होना सम्भव नहीं है। अतः मनुष्यों को प्रमाद आलस्य आदि का त्याग करके अजरामरवत् ब्रह्मविद्या प्राप्त करने के लिये सुप्रयत्नशील रहना चाहिये।

प्रश्न– विद्या न पढें तो क्या हानि है?

उत्तर– भले मानव! मै पहले ही कह चुका हूँ कि विद्याहीन मनुष्य पशु या पशुतुल्य है उसकी कोई विशेषता नहीं है, वह अज्ञानरूप अन्धकार में पड़ता है, पाप करके दुःखदायक पापयोनियों में जन्मता मरता रहता है, क्या यह कम हानि है! अतः प्राज्ञ पुरुष को लोक को सुधारने वाली पाप–ताप–शोक–मोह–संताप को हरने वाली कल्याणकारी पुण्यमयी धर्मस्वरूप ज्ञान एवं आनन्दमयी कामधेनु के समान सब मनोरथों को सिद्ध करने वाली विद्या प्राप्त करनी ही चाहिए– यही सर्वतोमान्य विश्वधर्म है।

सत्य

प्रश्न– सत्य बोलना–मानना और तदनुकूल आचरण करना भी धर्म है?

उत्तर– हाँ, श्रुति–स्मृति तथा न्याय में सत्य को परम महत्वपूर्ण धर्म माना है तथा मनु ने धर्म का नवम अंग कहा है।

''**धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः**'' न्यायकारों ने कहा है।

तथा महाभारत में ''**न हि सत्यात्परो धर्मः**''

सत्य से श्रेष्ठ दूसरा कोई धर्म नहीं है– ऐसा कहा है।

प्रश्न– सत्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर– ''**त्रिकालाबाध्यत्वं सत्यत्वम्**'' तीनों काल में जिसका बाध न हो, जो सदा एकरस रहे– वह सत्य है। जो कालातीत गुणातीत एवं मायोपाधि से रहित है, वह सत्य है। सत्य का दर्शन एवं ग्रहण करना परम धर्म है।

प्रशन– क्या सत्य का दर्शन भी होता है?

उत्तर– हाँ, यजुर्वेद में कहा है–

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

अर्थात्–सत्यस्वरूप धर्म का मुख (स्वरूप) हिरण्मय–सुवर्णमय

या मायारूप तेजस्वी पात्र से ढका हुआ है। हे सबके पोषक पूज्य परमात्मन्! मैं आपके सत्य धर्म यानी सच्चिदानन्द स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ। कृपा करके मायामय सुवर्णपात्र को हटा लीजिये, जिससे मैं आपका दर्शन कर सकूँ अथवा सत्य ही जिसका धर्म है– ऐसा मै सत्यधर्मा हूँ। हे पूषन्! मायारूप हिरण्मय पात्र को दूर कर दीजिये, जिससे मैं अपने सत्यरूप ब्रह्म का दर्शन कर सकूँ।

प्रश्न– हिरण्मयपात्र, जो सत्य को ढक रखता है, वह क्या है?

उत्तर– माया–अविद्या ही आपाततः रमणीय लौकिक और पारलौकिक भोग्य पदार्थ ही, जिसका स्वरूप है वह सुवर्णमय चमकीला पात्र है। पात्र के समान है, जिसके आकर्षण से मनुष्य चौंधिया जाते हैं और सत्य धर्म से चूक जाते हैं, उसको हटाने की प्रार्थना है। कहीं सूर्य को ही हिरण्मयपात्र कहा है, उसकी किरणें सुवर्ण के समान चमकती है, उन्हें हटाने पर ही सूर्य मण्डल में स्थित सत्य धर्म रूप परमात्मा का दर्शन हो सकता है। तात्पर्य यह है कि सूर्य लोक का भेदन करने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

प्रश्न– क्या आप सत्य को ही धर्म तथा ईश्वर आदि सब कुछ कहते हैं?

उत्तर– हाँ, इसमें क्या आपत्ति है। **सद्** धातु से सत्य शब्द बना है। **सत्** नाम परमात्मा का है। ''**सत्**'' का भाव ही सत्य है। अतः '**सत्य**' नाम ईश्वर वाचक है। सत्य–भाषण और सत्याचरण से तथा सत्य का सेवन करने से, परमात्मा की प्राप्ति होती है। गीता में कहा है–

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। (गीता 17/23)

हे अर्जुन ''**ओम्–तत्–सत्**'' ये तीन सच्चिदानन्दघन परब्रह्म के नाम हैं। श्रुति में कहा है– ''**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**'' वह सत्य ज्ञानरूप और अनन्त है। अतः सत्य ही धर्म तथा ब्रह्म है तथा सत्य ब्रह्मप्राप्ति का साधन है। अतः सत्य धर्म भी है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है। जो सत्य है वही ईश्वर है और जो ईश्वर है वही सत्य है, वही धर्म है।

सब धर्मसम्प्रदायों के लोग यह मानते है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य बोलना–सत्याचरण करना धर्म है। कुछ लोग सत्याचरण करने को कहते तो है। परन्तु न सत्य बोलते हैं और न ही सत्य का आचरण करते हैं किन्तु सत्य का उपदेश अवश्य करते हैं।

प्रश्न– जो स्वयं आचरण नहीं करते उनके उपदेश का फल क्या ?

उतर– कुछ नहीं, जो स्वयं आचरण करे और दूसरों को उपदेश दे, तो ही दूसरों के हृदय में उपदेश के प्रति सद्भाव एवं सदाचार की प्रवृत्ति हो सकती है अतः सबको सत्य का आचरण करना चाहिये।

प्रश्न– सत्याचरण से धर्म स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उतर– **सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्**

(मुं. उ. 3/1/6)

नित्य ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदादि सत् शास्त्रों का श्रवण मनन निदिध्यासन रूप से सम्यक् ज्ञान होने पर सत्याचरण द्वारा ही आत्मा की प्राप्ति होती है। **'सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।'** (श्वे. 1/12) जो सत्य और तप से आत्मा का दर्शन करता है (वह मुक्त हो जाता है)

प्रश्न– सत्याचरण से क्या लाभ है?

उत्तर– सत्याचरण से ही लोक–परलोक सुधरता है। सत्य से राजा हरिश्चन्द्र ने दिव्यपद पाया था। युधिष्ठिर भी सत्यधर्म में स्थित थे। राजर्षि दशरथ– जनक–रन्तिदेव–शिवि–दधीचि–वशिष्ठ–याज्ञवल्क्य–सौभरी–जड़भरत– शुकदेव–सनकादि ऋषि एवं परम विदुषी गार्गी–मैत्रेयी अपालात्रेयी–घोषाकाक्षी–मदालसा–विद्योत्तमा–मुद्गलानी आदि राजर्षि–महर्षि–परमर्षि देवर्षि विद्यामयी महिषीगण ये सब वेदपारगामी थे। इसी से इन्होंने इस लोक में परमैश्वर्य के साथ महान् यश सम्पादन कर अन्त में सब अक्षय परा–शान्ति मोक्ष पद को प्राप्त हुए। इस बात को सारा संसार जानता है। जो इनके यश का गान करके पुण्य कमाता है, वह कृतकृत्य हो जाता है।

आप भी सत्याचरण के द्वारा महान् बन सकते हैं। महान् यशस्वी तेजस्वी तथा प्रभु की कृपा के पात्र बनकर महान् ऐश्वर्य सम्पन्न हो सकते हैं। आपके सब दुर्गुण–दोष छूट जायेंगे, आप परमपवित्र सदाचार सम्पन्न, मेधावी,दीर्घजीवी, दीर्घदर्शी, क्रान्तदर्शी, तत्त्ववेत्ता, वेदानुरागी, धर्म–कर्मनिष्ठ–प्राणियों के और सम्पूर्ण विश्व के हितैषी–सबके प्रिय–सबके हितकारी–सबके बन्धु बन जायेंगे। स्वर्ग की सब विभूति और सब ऋद्धि–सिद्धि आपकी सेवा में उपस्थित हो जायेंगी और आपके लिये देवयानमार्ग खुल जायेगा, आपकी अव्याहतगति होगी, आप महान् बनेगें। विश्व–विजेता एवं विश्व–प्रकाशक तथा विश्वसुख–संचारक बनेगें, यही सत्यात्माओं का परम कर्तव्य तथा महत्वपूर्ण धर्म है इसे अपनाइये, तद्रूप बन जाइये, डरिये मत, विश्वास कीजिए, परमात्मा आपको दिव्यशक्ति देगा, दिव्य ज्ञान–बल–क्रियाशक्ति से सम्पन्न होकर आप सत्य कहने–सुनने–मानने एवं आचरने में समर्थ होंगे। थोड़े दिन में देखिये–आप क्या से क्या बन जायेंगे आप चमत्कृत होंगे, सोचेंगे मुझमें यह शक्ति कहाँ से आई? शक्ति तो कहीं से नहीं आती, आपकी अपनी शक्ति है, जो सत्य से प्रकट हो गई है। यही सत्य शक्ति आपका और विश्व का अभ्युदय तथा निःश्रेयस् करेगी। यही सत्यधर्म रूप ईश्वर का साक्षात्कार करायेगी, आप आनन्द सिन्धु में निमग्न होंगे। अहो! इस आनन्द के दिन कब आयेंगे? जब हम और हमारा विश्वपरिवार सत्यधर्म का पथिक बनकर पूर्णता की पराकाष्ठा को प्राप्त होगा। हमारा उद्देश्य ही सत्य को जानना–मानना और आचरना है, यही धर्म है। इसी के बल पर सूर्य–चन्द्र–नक्षत्र–पृथ्वी–जल–वायु–तेज आदि तत्त्व नियमानुसार अपना कार्य करते हैं। इन्द्र–वरुण–यम एवं कालादि इसी के आधार पर टिके हैं तथा अपना कार्य सुचारु रूप से करते हैं। आप में भी उसी की शक्ति काम करती है देखिये–

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

आशय यह है कि सब कार्य कारणरूप विश्व के प्रपंच एवं प्राणी–पदार्थ सत्य के आधार पर स्थित हैं सब देवता सत्य से दैवत्व प्राप्त करते हैं। सत्य भाषण एवं आचरण से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। इसीलिये धर्म के दश लक्षणों मे मनु जी ने सत्य को नौवाँ विशुद्ध आनन्दकारी धर्म कहा है। प्रत्येक व्यक्ति को इसका पालन करना चाहिये।

अक्रोध

प्रश्न– क्रोध न करना भी धर्म है

उत्तर– हाँ, गीता मे क्रोध न करने को दैवी गुण कहा है। और मनुस्मृति में भी क्रोध करना अधर्म तथा क्रोध न करना धर्म कहा है। सब सम्प्रदाय वाले भी क्रोध नहीं करने को धर्म मानते हैं। ज्ञानी पुरुष के लक्षण में भी ''**अक्रोधः वैराग्यजितेन्द्रियत्वम्**'' कहकर प्रथम ही अक्रोध को रखा है। तपस्वी के लिये भी ''**अक्रोधः तपसः फलम्**'' क्रोध न करना तप का फल है– ऐसा कहा है। तथा गीता मे क्रोध को नरक का द्वार बताकर उस के त्याग की बात कही है। अतः क्रोध न करना यह धर्म का दसवाँ अंग है।

प्रश्न– क्रोध की उत्पत्ति कैसे और क्यों होती है?

उत्तर– गीता में ''**क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः**'' कहकर सम्पूर्ण अनर्थों के कारण, नरक के द्वार रूप क्रोध की उत्पत्ति रजोगुण से कही है तथा ''**कामात्क्रोधोऽभिजायते**'' कहकर काम से भी क्रोध की उत्पत्ति होना कहा है। मन में जब रजोगुण बढ़ता है तब अनेक कामनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, इच्छित कामना की पूर्ति में, जब अवरोध आता है, तब क्रोध हो जाता है। तात्पर्य यह है कि काम ही क्रोध का रूप धारण कर लेता है।

प्रश्न– अन्य गुणों से क्रोध उत्पन्न नहीं होता क्या?

उत्तर– होता है, परन्तु सत्वगुणी क्रोध हानिकारक नही है।

प्रश्न– तमोगुणी क्रोध का क्या लक्षण है।

उत्तर– तमोगुणाधिक्य से जो क्रोध उत्पन्न होता है वह तामसी है। यह मानव को किं कर्तव्य विमूढावस्था में ले जाता है। इसी को गीता में ''**क्रोधः पारुष्यमेव च**'' आसुरी सम्पत्ति कहा है, जो बन्धन का कारण है। (ऋग्वेद 9/7/104–22) में क्रोध को **'शुशुलूक'** यानी अति–क्रोधी भेड़िया की उपमा की गई है। उसको राक्षस कहकर मार डालने की प्रेरणा दी गई है। क्रोध राक्षस–महान् दुर्गुणी–पापी–प्रबल शत्रु तथा विद्वेष रूपी विषवृक्ष है चाण्डाल या पिशाच के समान रुधिर का पान करने वाला कहा गया है, जो अच्छी बात को भी सुनने को तैयार नहीं होता। त्रिमुवन को अन्धा और बहरा बना डालने वाला राजस–तामस क्रोध महापुरुषों के भी अम्भुदय तथा निःश्रेयस् को नष्ट कर देता है। कहा भी है–

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् किं क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत्।।

(बा. रा. सुं.55/4)

क्रोधी मनुष्य कौन सा पाप नही करता! क्रोध में मनुष्य माता–पिता–गुरुजनों को भी मार सकता है। कठोर वाणी एवं कड़वी वाणी से साधु पुरुषों के प्रति आक्षेप कर बैठता है। अतः अम्युदय की इच्छा वाले मानव को पहले अपने क्रोध को दूर करना चाहिये। जो दया–क्षमा आदि के द्वारा क्रोध को जीत लेते हैं, वे धन्य हैं। जीवन्मुक्ति विवेक में कहा है–

अपकारिणि कोपश्चेत् कोपे कोपः कथं न ते।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्य परिपन्थिनि।।

हे मानव ! जो तुझे अपकार करने वाले के ऊपर क्रोध होता हो,

तो तुझे क्रोध के उपर क्रोध क्यों नहीं होता? क्योकि धर्म–अर्थ–काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को नष्ट करने वाला क्रोध महान् शत्रु है। अतः क्रोध पर क्रोध करके क्रोध को मार डाल। कितना सुन्दर उपदेश है?

प्रश्न– क्रोध उत्पन्न होने का कारण क्या है ?

उत्तर– आघात लगने से, मस्तिष्क के ज्ञान–तंतुओ के क्षीण होने से, अधिक वीर्य स्राव से, रोग होने से, मन के प्रतिकूल काम होने से, काम वेग के रोकने से, तथा शत्रु पक्ष के उपस्थित होने पर मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है। रजोगुण–तमोगुण हावी होने से क्रोध का पार नही रहता। अपने स्वभाव को सुधार कर अक्रोधी बनना धर्म है।

प्रश्न– सत्वगुणी तथा रजोगुणी क्रोध का क्या लक्षण है?

उत्तर– नीति–युक्त तथा अनीति–युक्त ऐसे क्रोध के दो स्वरूप हैं। नीति–युक्त क्रोध सात्विक है तथा अभिमान से अन्याय अत्याचार युक्त क्रोध रजोगुणी है, जो त्याज्य है।

प्रश्न– नीति तथा अनीति युक्त क्रोध कैसे पहचानें? तथा सात्विक है या राजस कैसे पता चले ?

उत्तर– अत्याचार अनाचार–पाप–पाखण्ड–छल–कपट–चोरी–जारी–जुगारी आदि करना यह अधर्म है। ऐसे कुकर्म करने वाले दुष्ट दुर्जन हैं। इनका दमन करना, योग्य दण्ड देना और पापाचार से हटाना, उन्हे सदाचारी बनाना यह '**क्षात्र धर्म**' है। इसके लिये जो क्रोध करना पड़े यह नीतियुक्त सत्वमिश्रित राजस क्रोध है। ऐसा क्रोध धर्मात्माओं के लिये भूषण रूप है। वेद में ऐसे क्रोध की प्राप्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना की गई है – ''**मन्युरसिमन्युम्मयि धेहि**'' (यजुः. 19/9)

हे परमात्मन्! आप क्रोध स्वरूप हैं, मुझमें न्याययुक्त सात्विक क्रोध उत्पन्न करें। तथा ''**मन्युश्चमेभामश्चमे**'' (यजुः. 18/4) मन्यु नाम मानसिक क्रोध का है तथा **भामः** बाह्य क्रोध का हैं ये दोनों

ही प्रकार के क्रोध केवल दुष्ट को शिष्ट बनाने के लिये दिखावा मात्र हैं। दुष्ट को डराना–धमकाना भय बताना, नेत्र मुख आदि के हलन–चालन हावभाव ऐसे करना, जिससे पापी मनुष्य भयभीत होकर पापाचार छोडकर पुण्यात्मा हो जाय यह **'भामः'** बाह्य क्रोध है, जो रजोमिश्रित सात्विक है। यह क्रोध **'अक्रोध'** ही है।

प्रश्न– मानसिक क्रोध का क्या लक्षण है तथा इससे हानि लाभ क्या हैं?

प्रश्न– यह क्रोध भी दो प्रकार का है। एक भौतिक दूसरा आत्मिक– प्राणि–पदार्थों की प्रतिकूलता से मन में उद्वेग होता है, उस उद्वेग से क्रोध होता है, यह क्रोध भौतिक है। किसी व्यक्ति को आप खूब चाहते हों, परन्तु वह व्यक्ति बिल्कुल नहीं चाहता हो अथवा कोई व्यक्ति आपको खूब चाहता हो, आप उसे नहीं चाहते हों, वह व्यक्ति बारम्बार न चाहते हुए आपको मिलता रहता हो, अप्रिय समझकर आप उसे दूर करना चाहते हों और वह दूर न हटे तब आपके मन मे क्षोभ–उद्वेग हो जाता है। तब क्रोध होता है, वह क्रोध भौतिक है, क्योंकि भौतिक प्राणि–पदार्थों की प्रतिकूलता से क्रोध हुआ है यहाँ विकृत मन के मनोबल की निर्बलता क्रोध में कारण है– यह सामान्य मनुष्य की बात है।

प्रश्न– साधकों के क्रोध की स्थिति बतायें।

उत्तर– साधकों के मन में विकृति नहीं होती। उनका मन परम शान्त तेजस्वी विशुद्ध और स्थिर होता है। मन की ब्रह्माकार वृत्ति होने से वे समाधिस्थ हो जाते हैं, परन्तु पूर्व संस्कारो की प्रबलता से जब मन का व्युत्थान होता है, तब तीव्र वैराग्य युक्त स्थिति होते हुए भी किसी कारण से मन क्षुब्ध–चंचल या विक्षिप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक को अपने ऊपर या प्रिय परमेश्वर पर कुछ क्षणों तक क्रोध आ जाता है। संसार के प्राणि–पदार्थों पर भी द्वेष बुद्धि से क्षणिक क्रोध होता है, परन्तु हृदय विशुद्ध होने से द्वेष बुद्धि क्षण में ही लुप्त हो

जाती है– यह आत्मिक क्रोध है। योगाभ्यासी–ज्ञानयोग के पथिक तथा मुक्तिमार्ग के साधकों के मन में ऐसी विघ्नप्रद विचारधारा आसक्ति है। अतः साधकों को सावधान रहना चाहिये और अपने लक्ष्य ब्रह्म–प्राप्ति तक पहुँचने का प्रयत्न चालू रखना चाहिये। जो साधक ने थोडी भी शिथिलता की तो सम्पूर्ण साधना पर पानी फिर जायेगा। क्रोध की भयंकर आँधी में राजर्षि विश्वामित्र ने महर्षि वशिष्ठ के सौ पुत्रों को मार डाला। ईर्ष्या–द्वेष–पूर्वक तप किया, परन्तु परिश्रम व्यर्थ गया और अन्त में ईर्ष्या छोड़कर क्रोध को तिलांजलि देकर शान्त भाव से वशिष्ठ की शरण में गये, तब राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने। यह साधन मार्ग का अक्रोध है, यही धर्म है।

प्रश्न– क्रोध तो बड़े–बड़े ऋषि–मुनि–महात्मा और देवता भी करते हैं तो इसका क्या ?

उत्तर– मंत्रद्रष्टा ऋषि, बह्म के स्वरूप का मनन करने वाले मुनि तथा ब्रह्माकार वृति धारण करके आत्मोन्नति करने वाले महान् विशाल हृदय वाले आप्तवक्ता ज्ञानी जन महात्मा कहे जाते हैं और वे बड़े प्रभावशाली एवं तेजस्वी होते हैं, ऐसों का क्रोध सामने वाले का कल्याण करने के लिये होता है।

प्रश्न– क्रोध से कल्याण?

उत्तर– हाँ, क्योंकि उनका क्रोध सात्विक होता है।

प्रश्न– सनकादि ऋषियों ने जय विजय को शाप दिया और देवर्षि नारद ने शिवगणों को शाप दिया, इसमें उनका क्या कल्याण हुआ?

उत्तर– जय विजय भगवान् के द्वारपाल थे। द्वारपाल का काम दास लोगों का है, सबको महान् होने की इच्छा होती है। उनके मन मे भी यही था कि हम भी भगवान् में मिल जाय। ऋषियों ने उनको शाप दिया, उनका द्वारपाल का काम छूटा और वे राजा हो गये। भगवान् ने भी समयानुसार अवतार लेकर उन दोनों का वध किया और उन्हें दूसरे शरीर देकर

शिवगण बनाये, फिर नारद के शाप से वे शिवगण रावण–कुम्भकर्ण हुए। फिर विष्णु ने रामावतार धारण किया, युद्ध हुआ, दोनों का वध हुआ। अन्य जन्म में वें पुनःराजा हुए– दन्तवक्त्र और शिशुपाल के रूप में, अतुल बल पराक्रम और विपुल सम्पत्ति प्राप्त करके महान् हुए– फिर भगवान् ने कृष्णावतार लेकर सम्पूर्ण विश्व को आनन्दित किया एवं जय विजय, जो दन्तवक्त्र और शिशुपाल के रूप में जन्मे थे, उन्हें वध के बहाने अपने स्वरूप मे मिला लिया, मुक्त कर दिया। वे स्वयं भगवान् बन गये, व्यापक हो गये। अब चराचर विश्व भगवत्स्वरूप में उनकी पूजा करता है– यह है ऋषि क्रोध की महिमा।

प्रश्न– क्या मुनियों के क्रोध से भी कल्याण होता है?

उत्तर– कठोपनिषद् में वाजश्रवस् मुनि की कथा आती है। वे बडे परमार्थ–तत्त्ववेत्ता–धर्मपरायण–सत्यवादी तथा दृढ़ प्रतिज्ञ–यज्ञ–धंर्म–कर्मनिष्ठ थे। उन्होंने अपने पुत्र नचिकेता पर क्रोध किया और कहा कि **''मैं तुझे मृत्यु को दूँगा''** परिणामतः नचिकेता मृत्यु यानी यमाचार्य के पास गया। उनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त करके मुक्त हो गया तथा जगत् के कल्याण के लिये जगत् को **कठोपनिषद्** प्राप्त हुआ। इससे सम्पूर्ण मानव समाज उन्नत होकर अपना अभ्युदय तथा निःश्रेयस् सिद्ध कर रहा है यदि मुनि ने क्रोध न किया होता तो न नचिकेता की मुक्ति होती और न कठोपनिषद् का दर्शन होता– यह है मुनिजनों के सात्विक और कल्याणकारी क्रोध की महिमा।

प्रश्न– महात्माओं के क्रोध का लक्षण क्या है ?

उत्तर– जिसका आत्मा महान हो, जिसका जीवन ही परोपकार के लिये हो, ऐसे सन्त महात्मा विश्व कल्याण के लिये यत्र–तत्र–सर्वत्र विचरते रहते हैं। अधिकारियों को उनके दर्शन सत्संग का लाभ मिलता रहता है। ऐसे महात्माओं के मन में वास्तविक क्रोध नहीं होता। ऐसे महापुरुष लोगों के मनोरथों की सिद्धि के लिये क्रोध करने का आडम्बर करते

हैं। जैसे धूनी वाले बाबा की प्रसिद्धि है कि जो जिस आशा को लेकर उनके पास जाता, वे उसे जान लेते थे और जो हाथ में आता उठाकर मार देते, तो आगन्तुक की इच्छा पूरी हो जाती। यह महात्माओं के अमृतमय क्रोध की महिमा है।

प्रश्न– **देवताओं के क्रोध की क्या महिमा है ?**

उत्तर– यह भी उद्धारक है।

प्रश्न– **क्रोध भी उद्धारक? सो कैसे ?**

उत्तर– कामदेव पहले सशरीर था। जो सशरीर होता है वह परिच्छिन्न एवं एकदेशीय तथा अल्प शक्ति वाला तथा ससीम होता है– यह अपूर्णता का लक्षण है। कल्याणकारी भगवान् शिव ने क्रोध करके काम को जलाकर अनंग (अशरीर) बनाकर सर्वव्यापक बना दिया। रति को वरदान देकर उसे भी कृतार्थ कर दिया। इस प्रकार कामदेव को कितना महान् बना दिया– विचार करें। इसी प्रकार भुसुण्डि जी के चरित्र को देखिये, जो विचारों में क्षुद्र–गुरु द्रोही–हरिनिन्दक–हरपूजक था ऐसे व्यक्ति को तो राम के कथनानुसार नरक ही मिलना चाहिये था।

शंकर प्रिय मम द्रोही शिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ वास।।

तो भी परमकृपालु सदाशिव ने उसे शाप (शाप नही वरदान कहना चाहिये) देकर भगवान् श्री राम की भक्ति देकर कृतकृत्य कर दिया। काक भुसुण्डि जी के चरित्र को पढ़ते ही मनुष्य परमपवित्र होकर मोहरहित बनकर अनन्तसुख–सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है– यह शिवजी की देन है। भगवान् शिव तो परम उदार वरदान दाताओं में शिरोमणि हैं। उनका शाप भी वरदान ही होता है– यह है देवताओं के अलौकिक दिव्य क्रोध की महिमा। इसे अक्रोध ही कहना चाहिये।

प्रश्न– **सुना है कि क्रोध करने से तपोबल क्षीण हो जाता है ?**

उत्तर– हाँ, तपोबल क्षीण हो जाता है, इसलिए क्रोध नहीं करना चाहिये।

प्रश्न– दुर्वासा जी तो महान् क्रोधी थे, उनका तपोबल नष्ट क्षीण नहीं हुआ इसका क्या कारण ?

उत्तर– दुर्वासा मुनि में भगवान् रुद्र का अंश था। वे योगाभ्यासी योगियों और ज्ञान ध्यान में तत्पर साधकों तथा भक्तों को उनकी साधना में पूर्णनिष्ठा कराने के लिये तथा उनकी परीक्षा करके उनको पूर्णप्रज्ञ बनाने के लिये दिखावे के क्रोधी बनकर विचरते थे। वास्तव में तो वे जीवन्मुक्त महापुरुष थे। कुंजवन में यमुना पार जब सैंकडो गोपियों ने उन्हें अनेक प्रकार के मिष्ठान्न का भोजन कराया और पूछा– गुरुदेव! यमुना जी में पूर आया है, हम उस पार कैसे जाँय? तब दुर्वासाजी ने कहा– तुम यमुना जी से कहो– **''दुर्वासा जी, जो सदा उपवासी हों तो हमें मार्ग दे दो''** ऐसा कहने पर मार्ग दे दिया। इसका मतलब यही है कि दुर्वासाजी जीवन्मुक्त ज्ञानी थे, उनमें क्रोध का लेश भी नहीं था। उनमें कर्तृत्व–भोक्तृत्व का अभिमान नहीं था– वे तो विश्व कल्याणार्थ क्रोधी के वेश में विचरते थे।

प्रश्न– इन उपर्युक्त प्रसंगो का आशय क्या है?

उत्तर– इन सबका सार इतना ही है कि यदि दूसरों का हित होता हो, न्याय–नीति और सत्य की उन्नति के साथ धर्म की स्थापना होती हो, तो ऐसा निर्दोष क्रोध करना धर्म है। यह क्रोध भी अक्रोध ही है। इसके विपरीत अन्याय अनीति या अभिमानपूर्वक क्रोध करना पाप है– अज्ञान है– अधर्म है– बन्धन कारक तथा मृत्युदायक है, इसका त्याग करना चाहिये।

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां देहस्थितो देहविनाशनाय।
यथा स्थितः काष्ठगतो हि बह्निः स एव बह्निर्दहते शरीरम्।।

(सुभाषित)

इस प्रकार **'अक्रोध'** मनुष्यमात्र का परम धर्म है।

यहाँ धृति से लेकर अक्रोध तक धर्म के दश लक्षणों का श्रुति

स्मृति–युक्ति आदि प्रमाणों से वर्णन किया गया है इसमें बहुत सी उपयोगी बातों का समावेश हो गया है। पाठकों को इस पर अधिक विचार करना चाहिये। सत्ययदि धर्म के एक–एक अंग का आचरण करके उन्नत होना चाहिये। धर्मानुष्ठान करने वाले मानव का कभी पतन नहीं होता। उसका अभ्युदय और निःश्रेयस् निःसंदेह होता है।

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीपान्तर्गत द्वितीय किरण समाप्त।

ऊँ शिवः सर्वं सर्वत्र

प्रश्नोत्तर प्रदीप

तृतीय किरण

वैयक्तिक और सामाजिक धर्म

धर्मः सर्वसुखंकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः।।
धर्मान्नास्तिपरः सुहृत्तनुभृतां धर्मः परित्रायते।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म मां पालय।।

धर्म सब सुखों को देता है, हितकारी है, धर्म को ज्ञानी जन जानते हैं, धर्म में ही कल्याण–सुख स्थित है, धर्म से बढकर शरीरधारियों का दूसरा कोई सुहृत् नहीं है। धर्म ही सबकी रक्षा करता है। मैं अपना मन प्रतिदिन धर्म में लगाता हूँ। हे धर्म! मेरी रक्षा करो।

धर्मस्य विजयो भूयादधर्मस्य पराभवः।
सद्भावना प्राणभृतां भूयाद्विश्वस्य मंगलम्।।

हे परमात्मन्! आपकी कृपा से धर्म की जय हो, अधर्म का विनाश हो, प्राणियों में (मनुष्यों के हृदय में) सद्‌भावना हो तथा विश्व का कल्याण हो।

प्रश्न– वैयक्तिक धर्म क्या है?

उत्तर– व्यक्ति विशेष में रहने वाले कर्तव्यरूप कर्म को वैयक्तिक धर्म कहा है। व्यक्तिगत धर्म जैसे मातृधर्म, पितृधर्म, दाम्पत्य धर्म, स्त्री धर्म, पुरुष धर्म, पुत्र धर्म आदि।

प्रश्न– मातृ–धर्म की संक्षिप्त व्याख्या कीजिये।

उत्तर– ''या मिमीते सर्वान्जीवान्मानयतीति माता'' जो ममतामयी है सब जीवों को जो मान देती है, वात्सल्य भाव से जो पुत्रों का लालन पालन करती है तथा जो शुद्ध आचार व्यवहार सम्पन्न रहकर बालक

को धार्मिक तथा आध्यात्मिक सम्पन्न बनाती है, जो पुत्रों मे उच्च विचार धारा प्रवाहित करती है– वही सच्ची माता है और वही मातृधर्म है– इसके उज्ज्वल उदाहरण माता–मदालसा तथा कौशल्या हैं।

प्रश्न– पितृ–धर्म क्या है?

उत्तर– **''पालयतीति पिता''** जो पालन करता है तथा जो जनक है वह पिता है। पुत्र कभी अधर्म–अनाचार में प्रवृत्त न हो जाय–इसका ध्यान रखकर पुत्र को ऐहिक तथा सामाजिक प्रेय–श्रेयप्रद शुभ कर्मों में लगावे, वह पिता है। पुत्र को सद्धर्म–कर्म में लगाना ही पितृ–धर्म है। इसका उज्ज्वल उदाहरण उद्दालक मुनि का है। उन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतु को लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान–विज्ञान देकर परम सुखी बनाया, ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित किया। जो माता–पिता पुत्र को उत्तम शिक्षा–दीक्षा पूर्वक वेदाध्ययनादि नहीं कराते, उनको नीतिकारों ने पुत्र के शत्रु कहा है। अतः पुत्र को पढ़ा लिखाकर विद्वान्–चरित्रवान एवं धर्मात्मा बनाना सभ्य एवं संस्कृत बनाना ही मातृ–धर्म तथा पितृ–धर्म है।

प्रश्न– पुत्र का धर्म क्या है?

उत्तर– **''मातृदेवो भव, पितृदेवो भव''** इस श्रुति का, माता को देव मानने वाला बन, पिता को देव मानने वाला बन– इस आदेश के अनुसार जो पुत्र माता–पिता की सेवा करता है, देवतुल्य समझ कर कभी उनका अपमान नहीं करता, प्रतिदिन प्रातःकाल में उनको प्रणाम करता है, आज्ञा का पालन करता है, सब प्रकार से माता को आदर व पिता को सम्मान देता है, नम्र होकर रहता है, मधुर वाणी में बोलता है, चोरी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, मांस मदिरादि का सेवन नहीं करता, धर्म पथ से विचलित नहीं होता, दुर्जनों का संग नहीं करता। ऐसा सुयोग्य सुपुत्र दोनों लोकों में सुख एवं सद्गति पाता है। इसका उदाहरण श्रवण कुमार, श्रीराम आदि हैं।

प्रश्न– भ्रातृ धर्म क्या है?

उत्तर– भ्रातृ–धर्म की प्रत्यक्ष मूर्ति देखनी हो तो रामायण में मिलेगी। श्रीराम–भरत का प्रेम ही भ्रातृ–धर्म है। श्रीराम और लक्ष्मण का परस्पर विशुद्ध प्रेम, श्रीराम की लक्ष्मण के प्रति भ्रातृ–वत्सलता और लक्ष्मण की राम के प्रति सेवापरायणता, भरत और राम का परस्पर प्रेम, भरत का त्याग और राम की उदारता देखते ही बनती है। यह है भ्रातृ–प्रेम और भ्रातृ–धर्म। बड़े भाई का कर्तव्य है वह छोटे भाई पर पितातुल्य अनन्य प्रेम रखकर उसकी रक्षा करे, उसको सम्पूर्ण ऐहिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के योग्य बनावे और छोटे भाई का कर्तव्य है वह हमेशा बड़े भाई को पितातुल्य मानकर आदर करे, सेवा करे, आज्ञा का पालन करे और उनके कहे अनुसार विधिपूर्वक श्रौत–स्मार्तादि कर्मानुष्ठान करने में तत्पर रहे– यह भ्रातृ–धर्म है। इसका उदाहरण युधिष्ठिर आदि पाण्डव हैं।

प्रश्न– दाम्पत्य–धर्म क्या है?

उत्तर– पति–पत्नी के धर्म को दाम्पत्य–धर्म कहते हैं। पति–पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं। एक के सुख में दोनों सुखी तथा दुःख में दोनों दुःखी होते हैं। यज्ञ–दानादि धार्मिक तथा सत्संग स्वाध्याय भजन ध्यानादि आध्यात्मिक क्रियाएँ साथ में मिल कर करनी चाहिये। दोनों का आचार व्यवहार खान–पान, रहन–सहन धार्मिक तथा शुभ होना चाहिये दोनों के विचार भी एक जैसे होने चाहिये। पति हमेशा पत्नी को खुश रखे, एक पत्नी–व्रत धारण करे तथा पत्नी को संतुष्ट रखे। धन–वस्त्राभूषण–अन्नादि से गृहिणी को सुसज्जित करे, घर में आवश्यक सब सामग्री उपस्थित करे। यह शिक्षा राम के जीवन में से मिलती है पत्नी का कर्तव्य है कि वह हर दशा में पति के अनुकूल रहे, मधुर भाषण करे, घर को साफ स्वच्छ रखे, बढ़िया स्वादिष्ट भोजन बनावे, अग्नि जिमा कर बलि वैश्वदेव करके, गोग्रास देकर, अतिथि सत्कार के बाद घर के बड़ों तथा आगुन्तक मेहमानों को तथा पतिदेव

को भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। घर की प्रत्येक वस्तु यथास्थान व्यवस्थित रखे। ऐसा होने से दाम्पत्य–धर्म मंगलमय हो जायेगा– स्त्री पुरुष का वाम अंग है, दोनों समान हैं। एक सिक्के के दो बाजू (पहलू) हैं, कोई छोटा बड़ा नहीं है। दोनों संसार–रथ के दो चक्र हैं। स्त्री के स्थान में स्त्री की प्रतिष्ठा तथा पुरुष के स्थान में पुरुष की प्रतिष्ठा है, दोनों प्रतिष्ठित हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री तो पुरुष की दासी है। पुरुष चाहे जैसा व्यवहार करे, स्त्री को सब सहन करना चाहिये। ऐसी अनर्गल बात अशिक्षित तथा मूढ़जन ही करते हैं– यह अधर्म है, पाप है। ऐसा व्यवहार तथा कथन अयोग्य है, त्याज्य है।

शास्त्रों में स्त्रियों के लिए बड़ी पूज्य भावना अभिव्यक्त की गई है। देखिये–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।। (मनु. 2/56)

जहाँ स्त्रियों का सत्कार–मान–प्रतिष्ठा होती है वहाँ ही देवता अपनी सम्पूर्ण ऐश्वर्य शक्ति विभूति एवं दिव्यगुणों के साथ निवास करते हैं और जहाँ उनका सम्मान नहीं होता वहाँ नाना प्रकार की, की गईं सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।

घर घर नहीं है, गुहिणी ही घर कही जाती है। अतः स्त्री दासी नहीं, गृह–लक्ष्मी है, घर की स्वामिनी है। अतः स्त्री का अर्थात् सम्पूर्ण स्त्री जाति का कभी अपमान नहीं करना चाहिए।

प्रश्न– सामाजिक धर्म क्या है?

उत्तर– समाज में स्थित रीति–रिवाज नीति–नियम एवं सामाजिक कार्यों को सामाजिक धर्म कहते हैं।

प्रश्न– समाज कितने प्रकार का है?

उत्तर– समाज के दो भेद हैं– एक आर्य यानी श्रेष्ठ समाज और दूसरा अनार्य अर्थात् पतित समाज। इनमें श्रेष्ठ समाज धर्मशील–सत्यप्रिय एवं पतित समाज धर्मभ्रष्ट है। अत: श्रेष्ठ समाज का कर्तव्य है वह पतित समाज का उत्थान करे। शिक्षा–दीक्षा द्वारा संस्कार सम्पन्न बनावे। उसे धर्म–कर्म में प्रवृत्त करे। वेद की आज्ञा है–

''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' तथा **''अपघ्नन्तु अराब्ण:''** (ऋग्वेद)

हे श्रेष्ठ जनों! सम्पूर्ण विश्व को आर्य–श्रेष्ठ उत्कृष्ठ तथा ईश्वर भक्त बना दो, पतित–दस्यु और कंजूसों का उद्धार करो, उच्चनिष्ठावान् तथा उदार बना दो। इसका अर्थ यह है कि समस्त समाज शुद्ध–संस्कारमय–सभ्य एवं उत्तम समाज बने। असुर–क्रूर तथा कूटिल का नाश हो।

प्रश्न– सामाजिक धर्म में और किसी धर्म का समावेश है क्या?

उत्तर– हाँ है, इसमें सामान्य धर्म के विशेष धर्म का समावेश है।

प्रश्न– यह विशेष धर्म क्या है?

उत्तर– जो धर्म का लक्षण आर्य जाति के सिवाय अन्य जातियों में न हों वह आर्य जाति का विशेष धर्म है– यथा वर्णाश्रम धर्म ही विशेष है।

वर्णाश्रम धर्म

प्रश्न– वर्णाश्रम धर्म क्या है?

उत्तर– आर्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं। ये ही वर्णाश्रम धर्म कहे जाते हैं। ये हिन्दू जाति या सनातन धर्म भी कहे जाते हैं।

शिखा सूत्र

प्रश्न– शिखा क्या है? और उसका महत्व क्या है?

उत्तर– आर्य जाति– वर्णाश्रम धर्म यानी सनातन हिन्दू धर्म का विशिष्ट प्रतीक शिखा है। इसे चोटी कहते हैं, जो हिन्दुत्व का चिह्न है, जो ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर से ऊर्ध्वगति करके सूर्यमार्ग से ब्रह्म प्राप्ति कराने वाली योग शिखा है, जो ज्योति स्वरूप है और ब्रह्मसाक्षात्कार कराने में साधनभूत है। दीपक की ज्योति को भी दीपशिखा कहा जाता है, वह ऊर्ध्वगति करती है। वैसे ही मनुष्य के शिर की शिखा ब्रह्मशिखा कहलाती है। साधकों को साधन काल में शिखा में ग्रन्थि बाँधनी चाहिये– इसे ब्रह्मग्रन्थि कहा जाता है। प्रत्येक देव कार्य, पितृ कार्य तथा मन्त्र जप, ध्यान, पूजा–पाठ आदि शिखा ग्रन्थि बाँधकर ही करने चाहियें। नीचे आसन और ऊपर शिखा साधक को सिद्धि देने वाले माने गये हैं। योगाभ्यास, भजन, ध्यान, जप आदि के समय में साधक के शरीर में एक प्रकार का विद्युत् प्रवाह बहने लगता है, जो योग्य आसन और शिखा न हो, तो वह प्रवाह नीचे जमीन में और ऊपर अन्तरिक्ष में चला जाता है, जिससे साधक निस्तेज एवं शक्ति विहीन हो जाता है, उसे सिद्धि नहीं मिलती, साधन में किया गया श्रम व्यर्थ चला जाता है। अतः कम्बल, कुशा आसन तथा शिखा वे अर्थिंग का काम करते हैं।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन तु।
बिशिखो व्युपवीतिश्च यत्करोति न तत्कृतम्।।

अर्थात् सदा यज्ञोपवीत युक्त रहना चाहिये तथा सदा शिखा बाँधे रखना चाहिये। शिखा रहित तथा यज्ञोपवीत रहित होकर किये गये सत्कर्म निष्फल हो जाते हैं। किये न किये हो जाते हैं। अतः प्रत्येक हिन्दू को शिखा अवश्य रखनी चाहिये। गायत्री या गुरु मन्त्र के द्वारा शिखा में ग्रन्थि बाँधनी चाहिये। भजन, ध्यान में बैठते समय मृगछाला या कुशा आदि का आसन पवित्र तथा सिद्धि को देने वाला माना गया है। इससे साधक का विद्युत् प्रवाह नीचे जमीन में नहीं जा पाता तथा ऊपर शिखा में ग्रन्थि होने से उसकी शक्ति ऊपर जाकर शिखा ग्रन्थि

में से वापस शरीर में आ जाती है, जिससे साधक शक्तिमान हो जाता है और उसमें आत्मसाक्षात्कार की योग्यता आ जाती है। अतः कभी शिखा का त्याग न करें।

शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद्द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः।।

जो मनुष्य मोह से, द्वेष से या अज्ञान से भी शिखा का छेदन करते हैं वे तीन वर्ण वाले द्विज पुनः संस्कार के योग्य होते हैं अर्थात् प्रायश्चित्तपूर्वक उनका पुनः संस्कार कराना चाहिये।

जैसे राष्ट्रध्वज राष्ट्र का प्रतीक माना जाता है। ध्वज का सम्मान या अपमान राष्ट्र का सम्मान–अपमान माना जाता है। ठीक इसी प्रकार शिखा हिन्दू धर्म का प्रतीक है। शिखा का सम्मान अपमान भी हिन्दू धर्म का सम्मान–अपमान है। इसलिये सनातनधर्मी हिन्दुओं को अपने गौरव की रक्षा करनी चाहिये शिखा–सूत्र धारण करके अपनी प्राचीन संस्कृति–सभ्यता तथा मर्यादा की रक्षा करनी चाहिये।

प्रश्न– शिखा का महत्व तो समझ में आ गया अब 'सूत्र' क्या है? समझाइये।

उत्तर– उपवीत–यज्ञोपवीत को ही ''सूत्र'' कहते हैं।

यज्ञाख्यः परमात्मा यः उच्यते चैव होतृभिः।
उपवीतं यतश्चेदं तस्माद्यज्ञोपवीतकम्।।

होम–हवनादि क्रिया करने वाले अथवा आवाहन करने वाले होताओं के द्वारा जिस परमात्मा का यशोगान किया जाता है, वह परमात्मा ही ''**यज्ञ**'' है, वह प्रसिद्ध परमात्मा अपने हृदय में स्थित है, यह सूत्र हृदय को स्पर्श करता है। आत्मा को परमात्मा के पास ले जाता है–इसलिये यह ''**यज्ञोपवीत**'' कहा जाता है, जो अक्षर अविनाशी ब्रह्म है वह व्यापक होने से '**सूत्र**' कहा गया है। अतः सूत्र यानी परमात्मा को धारण करना है इसकी सूचना करने से यह सूत्र है। सूत्र का नाम परमात्मा है इस सूत्र को ज़ो जानता है वह '**विप्र**' वेद का ज्ञाता है।

कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादयः।
तैः संधार्यमिदं सूत्रं क्रियांगं तद्धि वै स्मृतम्।।

ब्राह्मणादि वर्ण जो वैदिक कर्म करने के अधिकारी हैं, उनको यह सूत्र धारण करना है। क्योंकि यह यज्ञ–दान आदि क्रियाओं का अंग है। तात्पर्य यह है कि यज्ञोपवीत सब लोगों (हिन्दुओं) को धारण करने की जरूरत नहीं है केवल द्विजों को ही धारण करके लौकिक तथा वैदिक कर्म करने हैं।

ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणीकृतम्।
रुद्रेण तु कृता ग्रन्थिः सावित्र्याचाभिमंत्रितम्।।

सूत्र को ब्रह्मा जी ने उत्पन्न किया, विष्णु ने त्रिगुणित किया, रुद्र परमात्मा ने ग्रन्थि लगाई तथा सावित्री ने अभिमंत्रित किया।

छाँनवे अंगुल

यज्ञोपवीत बनाने के लिये पहले सूत को छाँनवें बार चार अंगुलियों पर लपेटा जाता है। फिर उसे नौं गुणित करके पुनः त्रिगुणित करके तीन या पाँच ग्रन्थि लगाकर तैयार किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि–

वेद के पद–क्रम–जटा और घन (पाठ) ये चार अंगुलियाँ हैं छाँनवें आँटे ये कर्मकाण्ड के 80 हजार मंत्र तथा उपासना के 16 हजार मंत्र मिलकर छाँनवें हजार मंत्रों का समावेश समझना है। उनके अनुसार सत्कर्म और उपासना करनी है। इसका दूसरा अर्थ ज्योतिष की दृष्टि से है–

तिथिर्वारं च नक्षत्रं तत्त्ववेदगुणान्वितम्।
कालत्रयं च मासाश्च ब्रह्मसूत्रं हि षण्णवम्।।

15 तिथि, 7 वार, 27 नक्षत्र, 25 तत्त्व, 4 वेद, 3 गुण, 3 काल, ओर 12 मास ये मिलकर छाँनवें हैं। इनका समन्वित स्वरूप 96 अंगुल का ब्रह्मसूत्र है। अथवा– ब्राह्मण का गर्भ से 5वें वर्ष में

यज्ञोपवीत होता है मनुष्य की सौ वर्ष की आयु मानी गई है। उसमें से चार वर्ष बीत गये, अब छाँनवें वर्ष जीवित रह कर धर्म–कर्मानुष्ठान करना है। इसलिए छाँनवें आँटा वाले सूत्र को नवगुणित करके उन नव तंतुओं में नव देवताओं का आवाहन स्थापन करके उनकी पूजा करके उसे धारण करना होता है। यज्ञोपवीत के नौ देवता ये हैं–

ओंकारोऽग्निश्च नागश्च सोमः पितृप्रजापतिः।

वायुः सूर्यश्च शर्वश्च तन्तुदेवा अमी नव।।

ओंकार, अग्नि, नाग, सोम, पितृ, प्रजापति, वायु, सूर्य और शर्व ये नव तन्तुओं के नव देवता हैं, जो नौ गुणों के बोधक हैं। सूत्र धारण करने वाले द्विज में इन गुणों का होना आवश्यक है। यहाँ देवों के नाम के अनुसार नौ गुण बताये जाते हैं। (1) ब्रह्मज्ञान (2) प्रकाश (3) अनन्त–धैर्य (4) शान्ति–पारस्परिक प्रेम (5) स्नेह–क्षमा समानता का भाव (6) प्रजा का पालन पोषण करना (7) शुद्धि करण–दीर्घ जीवन (8) बल––ओज–तेज–प्रताप बढ़ाना (9) समस्त देवताओं का निवास– सब दैवी गुणों का विकास करके ज्ञान बढ़ाना।

सूत्र में तीन या पाँच ग्रन्थियाँ होती हैं। ये गोत्र प्रवर के अनुसार होती हैं। जिसके तीन प्रवर हैं उसके उपवीत में तीन ग्रन्थियाँ और पाँच प्रवर वाले के पाँच ग्रन्थियाँ लगती हैं। तीन ग्रन्थियों का तात्पर्य तीन ऋणों को स्वीकार करना है तथा पाँच ग्रन्थियों का तात्पर्य पंच महायज्ञों को स्वीकार करना है। देव, ऋषि एवं पितृ ये तीन ऋण हैं। वेदाध्ययन से ऋषि–ऋण, यज्ञ से देव–ऋण तथा विवाहित पत्नी से संतान उत्पन्न करके पितृ–ऋण से मुक्त हुआ जा सकता है। पंच ग्रन्थियों का तात्पर्य पंच महायज्ञों को करने की प्रतिज्ञा है।

यज्ञोपवीत को वामस्कन्ध पर धारण करने से बल बढ़ता है। देखिये– **वामस्कन्धेन धृतं यज्ञसूत्रं बलप्रदम्।**

वामस्कन्ध पर धारण करके हृदय को स्पर्श कराते हुए यज्ञोपवीत

को दाहिने पार्श्व पर ले जाया जाता है, इसका तात्पर्य है– हृदय में ईश्वर का साक्षात्कार। लघुशंका–शौचादि के समय इस सूत्र को कान पर चढ़ाने का तात्पर्य पवित्रता और नसों की दृढ़ता है। अस्तु इस प्रकार यज्ञोपवीत के बहुत लाभ हैं।

प्रश्न– **वर्तमान में बहुत द्विज यज्ञोपवीत धारण नहीं करते और करते भी हैं तो वे उतार कर रख देते हैं इसका क्या?**

उत्तर– जो द्विज यज्ञसूत्र को धारण नहीं करते अथवा धारण किये हुए को उतार देते हैं, उन्हें बहुत दोष लगता है। वे देव–कार्य तथा पितृ–कार्य के योग्य नहीं रहते। यदि वे देव–पितृ कार्य करते हैं तो उन्हें वे स्वीकार नहीं करते। अतः उन्हें फिर से यज्ञोपवीत करना चाहिये, नहीं तो वे ''**व्रात्य**'' यानी संस्कारहीन शूद्रवत् हो जाते हैं। अतः द्विजों को यज्ञसूत्र अवश्य ही धारण करना चाहिये, उसके नियमों का पालन करना चाहिये और अपने कुल की मर्यादा तथा संस्कारों की रक्षा करनी चाहिये। अपना गोत्र–प्रवर–वेद–शाखा आदि का ज्ञान प्राप्त करके वेद–वेदान्त आदि का अध्ययन करके स्वकर्तव्य पालनपूर्वक अपनी संस्कृति की रक्षा करनी चाहिये।

प्रश्न– **वर्तमान में द्विजों को (साधारण मनुष्यों को) अपने गोत्र का भी पता नहीं होता, कभी किसी पूजा आदि कार्य के लिये किसी कर्मकाण्डी पण्डित को बुलाते हैं, संकल्प में पण्डित जी गोत्र पूछते हैं, तो यजमान 'मैं गोत्र नहीं जानता' ऐसा उत्तर देते हैं? तो इसका उपाय क्या है?**

उत्तर– इसके लिये अपने कुल के बड़े–बूढ़ों से या विद्वानों से पूछना चाहिये। हम यहाँ गोत्र–प्रवर आदि का कोष्टक दे रहे हैं, इससे आपको अपने गोत्र का ज्ञान हो सकेगा–

गोत्र–प्रवर मंजरी

गोत्र	प्रवर नाम तथा संख्या	वेद	शाखा
भार्गव	भृगु, च्यवन, आप्नवान, और्व, जमदग्नि–5	ऋग्वेद	सांख्यायन
भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
गोभिल	गोभिल, असित, देवल–3	सामवेद	कौथमीय
कौशिक	विश्वामित्र, देवल, मौद्गल्य–3	ऋग्वेद	आश्वलायन
वत्सस	वत्सस, च्यवन, आप्नवान और्व, जमदग्नि–5	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
गौतम	गौतम, आंगिरस, शारद्वत–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
मौनस	मौनस, बैतान, सहव्यसावय–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
शांडिल्य	शांडिल्य, असित, देवल–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
अत्रिकौशिक	आत्रेय, आर्यनानस, शावाश्व–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
उपमन्यु	वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, भरद्वसु–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
कुत्स	कौत्स, आंगिरस, मान्धाता–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
वशिष्ठ	वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, भरद्वसु–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
पाराशर	पाराशर, वशिष्ठ, सांकृत्य–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
दाल्भ्य	दाल्भ्य, च्यवन, आप्नवान्, और्व, जमदग्नि–5	सामवेद	कौथमीय
औद्वाहक	वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, भरद्वसु–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय
गर्ग	गर्ग, गार्ग्य, आंगिरस, बार्हस्पत्य, भरद्वाज–5	अथर्ववेद	पिप्पलायनी
कश्यप	कश्यप, वत्सार, नैर्ध्रुव–3	सामवेद	कौथमीय
कृष्णात्री	कृष्ण, अत्रि, उद्दालक–3	ऋग्वेद	आश्वलायन
शौनक	शौनक, शालिहोत्र, गा़र्त्समद–3	यजुर्वेद	माध्यन्दिनीय

ब्राह्मण धर्म

प्रश्न– ब्राह्मण का धर्म क्या है?

उत्तर– वेद–वेदांग–स्मृति एवं धर्मशास्त्रादि का अध्ययन–अध्यापन करना, वैदिक विधि से यज्ञ करना–कराना, दान देना और शुद्ध दान लेना। ये छह कर्म (धर्म) ब्राह्मण के लिये मनुस्मृति में कहे हैं–

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।। (मनु. 1/88)

गीता में निम्न कर्म ब्राह्मणों का स्वाभाविक धर्म कहा है।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। (गीता. 18/42)

अर्थात् मन की शान्ति, इन्द्रियों का दमन, मन–वाणी और शरीर से पाप रहित होना, बाह्याभ्यन्तर की शुद्धि, क्षमाभाव, सौम्यता–सरलता–दयालुता–कोमलता–मधुरता, शास्त्रों का परोक्ष ज्ञान, विवेकज अपरोक्ष विज्ञान युक्त होना और वेदप्रतिपादित ईश्वर में तथा वेद के मूल मंत्रों में आस्तिक्य बुद्धि होना, ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

इतने गुण ब्राह्मण में स्वभाव से होते हैं। इन गुणों से युक्त होना ही ब्राह्मण की ब्रह्मण्यता है। मनुस्मृति में **''ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः''** कहा है। जो ब्रह्म को जानता है– वह ब्राह्मण है। ब्रह्म को जानना ब्राह्मण का विशिष्ट लक्षण है। शास्त्रान्तरों में कहा है–

शून्यं यस्य जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।

साधारण व्यक्ति को जो एकान्त निर्जन स्थान भय–क्लेश आदि का देने वाला हो जाता है वही एकान्त निर्जन स्थान ब्राह्मण को शान्ति– आनन्द–निर्भयता और ब्रह्मसाक्षात्कार देने वाला हो जाता है।

अतः ऐसे एकान्तसेवी वशिष्ठ जैसे महर्षि को ही देवता लोग ब्राह्मण नाम से जानते हैं। जो कभी किसी की निन्दा–स्तुति नहीं

करता, जो प्रयत्न बिना प्राप्त वस्तुओं में ही सदा संतुष्ट रहता है, आत्मानन्द में मस्त रहता है, अध्यात्मचिन्तन परायण है उसे ही ब्राह्मण जानना चाहिए।

प्रश्न– **वर्तमान में तो ऐसे ब्राह्मण देखने को नहीं मिलते। वे सर्विस आदि करके जीवनयापन करते हुए दीखते हैं। वे वेदादि का एवं शास्त्रों का पठन–पाठन तो सामान्य व्यावहारिक काम पूर्ति के लिए करते हैं तो क्या यह ठीक है?**

उत्तर– ठीक तो नहीं है। यह काल का प्रभाव है तथा सभी ब्राह्मण ऐसे नहीं हैं अल्प ब्राह्मण ही नौकरियात हैं। पात्र भेद–व्यक्ति भेद तो रहता ही है। इसमें देश–काल का भेद होना स्वाभविक है। आज ब्राह्मण वेदा–ध्ययन आदि में प्रमादी–आलसी हो गये हैं, उदरपूर्ति के लिये आंग्लभाषा पढ़ने में कुशल हो रहे हैं। इसिलिये आज उनका ब्रह्मतेज तथा शान्ति–क्षमा आदि सद्‌गुण लुप्त हो रहे हैं। परिणामतः ईर्ष्या, क्रूरता, वैषम्यदर्शिता आदि दुर्गुण आ गये हैं। इसी का परिणाम है ब्राह्मण ब्राह्मणत्वहीन होकर दुःख–दरिद्रता आदि से पीड़ित हो रहे हैं। शूद्र उन पर शासन कर रहे हैं। यह ब्राह्मण समाज का पतन है। अतः ब्राह्मणों को सावधान होकर वेदादि सत्–शास्त्रों का अध्ययन करके तदनुसार यज्ञ–दानादि श्रद्धापूर्वक करते हुए अपना ब्राह्मणत्व पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

क्षत्रिय धर्म

प्रश्न– **क्षत्रिय शब्द का अर्थ क्या और उसका धर्म क्या है ?**

उत्तर– **क्षतात्किल–त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।** (रघुवंश)

''**क्षत् हिंसायाम्**'' धातु से '**क्षत्र**' शब्द बनता है। क्षत नाम विनाश का है, विनाश में से जो '**त्राण**' रक्षण करे वह '**क्षत्री**' है उसी का भाव क्षत्रिय है। तात्पर्य यह है कि– जो प्रजा की विघ्न बाधाओं से, दुष्ट दुर्जनों से पापी पाखण्डियों से, चोर–लुटेरों से, रक्षा करता है– वह

क्षत्रिय है और उपर्युक्त प्रकार से रक्षा करना ही क्षत्रियों का परम कर्तव्य या धर्म है यह कर्म क्षत्री शब्द के धात्वर्थ से भुवनों में प्रसिद्ध है । मनुस्मृति में लिखा है–

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।। (मनु)

संक्षेप में प्रजा की रक्षा, दान, यज्ञ करना वेदादि शास्त्रों का अध्ययन तथा विषयों में आसक्ति न करना ये पाँच कर्म क्षत्रियों के लिए निश्चित हैं।

प्रश्न– प्रजा की रक्षा कैसे करें ?

उत्तर– अन्न, धन, वस्त्रादि देकर, जलाशय खुदवाकर, विद्यालय की स्थापना करके विद्या की वृद्धि करके, आर्युवैदिक औषधालय–प्रसूतिगृह–विश्रामस्थान आदि की व्यवस्था करके, कुआँ–बावड़ी, तालाब–देवस्थान–अन्नक्षेत्र, प्याऊ लगवाकर, यज्ञशाला–गौशाला–मल्लशाला आदि बनवाकर जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करके प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। भूखों को अन्न, प्यासों को पानी, वस्त्रहीनों को वस्त्र, रोगियों को औषध, स्थानरहितों को स्थान आदि देकर उनकी रक्षा करनी चाहिए। धूर्त पापपरायण–पाखण्डियों से सज्जनों की रक्षा करनी, व्यभिचारियों से सदाचारियों की रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार प्रजा की रक्षा करना क्षत्रियों का परम धर्म है। दान देने में तत्पर रहना, यज्ञ करना, वेदाध्ययन करना, प्रमाद का त्याग करना, तत्त्वज्ञान सम्पादन कर अध्यात्म परायण होकर सांसारिक विषयों में आसक्ति न रखकर कर्तव्य परायण रहना क्षत्रियों का धर्म है। गीता में कहा है–

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। (गी. 18/43)

शूरवीरता–तेजस्विता (प्रभावशाली होना) धृति (धीरज–गम्भीरता

का भाव) सब कार्यों में अनुभव पूर्ण दक्षता (कुशलता का भाव) और युद्ध में स्थिरता (न भागने का स्वभाव) दान देने में तत्परता तथा स्वामीभाव, निःस्वार्थी भाव से सब का हित विचार कर शास्त्राज्ञानुसार शासन के द्वारा प्रेम सहित पुत्रतुल्य वात्सल्यभाव से प्रजा का पालन करने का भाव, ये सब क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म या धर्म हैं। अतः क्षत्रिय को धर्मात्मा होकर ईश्वर की भक्ति पूर्वक न्याययुक्त होकर प्रजा की रक्षा करने में तत्पर रहना चाहिए। राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है। राजा सम होता है तो प्रजा भी सम होती है तथा राजा पापी होता है तो प्रजा भी पापी होती है तात्पर्य यह है कि राजा के व्यवहार के समान प्रजा का व्यवहार होता है **'यथा राजा तथा प्रजा'** यह कहावत ठीक है कहा भी है कि --

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापा समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा।। (चा. नी.1/38)

प्रश्न– राजा का लक्षण क्या है?

उत्तर– **'रंजयतीति राजा'** जो प्रजा को रंजित आनन्दित करे– वह राजा है **''राजा प्रकृतिरंजनात्''** प्रकृति यानी प्रजा, उसका मनोरंजन करें– आनन्द प्रदान करे वह राजा अर्थात् प्रजा का हित किस में है यह जानकर अनेक धार्मिक तथा आध्यात्मिक कार्यों में तत्पर रहकर सुख समृद्धि का विस्तार करके राष्ट्र की उन्नति करे– वह राजा है।

प्रश्न– राजा का अन्य भी कुछ धर्म होगा न ?

उत्तर– है, **यजेत् राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः।**
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च।।
पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुयुर्वैतानिकानि च।।

(मनु 7/79/78)

राजा का कर्तव्य है कि वह बहुत दक्षिणा वाले या विश्वजित्

नामक अनेक यज्ञ करे, उत्तम विद्वान् ब्राह्मणों को अनन्त भोग्य सामग्री तथा विपुल धन धर्मार्थ दे। शान्ति एवं पौष्टिक कर्म करने वाले पुरोहित को रखे। वरणी में ऋत्विजों का वरण करे। उनके द्वारा गृह्यसूत्रोक्त कर्म तथा अग्निहोत्रादि अनेक करने योग्य शुभ कार्य करे। प्रातःकाल में स्नान, सन्ध्या–अग्निहोत्र, वेदपाठ आदि करे। ब्रह्मविद् ब्राह्मण तथा ब्रह्मसंस्थ संन्यासी तथा अपने से बड़े पुरुषों को प्रणाम करे, नम्रतापूर्वक उनकी सेवा करके, उनसे नीति की बात पूछे, प्रजा के कल्याण की और अपने अभ्युदय की बात पूछे तथा तदनुकूल राम– पृथु–युधिष्ठिर–मनु–रघु आदि की तरह विनम्र होकर धर्म और नीतिपूर्वक राज्यशासन करे।

प्रश्न– राजा को राजदण्ड धारण करने की आवश्यकता है क्या ?

उत्तर– हाँ है, मनुस्मृति में लिखा है कि –

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्मात्मनाम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः।। (मनु 7/15)

पूर्व में प्रजापति ने राजा के लिये सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा करने वाला ब्रह्मतेजोमय धर्मरूप तथा अपने पुत्ररूप दण्ड को उत्पन्न किया, उस दण्ड के भय से सब चराचर प्राणी स्वधर्म का त्याग न करके, सर्व वैभव का उपयोग करते हैं। इसमें देव–दानव–मानव–राक्षस पशु–पक्षी आदि सबका समावेश है। राजा देश, काल, शक्ति और विद्या आदि की परीक्षा करके अन्याय से वर्तने वाले मनुष्यों पर उनके अपराध के अनुकूल दण्ड का उपयोग करे।

भिन्न–2 खातों में भिन्न–2 अधिकारियों की नियुक्ति करके राज चलावे। अमात्य और न्यायाधीश के स्थान पर ब्राह्मणों की, सेनाध्यक्ष पद पर क्षत्रियों की तथा कर वसूलने, जकात, राज्यखर्च, वैद्यक–हिसाब–किताब के स्थानों पर वैश्यों की नियुक्ति तथा सेवा आदि के कार्यों पर शूद्रों की नियुक्ति करे। साम–दाम–दण्ड एवं विभेद इन चारों प्रकार की नीतियों का यथायोग्य उपयोग करके प्रजा

के हित का ध्यान रखकर राज करे।

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते।। (मनु 7/144)

प्रजा का पालन करना यही क्षत्रिय का परम धर्म है। जो राजा शास्त्रनिर्दिष्ट कर लेकर प्रजा का हित करता है, वह धर्म से संयुक्त होकर अनन्त सुखों को प्राप्त करता है।

प्रश्न– वर्तमान में तो न कोई ऐसा राजा है और न क्षत्रिय ही है। इसका क्या?

उत्तर– देश–काल–पात्र भेद से क्षत्रियों का क्षात्र धर्म नष्ट या लुप्त हो गया है। ब्राह्मण–जगें तो क्षत्रिय भी जग सकते हैं। आज तो सर्वत्र अराजकता का ताण्डव–नृत्य हो रहा है। अनाचार–अत्याचार का बोलबाला है। हिंसा–अपहरण–लूट–मार की परम्परा निरन्तर चल रही है, यह देश का दुर्भाग्य है।

वैश्य धर्म

प्रश्न– वैश्य का धर्म क्या है?

उत्तर– **पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।**
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।। (मनु. 1/90)

गौ आदि पशुओं का पालन करना, दान–यज्ञ और वेदाध्ययन करना, व्यापार ब्याज आदि का लेन–देन करना, खेती करना यह वैश्यों के लिये निर्दिष्ट कर्म हैं। यही वैश्यों का धर्म है गीता में भी वैश्यधर्म का निम्न प्रकार से निरूपण है–

कृषि गोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्। (गीता 18/44)

कृषि अर्थात् खेती करना, **''गौरक्ष्य''** गो की रक्षा, यहां **'गौ'** शब्द गाय–घोड़ा–हाथी–ऊँट–भेड़–बकरी आदि ग्राम्य पशुमात्र का उपलक्षण है। अतः पशुमात्र का पालन करना, गोसंवर्धन करना, **''वाणिज्य''** व्यापार वणिक् कर्म–क्रय–विक्रय आदि करना।

देश–देशान्तरों में जाकर वहाँ की वस्तु यहाँ लाना यहाँ की वहाँ ले जाना, स्वयं धनवान बनना तथा राष्ट्र की समृद्धि को बढ़ाना यह वैश्यों का स्वाभाविक धर्म है। वैश्यों को चाहिए कि वह छल–कपट का त्याग करे। क्रोध–लोभ के त्यागपूर्वक सब के साथ निर्भयता के सहित न्याय नीति युक्त सरलता– नम्रता, मधुरता का व्यवहार करें। सबका हित करें। स्वयं दोनों समय सन्ध्या वन्दन–अग्निहोत्र, वेदाध्ययन करें, गुरुजनों की सेवा करें उनका आशीर्वाद लें। सत्य धर्मपूर्वक अपना निर्दिष्ट कर्म यथावत् करते रहें। ऐसा करने से वैश्य को अक्षय फल की प्राप्ति होती है। वैश्य को कभी मन में पशुपालन से उकताना नहीं चाहिये। साथ ही मणि, मोती, परवाल–लोह–शण–ऊन, रेशम कपूर–कस्तूरी–केसर– घी–गुड़–नमक तथा सब प्रकार के अनाज आदि के बढ़ते घटते भावों को ध्यान में रखें। खेती के लिये सब प्रकार के बीजों को बोने की विधि तथा भूमि के गुण दोष भी जान लें साथ ही श्रेष्ठ और हलके माल की परीक्षा के साथ यह ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है कि अमुक माल की अमुक प्रान्त में–प्रदेश में अमुक कीमत है। इस प्रकार लाभालाभ का विचार करके व्यापार करें। अपने धन की वृद्धि करें, उससे धर्मकार्य करें और सब प्राणियों के लिए यथायोग्य अन्न, वस्त्र आदि दें, यह वैश्यों का परम श्रेष्ठ धर्म है।

शूद्र धर्म

प्रश्न– शूद्र का क्या धर्म है ?

उत्तर– **एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।**

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।। (मनु. 1/91)

शूद्र के लिए ब्रह्मा जी ने एक ही कर्म–धर्म निर्माण किया है और वह है– ब्राह्मण आदि उपर्युक्त तीनों वर्णों की ईर्ष्या छोड़ कर सेवा करना। गीता में यही बात कही है यथा –

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्। (गीता 18/44)

सेवा करना ही जिसका स्वभाव है, ऐसा यह शूद्र का एक ही स्वाभाविक कर्म यानी धर्म है। अतः शूद्र को निष्कपट होकर सबकी सेवा करनी चाहिए तथा अन्य वर्ण वाले शूद्र को अन्न वस्त्र आदि देकर सम्मानपूर्वक संतुष्ट करें ।

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून्।
ब्राह्मणाय च राज्ञो च सर्वाः परिददे प्रजाः।। (मनु 9/327)

प्रजापति ने गाय–भैंस–घोड़ा आदि पशुओं को उत्पन्न करके वैश्यों को दे दिये और सम्पूर्ण प्रजा को उत्पन्न करके ब्राह्मणों और क्षत्रियों को सौंप दिया। अब रहे शूद्र, उनको द्विजातियों की सेवा के लिए उनको सौंप दिया। अतः धर्माचरण करके यशोलब्ध वेदपारगामी ब्राह्मणादि की सेवा करना यह शूद्रों का परमकल्याणकारी धर्म है। इस प्रकार निर्दिष्ट अपने–2 कर्मो का यथावत् अनुष्ठान पालन करने से सबका हित होगा, सिद्धि प्राप्त होगी, सब सुखी एवं समृद्ध होंगे।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। (गीता 18/45)

ब्राह्मणादि जाति मानना अनावश्यक है?

प्रश्न– **वर्तमान में ब्राह्मणादि जातियों की कोई जरूरत नहीं है। केवल एक मनुष्य जाति होनी चाहिए। आज अपने देश में बड़े–2 राजद्वारी पुरुष नेता लोग इस जाति प्रथा का निषेध करते हैं और कहते हैं कि मनुष्यमात्र में केवल दो ही जाति हैं एक पुरूष तथा दूसरी स्त्री जाति, तो क्या यह ठीक है?**

उत्तर– श्रुति–स्मृति–युक्ति एवं अनुभूति इन प्रमाणों को ताक पर रखकर इनका गला घोंटकर मनमाने ढंग से जातिवाद का खण्डन करके असंख्य नई जातियों का अस्तित्व प्रकट करके नेताओं नें धर्म–सभ्यता–शालीनता–संस्कार एवं संस्कृति पर कुठाराघात किया है। जिन जातियों का किसी प्राचीन ग्रन्थ में कोई जिक्र नहीं है ऐसी असंख्य जातियाँ मनमाने ढंग से बताई जाती हैं और शास्त्र प्रमाणित जातियों का

निषेध किया जाता है, यह केवल स्वार्थ परायणता से भिन्न और कुछ नहीं है। यहाँ अथवा परलोक में ऐसे नेताओं को अपने अनाचार व भ्रष्टाचार का फल भोगना ही पड़ेगा। आज देश में किसी की कोई मान–मर्यादा नहीं रही, परस्पर में विरोध– ईर्ष्या आदि बढ़ रहे हैं, सब दुःखी हैं जाति मर्यादा गई तो अपने पूर्वज ऋषि मुनियों की आर्य संस्कृति का ह्रास हो गया । यह तो विप्लव की स्थिति है इस पर रोक लगनी चाहिए। ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि के आदि में परमात्मा से उत्पत्ति हुई है ऐसा वेदादि शास्त्रों का मन्तव्य है देखिये –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रोऽअजायत।। (शु. यजु. 31/11)

प्रजापति के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए। कृष्ण यर्जुवेद के सप्तम काण्ड में इसी प्रकार का वर्णन है।

''स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत'' तथा **''तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत।''** इन श्रुतियों के प्रमाण से ब्राह्मणादि जातियाँ भिन्न–2 माननी योग्य है। गीता में भी कहा है –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता 4/13)

अर्थात् गुण कर्म विभाग से चारों वर्णों की उत्पत्ति मेरे से हुई है तथा मनुस्मृति में कहा है–

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखवाहुरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्।। (मनु0 1/31)

प्रजापति ने प्रजा की वृद्धि के लिए मुख–बाहु–उरु तथा चरणों से क्रमशः ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य तथा शूद्रों को उत्पन्न किया। इन प्रमाणों से भी जाति भेद मानना उचित है। जो नियम सनातन और अनादि हैं उनका उच्छेद नहीं हो सकता कुछ कृत्रिमता या संकरता आ सकती है, मूल का नाश होना संभव नहीं है, जो इस व्यवस्था को नष्ट

करना चाहते हैं वे भ्रम में हैं, विपरीत मार्ग में हैं, पाप करते हैं।

प्रश्न– **तो क्या मुख–बाहु आदि से भी मनुष्यों की उत्पत्ति संभव है?**

उत्तर– उपर्युक्त श्रुति–स्मृतियों में जो मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति बताई है यह आलंकारिक है।

प्रश्न– **इस आलंकारिक भाषा का क्या तात्पर्य है?**

उत्तर– इसका भाव यह है कि कार्य कारण रूप माया विराट्रूप ईश्वर का शरीर है इस माया के सत्व–रज एवं तम ये तीन गुण हैं ये ही विराट् पुरूष के मुख आदि अवयव हैं । माया के गुणों की शुद्धि–अशुद्धि आदि से इन गुणों में तारतम्य होता है इसी से मुखादि की प्रधानता और अप्रधानता आदि संज्ञा दी गई है। जो अदृष्ट या संगति के प्रताप से सात्विकी–राजसी– तामसी हो जाता है। माया रूप उपाधि के कारण मायोपहित चेतन ईश्वर में सर्वज्ञत्व आदि धर्म होने से ईश्वर के मुखादि अवयवों से ब्राह्मणादि वर्ण रूप जगत् की उत्पत्ति बताई है, जो आलंकारिक भाषा हैं इसी को गुण–विभाग और कर्म–विभाग कहा है। इसका स्पस्टीकरण गीता में आदि शंकराचार्य ने किया है–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण–कर्म–विभागशः। (गीता– 4/13)

चातुर्वर्ण यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण गुण विभाग तथा कर्म विभाग से मैंने उत्पन्न किये हैं। गुण यानी सत्त्व–रज और तम हैं। वर्णों में सात्विक अर्थात् सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मण में शम–दम–तप आदि कर्म हैं सत्वमिश्रित रजो गुण प्रधान क्षत्रिय के शौर्य तेज आदि कर्म हैं। तमोगुण मिश्रित रजो गुण प्रधान वैश्य के कृषि पशुपालन–व्यापार आदि कर्म हैं तथा रजोगुण मिश्रित तमोगुण प्रधान शूद्र का सेवा ही धर्म है (शांकर भाष्य का अनुवाद) इस प्रकार गुण कर्म विभाग से चतुर्वणों की उत्पत्ति सृष्टि के आदि में परमात्मा से हुई है। यह बात सिद्ध हो गई। जैसे एक शरीर में मुख्य चार अंग हैं वैसे सम्पूर्ण मानव समाज में चार अंगो की कल्पना है। शरीर में मुख्य अंग

मुख है वैसे समाजरूपी शरीर में विद्या–विज्ञान आदि में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं– इससे श्रेष्ठ मुख की उपमा ब्राह्मण को दी गई है। ब्राह्मण अध्यात्म प्रिय ज्ञान–विज्ञान प्रधान है तथा मुख भी तेजस्वी तथा शरीर में सब अंगों से श्रेष्ठ है इसलिए दोनों की समानता होने से ब्राह्मण समाजरूपी शरीर का मुख्य है, मुख स्थानीय है। क्षत्रिय बल प्रधान होता है, वह समाजरूपी शरीर की भुजारूप है। जैसे भुजा शरीर की रक्षा करती है वैसे क्षत्रिय सम्पूर्ण समाज– शरीर की रक्षा करता है। अतः क्षत्रिय विराट् पुरूष के बाहु के समान हुए। इसी प्रकार उरु प्रदेश से विशेष कार्य सम्पादन हो सकता है इसलिए व्यापार कृषि प्रधान वैश्य परमात्मा के उरु के समान हैं। कृषि प्रधान वैश्य ही सम्पूर्ण समाज रूपी शरीर का पोषण करता है शिर–भुजा तथा उरुंओं सहित सम्पूर्ण शरीर का भार उठा रखना यह चरणों का काम है। इसी प्रकार समाज रूपी शरीर को उठाना यानी उन्नति कराना चरणों के समान शूद्र वर्ण का है। इसलिए इनकी उत्पत्ति चरणों से यानी चरणों के समान हुई है– ऐसा समझना चाहिए।

जाति–जन्म से या गुण कर्म से?

प्रश्न– जाति जन्म से मानें या गुण कर्म से ?

उत्तर– यह विषय बहुत विवादास्पद है। कुछ आचार्य जन्म से जाति तथा कुछ आचार्य गुण कर्म स्वभाव से जाति मानते हैं। ऐसे दोनों प्रकार से जाति मानी जाती है।

प्रश्न– इस विषय में किस आचार्य का क्या मत है समझावें।

उत्तर– सनातन धर्मावविलम्बी शैव वैष्णवादि तथा स्मृतिकार –भगवान् मनु–व्यास वशिष्ठ–याज्ञवल्क्य–अत्रि–विष्णु–हारित–औशनसि–आंगिरस–कात्यायन–वृहस्पति–पाराशर– शंख–लिखित–दक्ष और गौतम आदि सब स्मृतियों में ब्राह्मणादि जातियों को जन्म से ही माना है तथा उनके जातकर्म, संस्कार, शिक्षा–दीक्षा–आचार–व्यवहार जीविका–उपजीविका के

साधन प्रायश्चित्त–दण्ड–इष्टापूर्त यानी श्रौत–स्मार्त कर्म का विस्तार से वर्णन किया है। इन ऋषियों के अनुयायी भी जाति जन्म से ही मानते हैं।

प्रश्न– गुण कर्म–स्वभाव से जाति मानने वाले आचार्य कौन–2 हैं? कृपया समझाइये।

उत्तर– महर्षि दयानन्द सरस्वती जी गुण कर्म – स्वभाव से जाति व्यवस्था मानते हैं। उनका अनुयायी आर्य समाज भी तदनुकूल ही वर्तता है। उनके मत में मिथ्या स्पर्शास्पर्श आडम्बर नहीं माना है। मनुष्य मात्र उत्तम कर्म करके, वेदादि विद्याओं का स्वाध्याय, सत्यभाषण आदि करके, सद्गुणों को अपना कर सन्ध्या–वन्दन यज्ञ यागादि शुभ कर्म करके ब्राह्मण हो सकता है तथा प्रशस्तकर्महीन सत्यभाषणादि गुण रहित मनुष्य उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर भी वह ब्राह्मण नहीं रह सकता उनके मत के अनुसार उसके जैसे गुण–कर्म हों, उनके अनुसार उसकी जाति का निर्णय होना चाहिए। और गुण कर्म स्वभाव के अनुसार जाति माननी चाहिए। स्वतंत्र सुधारक एवं विचारक भी इसी प्रकार जाति मानने के पक्ष में हैं।

वैष्णवों में स्वामी रामानन्दजी भी बड़े उदार थे। उदात्त विचारों से उन्होंने जाति–पाँति के भेद को स्थान नहीं दिया है। उन्होंने दृढता के साथ शुद्धि का कार्य किया। उन्होंनें जाट–शूद्र–चमार–जुलाहा–मुसलमान और स्त्रियों आदि को भी अपने शिष्य मण्डल में सम्मिलित किया था। इनके प्रभाव से हिन्दु तथा मुसलमानों में परस्पर संगठन एवं स्नेह का वातावरण हो गया था। परन्तु उनके बाद में उनके अनुयायियों में इतनी उदारता नहीं रही। जाति–पाँति के विषय में संकुचितता आ गयी भगवद्भक्ति तो सब कर सकते हैं, परन्तु समाज में जन्म से जाति मानने वाली प्रथा यथास्थित रही है। कबीर साहब तथा गुरु नानक भी सुधारक विचार के थे। उन्होंने भी संगठन करके जाति–पाँति के भेदों को मिटा कर शुद्धि का पक्ष लिया था। दादूदयालजी

भी उन्हीं की कोटि में आते हैं स्वामी श्रद्धानन्द जी ने तो पंजाब में गाँवों के गाँव शुद्ध करके आर्य धर्म का प्रचार किया था, वे बड़े उदार स्वभाव के थे। ब्राह्म समाज के आदि प्रवर्तक राजा राम मोहन राय ने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। निष्कर्ष में उन्होंने जाति-पाँति को हटाया, मूर्तिपूजा-बहुदेववाद-अवतारवाद आदि सिद्धान्तों का खण्डन किया तथा उपनिषदों में जो एक ब्रह्म की उपासना का वर्णन है उसको प्रधानता दी और ब्राह्मसमाज की स्थापना की। इस समाज ने वर्णाश्रम व्यवस्था- स्पर्शास्पर्श जाति भेद आदि को तिलाञ्जलि दे दी। और जप-तप-व्रत होम-उपवास आदि करने की कोई आवश्यकता भी नहीं मानी। श्राद्ध, प्रेतादि कर्मों को अमान्य किया। इस समाज के सभ्य (सदस्य) प्रत्येक धर्म के लोग हो सकते हैं। इतना होते हुए भी इस समाज ने हिन्दु संस्कृति की रक्षा के लिए उपनिषदों और वेदों के स्वाध्याय को मान्य रखा तथा शिखा-सूत्र को कायम रखकर आर्य संस्कारों को सुरक्षित रखने का गौरव प्राप्त किया- यह इनकी विशेषता है। सन्तमत या राधास्वामी पंथ भी जाति-पाँति को नहीं मानता **'थीओसोफिकल सोसायटी'** भी उदात्त एवं स्वतंत्र विचार तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना से आप्लावित है। यह संस्था भी सम्प्रदाय-वर्ण जाति-धर्म-वर्ग आदि भेद को नहीं मानती, तो भी इसमें आन्तरिक शक्तियों के अनुसंधान के लिए जप-तप-व्रत तथा गुरु के सान्निध्य में रहकर योग-साधना आदि मान्य हैं, जो भारतीय आर्य संस्कृति की रक्षा का एक अंग है। इस सोसायटी में आस्तिक नास्तिक सबका समन्वय है। किसी भी धर्म से विरोध इष्ट नहीं माना है।

इस प्रकार यहाँ जन्म से जाति तथा गुण कर्म स्वभाव से जाति विषयक थोड़े सिद्धान्त दर्शाये हैं।

प्रश्न- **मनु आदि स्मृतिकारों ने तथा सनातन धर्मावलम्बी आचार्यों ने जन्म से जाति क्यों मानी है ?**

उत्तर- जन्म से जाति मानने का तात्पर्य-समाज की व्यवस्था में अव्यवस्था न

हो जाय, इसीलिए वर्णों की संख्या भी चार ही रखी है। देखिये–

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः।। (मनु 10/8)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण द्विजातीय हैं चौथा शूद्र जाति का एक वर्ण है। इसके अतिरिक्त पाँचवाँ कोई वर्ण नही है।

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीश्चाक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते।। (मनु 10/9)

ब्राह्मणादि सब वर्णो में अपनी–2 समान जाति की अक्षत योनिवाली पत्नियों से क्रमशः जो पुत्र उत्पन्न हों उन पुत्रों को उसी जाति के जानना चाहिए। यह मनु–याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों का मत है। अनुलोम प्रतिलोम भेद से बहुत सी जातियाँ उत्पन्न होती है। ये सब वर्ण भेद या माता पिता की हीन जाति या उच्च जाति होने से उनमें से तदनुकूल हीन या उच्च जाति उत्पन्न होती है। **ये वर्णसंकर जातियाँ है।**

प्रश्न– अनुलोम और प्रतिलोम का क्या अर्थ है ?

उत्तर– ब्राह्मणआदि उच्च वर्ण का पुरुष जो अपने से हीन क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न करे तो वह अनुलोम तथा नीच जाति का पुरुष अपने से उत्तम वैश्य क्षत्रिय या ब्राह्मण आदि स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न करे तो वह प्रतिलोम प्रजा कहलाती है। ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णों की संकरता से सूत–मागध–निषाद–वैदेह, चाण्डाल आदि जातियाँ उत्पन्न हुई हैं– वे संस्कारहीन होने से उत्तम वर्ण के साथ मिलने से उत्तम वर्ण में भी उनके दोष आने की संभावना रहती है। इसलिये सदाचार की रक्षा के लिये और मानव जाति के उत्कर्ष अभ्युदय और निःश्रेयस् के लिये जन्म से जाति मानकर ब्राह्मण आदि के बालकों को सुन्दर शिक्षा देकर संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए। अनुलोम प्रतिलोम पुत्रोत्पत्ति न करके जन्म से ही जाति वाली वर्णव्यवस्था की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न– जन्म से जाति तथा गुण कर्म स्वभाव से जाति के विषय में आपका क्या मत है?

उत्तर– मैं अपने पूर्वज ऋषि–मुनियों के एवं स्मृतिकार महर्षियों के जन्म से जाति के विषय में जो सुन्दर पवित्र सिद्धान्त है उसी को मानता हूँ।

''महाजनो येन गतः स पन्थाः।''

आज के भौतिक विज्ञान के युग में यह बात अधिक विचारणीय है। इसलिये मैं अपना विचार अनेक शास्त्रों के मत के अनुसार तथा सृष्टि के नियमों का अनुसरण करता हुआ रखता हूँ। सम्पूर्ण संसार में मानव समाज चार कोटि में विभक्त हुआ प्रतीत होता है। एक ज्ञान प्रधान बुद्धिजीवी, दूसरा बलप्रधान बुद्धिजीवी, तीसरा उद्योग प्रधान बुद्धिजीवी और चौथा श्रम प्रधान बुद्धिजीवी । इन चारों को ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र कह सकते हैं।

संसार में चार रंग के मनुष्य देखने में आते हैं भारत–ईरान अधिकांश यूरोप–अमेरिका आदि के मनुष्य गौरवर्ण प्रधान हैं। प्राचीन अमेरिकन लाल वर्ण के, चीन–जापान आदि देशों की जनता पीले वर्ण की तथा अफ्रीका आदि के हबसी लोग काले वर्ण के देखने को मिलते हैं। इन प्रत्येक जातियों में कम–ज्यादा प्रमाण में रंग देखा जाता है।

अतः भारत में भी चारों रंग के मनुष्य दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम वर्ण ज्ञान प्रधान बुद्धिजीवी का है उसका वर्ण गौरवर्ण है। गौर वर्ण वह अग्नि का चिह्न है तथा अग्नितत्व के साथ ब्राह्मणों की समानता करने पर जैसे अग्नि में तेजस्विता है, ऐसे ब्राह्मण भी आत्मतेज तथा ज्ञान सम्पन्न ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पन्न प्रकाशमान होते हैं। ज्ञान का स्वरूप श्वेत माना गया है जो ज्ञान सृष्टि के आदि में विधाता ने सामवेद से उत्पन्न ब्राह्मणों को प्रदान किया इससे समाज की शिक्षा का कार्य ब्राह्मण अच्छी प्रकार से कर सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

उदाहरण के लिए अपने प्राचीन महर्षि वशिष्ठ याज्ञवल्क्य आदि लिये जा सकते हैं।

दूसरा वर्ण बल प्रधान बुद्धिजीवी का है, जिसकी उत्पत्ति यजुर्वेद से हुई है यह वर्ण लाल है इसमें शौर्य वीर्य धैर्य क्षमा आदि अनेक दिव्यगुण विद्यमान हैं। यह वर्ण तेजस्वी विवेकशील और नम्रता आदि सद्गुणों से सम्पन्न है। समाज की शिक्षा का काम तो ऊपर के वर्ण ने ले लिया, परन्तु रक्षा के बिना समाज सुरक्षित नहीं रह सकता तथा सुख शान्ति नहीं रह सकती, इसलिये इस वर्ण ने बड़ी दक्षता से रक्षा का कार्य उठा लिया। इस वर्ण ने प्रजा में से अत्याचार दूर किया, तप ब्रह्मचर्य सत्य और धर्म की प्रतिष्ठा की। इसलिये यह वर्ण क्षत्रिय के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसमें प्राचीन राजा मान्धाता, राम, युधिष्ठिर आदि क्षत्रियों का उदाहरण लिया जा सकता है।

तीसरा उद्योग प्रधान बुद्धिजीवी वर्ण है। इसकी उत्पत्ति ऋग्वेद से है, इसका रंग पीला है। इसने देखा कि प्रजा को शिक्षक तथा रक्षक तो मिल गये परन्तु अन्न के बिना प्रजा की वृद्धि नहीं हो सकती, इसलिये इस वर्ण ने कृषि–पशुपालन–व्यापार आदि मानव जीवन की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करके प्रजा को दिया, उनकी पूर्ति की, इससे समाज वृद्धिंगत हुआ। इस वर्ण का नाम वैश्य पड़ा इसमें किसान–व्यापारी–गोपाल–कारीगर–बुणकर आदि का समावेश हुआ। इस कृषक समाज ने बहुत बड़ी जबाबदारी का काम उठा लिया। इससे समाज की बड़ी उन्नति हुई।

इस प्रकार समाज को शिक्षक, रक्षक एवं कृषक तो मिल गये, परन्तु शारीरिक श्रम करे ऐसे एक समाज की आवश्यकता हुई। इसकी पूर्ति के लिये काले वर्ण का एक समुदाय उपस्थित हुआ, जो सहनशील, ठण्डी, गरमी की परवाह न करने वाला परिश्रम के सब काम करने में कुशल और बलवान था, वह सामने आया और उसने

उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा का कार्य उठा लिया यह वर्ण शूद्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार मानव समाज में शिक्षक–रक्षक–कृषक और सेवक समाज की स्थापना हुई। इन्हें ही आगे चलकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहने लगे। इन चारों से समाज की सब आवश्यकताएँ पूर्ण हो गई। समृद्धि वृद्धि के साथ सर्वत्र सुख एवं शान्ति का विस्तार हुआ।

उपर्युक्त विचार से वर्णों की उत्पत्ति गुण कर्मों से हुई। लम्बें काल तक यह व्यवस्था चलने के बाद रूढ़ हो गई, जो पहले गुणकर्म से जाति मानी गई थी, बाद में उस जाति में जन्म लेने वाले उसी जाति के माने जाने लगे। इस प्रकार जन्म से जाति और गुण कर्म से जाति दोनों प्रकार से जाति मानी जाने लगी, जो आज तक ऐसे ही मानते हैं।

सृष्टि चक्र को देखने से पता चलता है कि वर्ण विभाग तो सचराचर सृष्टि में सर्वत्र है। देव योनि में, वनस्पतियों में तथा खनिजों में भी वर्ण विभाग देखने को मिलता है। इसलिये मानव समाज में भी वर्ण विभाग का होना स्वाभाविक है। ऐसा कोई प्राणी पदार्थ या समुदाय नहीं है, जिसमें ऊँच नीच का भाव या अर्थ अनर्थ का भाव न हो। अतः गुणों की श्रेष्ठता या हीनता के कारण समाज में यह सब होना स्वाभाविक है।

उपसंहार में इतना ही समझना है कि बुद्धि विज्ञान युक्त तेजस्विता और ओजस्विता से दूरदर्शिता से काम लेने वाले समाज में जो व्यक्ति हों– वही ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं। विपुलबल सम्पन्न वीरता युक्त धर्माधर्म का विचार करके सबके हित साधन में जो तत्पर हों– वही क्षत्रिय कहलाने के योग्य हैं, नम्रता, दयालुता, धन, द्रव्य आदि पदार्थ दान पूर्वक परोपकार युक्त पशुपालन तत्पर, सहनशीलता के

साथ गम्भीर स्थिर बुद्धि वाले उद्योगजीवी, व्यापार कुशल जो व्यक्ति हों उन्हें वैश्य कहना चाहिए तथा जो सेवापरायण, दोष दृष्टि रहित सबके हित में सहायक और सेवक हों जिनको मान–अपमान समान हो तथा जो सरल–मधुर–सत्यभाषी हों वे व्यक्ति शूद्र कहें जाँय।

इस प्रकार सम्पूर्ण संसार में मानव जाति के बृहद् चार विभाग हो गये। इन चारों की आवश्यकता है। इनमें से यदि कोई एक न हो तो काम नहीं चलेगा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो मनुष्य जिस गुण कर्म स्वभाव का होगा उससे वही काम दक्षता से हो सकेगा, अन्य से वह कार्य होना संभव नहीं है। जैसे इन्द्रियों में देखने का काम नेत्र से ही होता है अन्य इन्द्रियों से नहीं। इसलिए ब्राह्मणादि वर्ण अपना–2 कार्य नियमित करें, तो सब व्यवहार ठीक से चलता रहेगा। आशय यह है कि ब्राह्मणादि चारों वर्ण संगठित होकर पारस्परिक प्रेम बढ़ाकर एक दूसरे के सहायक होकर मानव समाज की उन्नति देश की समृद्धि और धर्म की रक्षा करते हुए संसार का अभ्युदय और निःश्रेयस् सिद्ध करें।

विद्वान् इस पर अधिक विचार करें।

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीपान्तर्गत तृतीय किरण समाप्त।।

ॐ शिवः सर्वं सर्वत्र

प्रश्नोत्तर प्रदीप

चतुर्थ किरण

आश्रम धर्म

ब्रह्मचर्य आश्रम

प्रश्न– आश्रम कितने हैं ?

उत्तर– आश्रम चार हैं – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

प्रश्न– ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ क्या है तथा इस आश्रम का महत्त्व क्या है?

उत्तर– ब्रह्मचर्य शब्द 'ब्रह्म' और 'चर्य' इन दो शब्दों से बना है। ब्रह्म शब्द परमात्मा–प्रकृति, जीवात्मा–सूर्य, सविता, जल, वायु, प्राण, वीर्य, अन्न, मन, यज्ञ, वेद आदि अनेक तत्त्वों का वाचक है और चर्य अर्थात् आचरण इस प्रकार ब्रह्मचर्य शब्द के अनेक अर्थ होते हैं यहाँ तीन अर्थ अभीष्ट हैं– परमेश्वर, वीर्य और वेद।

ब्रह्मपरा–ब्रह्मनिष्ठाः परंब्रह्मान्वेषमाणा........
ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः (प्रश्नो. 1/1)

अर्थात् वेदपरायण अपर–ब्रह्म में श्रद्धा रखने वाले, पर–ब्रह्म परमात्मा के अन्वेषण में तत्पर ऐसे सुकेशा आदि छः ऋषि हाथ में समिधा लेकर भगवान् पिप्पलाद के पास गये। यहाँ प्रथम ब्रह्म शब्द वेद का बोधक है, दूसरा ब्रह्म शब्द अपर–ब्रह्म का तथा तीसरा पर–ब्रह्म शब्द निर्गुण ब्रह्म का वाचक है। इनमें सर्व प्रथम वीर्य रक्षणरूप ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझकर बाद में वेद और परमेश्वर को समझना चाहिए।

प्रश्न– वीर्य रक्षणरूप ब्रह्मचर्य का क्या लाभ है ?

उत्तर– **ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।** (योगदर्शन 2/38)

ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति होने पर वीर्य लाभ यानी सामर्थ्य का लाभ होता है तथा वीर्य का ऊर्ध्वाकर्षण होता है। वेद में कहा है–

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। (अथर्ववेद)

ब्रह्मचर्य ओर तप के प्रभाव से देवताओं ने मृत्यु पर विजय लाभ किया। महाभारत में एक प्रसंग है उसमें एक गन्धर्व अर्जुन से युद्ध में परास्त होकर कहता है–

ब्रह्मचर्यं परोधर्मः स चापि नियतस्त्वयि।
यस्मात्तस्मादहं पार्थ ! रणेऽस्मिन्विजितस्त्वया।।

हे पार्थ ! यह ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट धर्म है और यह तुममें नियम से विद्यमान है इसी के प्रताप से तुमने मुझे परास्त किया है। इससे ''**वीर्यरक्षणं ब्रह्मचर्यम्**'' यह सिद्ध है कि वीर्य रक्षा ही ब्रह्मचर्य है। कहा भी है–

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।
तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्।। (शिव संहिता)

बिन्दुपात ही मृत्यु है और बिन्दु का धारण करना ही जीवन है। अतएव अतिप्रयत्नपूर्वक वीर्य बिन्दु धारण करना चाहिये। भगवान् शिवजी वीर्य धारण रूप ब्रह्मचर्य के प्रताप से इतने प्रभावशाली हुए कि हलाहल विषपान करके भी स्वस्थ रहे, अजर अमर हो गये।

अखण्ड ब्रह्मचारी भीष्मपितामह की प्रौढ़ कीर्ति ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही है। बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले लक्ष्मण में अद्भुत शक्ति थी, जिसके प्रभाव से उन्होंने इन्द्रजीत जैसे प्रतापी योद्धा को धराशायी कर दिया था। अखण्ड बालब्रह्मचारी हनुमान् जी ने समुद्र लंघन किया था– यह ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव था। भगवान् शिव ब्रह्मचर्य का सामर्थ्य दर्शाते हुए स्वयं कहते हैं कि –

सिद्धे बिन्दौ महारत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले।
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशोऽभवत्।। (शिव संहिता)

जिसके प्रताप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मेरी महिमा फैलायी है वह वीर्यबिन्दु है। इसके धारण करने से जगत् में ऐसा कौन सा कार्य है जो सिद्ध न हो सके। अर्थात् सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं। अतः जितेन्द्रिय होकर वीर्य रक्षा के साथ सत्य, धर्म का पालन करते हुए मनुष्य सुखी एवं समृद्ध होकर यशःपूर्ण स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। अतः वीर्य रक्षा करना यह प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य है ब्रह्मचारी प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि –

''ॐ वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।'' (यजु. 9/1)

हे परब्रह्म परमेश्वर! आप अत्यन्त वीर्यवान् हैं। अतः आपका वीर्य (सामर्थ्य) मुझ में स्थापित करें। वीर्य सबकी उत्पत्ति का बीज है और वह ब्रह्मरूप है। इसलिये वीर्यवान् प्रभु की प्रार्थना से मानव वीर्यवान् हो सकता है। वीर्यबिन्दु के धारण अथवा क्षरण से मानव जीवन का उत्थान–पतन हो सकता है। मानव दीर्घायु या अल्पायु हो सकता है

मरणं वीर्यपातेन जीवनं वीर्यधारणात्।
सामर्थ्यमिन्द्रियाणां च बलं बुद्धिः स्मृतिर्धृतिः।।

वीर्यपात से मृत्यु और धारण से जीवन प्राप्त होता है। वीर्य धारण से इन्द्रियों की सामर्थ्य बढ़ती है, बल बुद्धि स्मृति और धृति की प्राप्ति होती है, शरीर पुष्ट होता है, सुन्दर एवं कान्तिमान होता है तथा वीर्यनाश से सर्वनाश होता है अतः मानव की अधोगति होती है कहा है –

यावद्वीर्यं स्थिरं देहे तावत्कालभयं कुतः।

जब तक देह में वीर्य स्थिर है तब तक काल का भय कहाँ? अर्थात् नहीं। इसलिये आहार का परमाश्रय तेजस्वी तत्त्व शुक्र संरक्षण करना यही ब्रह्मचर्य है। जिसके क्षय से मानव रोग तथा मृत्यु का पात्र बनता है तथा रक्षण से मृत्यु जरा–व्याधि आदि का नाश करने वाली

परम ओषधि हो जाती है। यह मै सत्य कहता हूँ कि ब्रह्मचर्य से शान्ति कान्ति–स्मृति–ज्ञान–आरोग्य तथा धर्मानुकूल उत्तम सन्तति प्राप्त होती है। अतः महान् धर्म को चाहने वाले माणवक को वीर्य रक्षणरूप ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान अवश्य प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए।

ब्रह्मचर्यवान् को ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, वही तेज एवं प्रजापतित्व पाता है, वही आचार्यत्व प्राप्त करता है। इसलिय ब्रह्मचर्य पालन–पूर्वक भगवान् शिवजी के समान सामर्थ्य प्राप्त करके महान् होना ही वीर्य रक्षण रूप ब्रह्मचर्य का महत्व है।

प्रश्न– वेद और ईश्वर प्राप्ति के साथ ब्रह्मचर्य का क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर– वेद यह ईश्वरीय ज्ञान है। वेद के स्वाध्याय से ज्ञान की प्राप्ति होती है और उस ज्ञान से परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति होती है। इससे वीर्य रक्षणरूप ब्रह्मचर्य के बिना बुद्धि मन्द होगी। मन्द बुद्धि वाला मनुष्य वेदों का स्वाध्याय यथावत् नहीं कर सकेगा। मन की चंचलता तथा बुद्धि की जड़ता दूर किये बिना आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए ब्रह्मचर्य धारण करके संयमपूर्वक शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सब प्रकार की शक्तियों का विकास करके वेदों का स्वाध्याय करना चाहिए। इसमें श्रद्धा–तप, ब्रह्मचर्य अग्निहोत्र, गुरु सेवा आदि आवश्यक कर्तव्य हैं। इस प्रकार गुरु कृपा से तत्त्वज्ञान प्राप्त करके ईश्वर की प्राप्ति करनी चाहिए। वेदोपनिषद् में भी ईश्वर की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक कहा है–

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति (कठ. 1/1/15)

जिस ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छावाले ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं इस प्रकार ब्रह्मचर्य आत्मज्ञान एवं ईश्वर प्राप्ति इन तीनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रश्न– ब्रह्मचर्य के पालन में कैसे वर्तना चाहिए?

उत्तर– शास्त्रों में अष्टविध मैथुन के त्याग को ब्रह्मचर्य की रक्षा में साधन माना है –

दर्शनं स्मरणं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः ।।

1. दर्शन मैथुन– भोग्य बुद्धि से स्त्री का निरीक्षण करना।
2. स्मरण मैथुन– भोग्य बुद्धि से स्त्री का चिन्तन करना।
3. केलि मैथुन– स्त्री के साथ खेल कूद और द्यूत क्रीड़ा आदि करना।
4. कीर्तन मैथुन– भोग्य बुद्धि से स्त्री के गुणों का कथन करना।
5. गुह्यभाषण– भोग कामना से एकान्त में स्त्री के साथ गुप्त वार्तालाप करना।
6. संकल्प मैथुन– भोग के लिए स्त्री का मन में संकल्प करना।
7. अध्यवसाय – भोग की इच्छा से स्त्री को प्राप्त करने के लिए निश्चयपूर्वक प्रयत्न करना।
8. क्रियानिष्पत्ति– स्त्री के साथ संभोग करना।

ये आठ प्रकार के मैथुन विद्वानों ने बताये हैं। मोक्ष की कामना वाले जिज्ञासु को इन आठों का त्याग करना चाहिए। तभी वीर्य रक्षणरूप ब्रह्मचर्य का पालन हो सकेगा और वेदाध्ययन तथा ईश्वर की भक्ति आदि महत्वशाली कार्यो का अनुष्ठान हो सकेगा।

ब्रह्मचारी के लिये मनुस्मृति में निम्न नियम बताये हैं– गुरु गृह में रहकर अपने तप की वृद्धि के लिय सब इन्द्रियों को वश में रखकर निम्न नियमों का पालन करे–

नित्य स्नान करके शुद्ध होकर देव–ऋषि–पितरों का तर्पण करें,

देवताओं का यथाविधि पूजन करे। यज्ञ के लिये वन में से समिधा लाये, हवन करे, शहद, चन्दन, इत्र आदि का त्याग करे, साथ ही पुष्पमाला, रस, स्त्रियों और सब प्रकार के आसवों को तथा प्राणियों की हिंसा का सर्वथा त्याग करे। शरीर में तेल न लगाये, आँखों में सुरमा न डाले, काम क्रोध लोभादि का त्याग करे, नृत्य न करे, अश्लील गीत न गाये, जुवाँ न खेले, परनिन्दा न करे, झूठ न बोले, कामदृष्टि से स्त्री को न देखे, स्पर्श न करे, कभी भी वीर्य पात न करे, जो विद्यार्थी कामना से वीर्यपात करता है वह अपने ब्रह्मचर्य व्रत का नाश करता है। यदि इच्छा बिना स्वप्न में वीर्यपात हो जाए, तो प्रातःकाल में स्नान करके सूर्य भगवान् का पूजन करे और **''पुनर्मामेत्विन्द्रियम्''** इस ऋचा का तीन बार पाठ करे। यह है ब्रह्मचारी की जीवन चर्या। यह दिनचर्चा रंक और राय दोनों प्रकार के ब्रह्मचारियों के लिये है। इन नियमों का पालन करने से ब्रह्मचर्य की परिपक्व अवस्था हो जाती है, और ब्रह्मचारी में अनन्त सामर्थ्य विपुल बल, सौन्दर्य एवं ओजस्विता आ जाती है। इससे उसके ज्ञान विज्ञान की वृद्धि होकर वह परम यश प्राप्त कर लेता है।

स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना, वाणी में मधुरता रखना, श्रेष्ठ कर्म करने में दक्षता होना, निष्कपट और सरल व्यवहार रखना, दूरदर्शिता रखकर गुरु सेवा परायण रहकर तत्त्वज्ञान प्राप्त करना, यह ब्रह्मचारी की अपूर्व विशेषता है। ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह गुरु की बराबरी न करे। गुरु के सामने यथेष्ट आसन पर न बैठे, गुरु का सम्मान करे, गुरु आये तब अभ्युत्थान दे, खड़ा हो जाय। गुरु के बैठने के बाद उनकी आज्ञा से बैठे, शय्या आसन आदि गुरु से ऊँचा न रखे। वेदाध्ययन काल में गुरु की आज्ञा से पढ़ना शुरु करे। वेदा-ध्ययन के अन्त में ओंकार का प्लुप्त (लम्बा) उच्चारण करे। नित्य प्रति भगवान् शंकर और सरस्वती की उपासना करे। इन कर्मों या धर्मों का ब्रह्मचारी को यथावत् पालन करना चाहिए।

प्रश्न– ब्रह्मचर्य आश्रम में कितने वर्ष तक रहना चाहिए ?

उत्तर– आमरण अथवा पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम में रह कर सम्पूर्ण वेदों का तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए। सौ वर्ष की आयु के हिसाब से ऋषियों ने यह निर्णय किया है तो भी इसमें निम्न प्रकार से कुछ मतभेद भी हैं–

षट्त्रिंशताब्दिकं चर्यं गुरो त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदधिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा।। (मनु 3/1)

अर्थात् छत्तीस वर्ष तक ऋग्वेदादि वेदत्रयी का गुरुगृह में रहकर अध्ययन रूप व्रत करना अथवा अट्ठारह वर्ष तक अथवा अन्त में नौ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना। योगी याज्ञवल्क्य ने कहा है कि प्रतिवेद शाखा का बारह वर्ष तक अध्ययन करना अथवा पाँच वर्ष तक तो अवश्य अध्ययन करना। **''प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पंच वा''** इस प्रकार वेदों का स्वाध्याय करने के लिए गुरुकुल में निवास करने के विषय में भिन्न–2 मत हैं। कुछ आचार्य अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने का आदेश देते हैं और कोई आचार्य तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वैदिक तत्त्वज्ञान प्राप्त करके मुक्त होने की बात कहते हैं।

गुरुगृह में रहने वाले विद्यार्थी को गुरु की सेवा करनी चाहिये, भिक्षा माँग कर लाकर गुरु को अर्पण करनी चाहिए, गुरु द्वारा दी गई भोज्य सामग्री में से भोजन करके तृप्त होकर संतुष्ट रहना चाहिए। ईर्ष्या द्वेष का त्याग करना चाहिए। सदा प्रसन्नतापूर्वक गुरु के आदेश के अनुसार सद्धर्म का आचरण करना चाहिए।

प्रश्न– ब्रह्मचारियों के कितने भेद हैं ?

उत्तर– ब्रह्मचारियों के मुख्य दो भेद हैं – एक ब्रह्मचारी जब तक सांग वेदा–ध्ययन हो तब तक गुरु गृह में निवास करके वेदाध्ययन पूर्ण होने पर गुरु की आज्ञा से समावर्तन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है।

दूसरा ब्रह्मचारी आजीवन गुरुगृह में निवास करके ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु सेवा के साथ वेदाध्ययन यज्ञानुष्ठान और ईश्वराराधन करता है। ऐसे ब्रह्मचारी को नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। हारित स्मृति में तीन प्रकार के स्नातकों का वर्णन है–

''त्रयः स्नातका भवन्ति विद्यास्नातको
व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्च''

जो वेदाध्ययन करके घर आता है वह विद्या–स्नातक है, जो जप–तप आदि व्रतों को पूर्ण करके परन्तु वेदों को अधूरे पढ़कर घर आता है वह व्रत–स्नातक है। तथा जो वेद व्रत दोनों को पूर्ण करके घर आता है वह विद्याव्रत–स्नातक है।

प्रश्न– **ब्रह्मचारी की वेशभूषा कैसी होती है ! क्या वह दण्ड–कमण्डलु भी धारण करता है ?**

उत्तर– ब्रह्मचारी पीला या श्वेत वस्त्र धारण करता है, शिखा सूत्र रखता है। नेष्ठिक ब्रह्मचारी काषाय वस्त्र तथा रुद्राक्ष की माला, विभूति विभूषित एवं दण्ड कमण्डलु भी धारण करता है। यद्यपि ''**नैव लिंगाभिकारणम्**'' इस मनु वाक्य के अनुसार ज्ञानी के लिए उपर्युक्त चिह्नों की आवश्यकता नहीं है, तो भी इनका धारण प्रासंगिक है। जिसमें उत्तम विद्या गुण ज्ञानादि हों और जो सत्य–धर्म–ब्रह्मचर्य तप त्याग और ईश्वराराधन के द्वारा अनन्त शक्तियों का संचय कर लेता है– वही सच्चा ब्रह्मचारी है। जो ब्रह्मचारी नैष्ठिक ब्रह्मचारी के सब धर्मों का यथावत पालन करता है उसे अन्य आश्रमों में जाने की आवश्यकता नहीं रहती वह उसी आश्रम में मुक्त हो जाता है। कहा भी है–

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः।
समाप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलं च तस्याः सुलभं तु विन्दति।।

(हारीतस्मृति 3/17)

जो ब्रह्मचारी योग की विधि के अनुसार यम नियमादि के क्रम से

समाधिस्थ होकर एकाग्र मन से गुरु की सेवा में तत्पर होकर अहंकार तथा ममता और वासना मात्र का त्याग करके इस पृथ्वी पर विचरता है, वह अति दुर्लभ कल्याणकारी विद्या को प्राप्त करके उसका फल दु:ख की निवृत्तिपूर्वक परमानन्द प्राप्त करके अन्त में मोक्षपद प्राप्त कर लेता है। पृथिवी से लेकर अन्तरिक्ष तक के सब पदार्थ ब्रह्मचारी के अनुकूल हो जाते हैं, सब दिव्यगुण उसमें निवास करते हैं। वह अपने तप के प्रभाव से आचार्य को पूर्ण करता है और जगत् को धारण करता है। ज्ञान प्राप्ति के पूर्व में सब विद्यार्थियों को पूर्णतया ब्रह्मचारी रहना चाहिए, यह उनका तप है। ब्रह्मचर्य से अमरता की प्राप्ति होती है। देखिये, भगवान् वेद क्या कहते हैं–

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाध्नत।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१ भरत।। (अथर्व 11/5(7)19)

ब्रह्मचर्य रूप तप से सब देवताओं ने मृत्यु को दूर भगा दिया, ब्रह्मचर्य से ही देवराज इन्द्र ने देवताओं को तेज दिया है। कन्या भी ब्रह्मचर्य का पालन करके अपने अनुकूल पति को प्राप्त करती है। देखिये–

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।।

राष्ट्र में सब शिक्षक ब्रह्मचारी होने चाहिए। प्रजा पालक मंत्री तथा कर्मचारी भी सदाचारी होने चाहिए। जो योग्य पद्धति से प्रजा का पालन करेंगे, वे सुशोभित होंगे तथा जो जितेन्द्रिय राजपुरूष होंगे वे ही यशस्वी होकर उन्नत होंगे। ब्रह्मचारी ज्ञानामृत की वर्षा करके राष्ट्र को शान्त करते हैं उत्तम उपदेश देकर जनता को सन्मार्ग पर प्रवृत्त करते हैं अतः धार्मिक, आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से भी ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्त्व है।

गृहस्थाश्रम धर्म निरूपण

प्रश्न– गृहस्थाश्रम में प्रवेश कब करना चाहिए ?

उत्तर– शास्त्र में कहा है कि–

ब्रह्मचर्यं समाप्याथ गृहधर्मं समाचरेत्।
ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं धर्मेणोत्पादयेत्प्रजाम्।।

ब्रह्मचर्य के 24 वर्ष पूरा करने के बाद युवावस्था में (जब युवक विद्या और बल से सम्पन्न हो जाय ओर जब अपनी जीविका का निर्वाह स्वयं करने योग्य हो जाय तब) गृह धर्म में प्रवेश करके देव–ऋषि–पितृ ऋण से मुक्त होने के लिये धर्म विधि से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सुप्रजा उत्पन्न करे। वेदादि के स्वाध्याय के अनन्तर गुरु की आज्ञा से पच्चीस वर्ष की अवस्था में असपिण्ड, असगोत्र तथा समान वर्ण, उत्तम गुण कर्म विशिष्ट, सुशील और सदाचार सम्पन्न कन्या को पत्नी के रूप में स्वीकार करके विवाहित होकर यथावत् गृहस्थ धर्म का पालन करे।

प्रश्न– पत्नी का ग्रहण किसलिए करना चाहिए ?

उत्तर– **''पुत्रार्थे क्रियते भार्या''** पुत्रोत्पादन के लिए पत्नी का ग्रहण किया जाता है।

प्रश्न– विवाह पाणिग्रहण के समय पति पत्नी कौन सी प्रतिज्ञाएँ करते हैं तथा उनका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर– संयम के लिए विवाह किया जाता है। स्त्री पुरुष की सहधर्मिणी है। पवित्र हृदयवाला संयमी गृहस्थ ही ओज–तेज बलसम्पन्न पुत्र उत्पन्न कर सकता है। विवाह के समय का एक मंत्र है जिसमें वर कन्या को कहता है कि –

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथा सः।
भगो अर्यमा सविता पुरंन्धिर्मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः।।

अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्य मो अहम्।
सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै
सह रेतो दधावहै प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै
बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः। सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ।।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम्।।
(पारस्कर गृह्यसूत्र 6/3)

हे कल्याणि ! मैं अपनी कान्ति श्री महिमा, ज्ञान और धर्मादि की पूर्ति के लिये तुम्हारा ग्रहण करता हूँ। तुम्हारा आत्मा मेंरे आत्मा से कभी अलग न हो, अपने दोनों एक साथ ही सब धर्म कार्य करते हुए वृद्धावस्था तक पहुँचें। भग–अर्यमा और सविता आदि देवताओं ने तुमको मुझ में मिला दिया है, तुम घर के कार्य करना, कल्याणि! तुमसे मेरी शान्ति–कान्ति एवं क्रान्ति का विकास होगा। अतएव तुम लक्ष्मी के समान हो। तुम्हारे न रहने से मेरी कान्ति– श्री आदि नहीं रह सकेंगें मैं अकेला लक्ष्मीशून्य हूँ। हे मांगल्ये! तुमको प्राप्त करके मैं लक्ष्मीवान् हो गया हूँ। हे आयुष्मति! मैं सामरूप हूँ तो तुम ऋचारूप हो। ऋक् और साम का जैसे घनिष्ठ सम्बन्ध है ऋक् के बिना जैसे साम की पुष्टि एवं सत्ता नहीं रहती वैसे ही तुम्हारे बिना मेरी और मेरी इन्द्रियों की पुष्टि और सत्ता नहीं रहती। हे अर्धांगिनि! मैं आकाशरूप हूँ, तो तुम पृथ्वी रूपा हो, पृथ्वी और आकाश में जैसे ओत–प्रोत सम्बन्ध हैं, वैसे आत्म–समर्पण करो। अपना विवाहबन्धन सुदृढ़ हो, हम दोनों को 'रेतः' संयम करना होगा, फिर यथासमय देहसंयोग से सुपुत्र उत्पन्न करेंगे। उसका सुख देखेंगे। इस प्रकार पुत्र उत्पादन करने से वह दीर्घजीवी होगा। तुम्हारी और मेरी एकात्मता होने से हम दोनों के तेज की वृद्धि होगी, दोनें के हृदय मिलकर समुन्नत होंगे। अपने सौ वर्ष तक जीवित रहेंगे, सौ वर्ष तक आँखों से देखेंगे, सौ वर्ष तक कानों से सुनेंगे, इस प्रकार वर कन्या को आत्मसमर्पण करता है तथा कन्या वर को आत्मसमर्पण करती है परन्तु इन दोनों

को **"रेतः संयम"** की दृढ़ प्रतिज्ञा लेकर भोग्य ऋतुकाल में पितृऋण से मुक्त होने के लिए धर्मपूर्वक सन्तान उत्पन्न करनी है यह तात्पर्य है।

प्रश्न– गृहस्थ पुत्र उत्पन्न न करे तो क्या दोष है ?

उत्तर– गृहस्थ से प्रजातन्तु यानी सन्तान वंश परम्परा का उच्छेद नहीं होना चाहिए। श्रुति में कहा है– **"प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।"** (तै. उ. 1/11) गृहस्थ की प्रशस्त पुत्र उत्पन्न करने से ही पूर्णता होती है। **"प्रजया हि मनुष्यः पूर्णः।"** (तै. ब्रा. 3/3/10) और भी **"अर्धो ह वै एष आत्मनो यद् जाया, तस्मात् यावत् जायां न विन्दति नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदा एव जायां विन्दते अथ प्रजायते, तर्हि हि सर्वो भवति।** (शत. ब्रा. 5/2/1/10) **सर्वं वै यत्तत् पूर्णम्।** (शत. ब्रा. 4/2/3/2) पुरुष का अर्धांग स्त्री है पुरुष जब तक स्त्री का ग्रहण नहीं करता तब तक वह आधा ही रहता है और प्रजा भी उत्पन्न नहीं होती। अतः वह अपूर्ण है– आधा है। जब वह स्त्री को ग्रहण करता है तब प्रजा उत्पन्न होती है और तब वह सम्पूर्ण होता है, तब वह यह सर्व पूर्ण है। जब तक पुरुष पूर्ण नहीं है तब तक अभ्युदय–सुख प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे द्विज ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या प्राप्त करके ऋषि–ऋण में से तथा यज्ञ करके देव–ऋण से मुक्त होता है वैसे गृहस्थाश्रम में गृहस्थ पुत्र उत्पन्न करके पितृ–ऋण में से मुक्त होता है। इस प्रकार तीनों ऋणों में से मुक्त होने की आवश्यकता है। कहा भी है –

जायमानो वै ब्राह्मणः त्रिभिः ऋणैः ऋणवान् जायते।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः यज्ञेन देवेभ्य प्रजाया पितृभ्यः
एष वै अनृणो य पुत्री यज्वा ब्रह्मचारीवासो।

(तै. सं. 6/3/10)

जन्म लेने वाला ब्राह्मण तीन ऋणों से ऋणवान् होकर ही जन्म लेता है। ब्रह्मचर्य में वेदाध्ययन से ऋषि ऋण, यज्ञ करके देवताओं के ऋण से तथा पुत्र उत्पन्न करके पितृऋण से मुक्त होता है। ऐसे जो

पुत्रवान्–यज्ञ करने वाला तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु सेवा करके वेदाध्ययन करता है, वह ऋण रहित हो जाता है। अतः जो गृहस्थ पुत्र उत्पन्न नहीं करता उसे सन्तति उच्छेद का दोष लगता है। और वह पितृऋण से मुक्त नहीं हो सकता।

प्रश्न– क्या गृहस्थाश्रम में भी ब्रह्मचर्य पाला जा सकता है ?

उत्तर– हाँ, महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि –

ऋतावृतौ स्वदारेषु सङ्गतिर्यां विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्।।

ऋतुकाल में अपनी पत्नी से शास्त्र के आदेश के अनुसार केवल सन्तानार्थ समागम करने वाला पुरुष गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी ब्रह्मचारी है। यहाँ ''सन्तानार्थं च मैथुनम्'' इस शास्त्र वचन से सन्तान की प्राप्ति के लिए ऋतु काल में ही स्त्री समागम का विधान है। अन्य समय में नहीं।

प्रश्न– ऋतुकाल क्या है ? उसमें गर्भाधान का क्या नियम है ?

उत्तर– भगवान् मनु कहते हैं –

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः।।
तासामाद्याचतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषस्तु प्रशस्ता दशरात्रयः।।

(मनु. 3/46–47)

रजोदर्शन की प्रथम चार रात्रियों के सहित सोलह रात्रियाँ स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है। इन सोलह में से प्रथम चार रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि स्त्री सहवास के लिये निन्दित है बाकी दशरात्रियाँ श्रेष्ठ मानी गई हैं। इन दश रात्रियों में से भी प्रतिपदा–षष्ठी–अष्टमी–एकादशी–द्वादशी–चतुर्दशी तथा अमावस पूर्णिमादि तिथियाँ व्यतीपात, ग्रहण–रामनवमी–शिवरात्रि–जन्माष्टमी

श्राद्ध का दिन, संक्रान्ति और रविवार आदि दिन छोड़कर शेष जो तिथियाँ बचें उनमें सन्तान के लिए या स्त्री की इच्छा से महीने में केवल दो बार, जो गृहस्थ स्त्री समागम करता है वह गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।

प्रश्न– गर्भाधान होने के बाद स्त्री पुरूष का क्या कर्तव्य है ?

उत्तर– गर्भाधान का निश्चय होने पर दोनों को एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का व्रत लेना चाहिए। जब बालक गर्भ में हो तब समागम करना महापाप है। जन्म होने के बाद भी बालक जब तक स्तन पान करता हो तब तक ब्रह्मचर्य में रहना चाहिए। इस नियम का पालन न करने से माता का दूध विकृत हो जाता है। परिणामतः बालक की सब धातुएँ बिगड़ जाती हैं, धातु विकार से बालक कमजोर, रोगी और अल्पायु हो जाता है। इस हिसाब से संन्तान को सुदृढ़–बलवान–नीरोग और दीर्घायु बनाने की इच्छा वाले गृहस्थी को गर्भाधान से लेकर दो वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। गर्भ रहने के बाद स्त्री को नाचना, कूदना, दौड़ना, गाड़ी–रथ आदि में सवारी करना, जुलाब लेना, उल्टी करना तथा जिससे डर लगे ऐसी बात सुनना, अश्लील पुस्तकें पढ़ना, सिनेमा–नाटक आदि देखना, अधिक हँसना, रोना, मश्करी करना, तीखे तथा गरम पदार्थों का सेवन करना, इत्यादि का त्याग कर देना चाहिए। विशेष में प्रातः सायं भजन–जप–ध्यान–पाठ आदि करना चाहिए। मन में प्रसन्नता रखनी चाहिए, धार्मिक पुस्तकें पढ़ना चाहिए। किसी प्रकार की कोई कुचेष्टा न करे। इत्यादि नियमों का पालन करना चाहिए, जब से बालक गर्भ में आता है तब से उसके ऊपर माता के व्यवहार के संस्कार पड़ने लगते हैं सातवें महीनें से तो खास ध्यान रखना चाहिए। महाभारत में अभिमन्यु तथा पुराण में भक्त प्रह्लाद के उदाहरण प्रसिद्ध हैं। इन्होंने चक्रव्यूह और भक्ति तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति गर्भ में ही की थी।

प्रश्न– गृहस्थ स्त्री का क्या कर्तव्य है?

उत्तर– स्त्री का कर्तव्य है– वह निष्कपट भाव से श्वसुर–सास–जेठ–जेठानी ननद तथा अन्य घर के बड़े बूढ़ों की यथायोग्य सेवा करे, सत्कार आदर करके उनके साथ अच्छा व्यवहार करे, घर को स्वच्छ रखे, वस्तुओं की सुव्यवस्था– भोजन बनाने में कुशलता, वाणी में मधुरता और व्यवहार में सरलता रखे। आवश्यक भरत–गूंथण–शिवण–बाल चिकित्सा, स्वास्थ्य रक्षण आदि का ज्ञान प्राप्त करके उसका घरेलू उपयोग करे। साथ ही पति की सेवा एवं पातिव्रत धर्म का पालन करे।

प्रश्न– पातिव्रत धर्म क्या है ?

उत्तर– अपने पति को परमेश्वर रूप मान कर उसकी अखण्ड श्रद्धा तथा विश्वास के साथ सेवा करे, उनकी आज्ञा का पालन करे, पति को जिसमें प्रसन्नता हो ऐसा आचरण करे। अपने पति के सिवाय अन्य किसी पुरुष को सकाम वृत्ति से न देखे– यह पातिव्रत धर्म है।

प्रश्न– पतिव्रता स्त्री का प्रभाव कैसा होता है ?

उत्तर– माता अनसूया ने अपने पातिव्रत के प्रभाव से ब्रह्मा–विष्णु–शिव को अपने पुत्र बनाये थें तथा शांडिली ने पातिव्रत के प्रभाव से सूर्य को भी उदय होने से रोक दिया था। पतिव्रता स्त्रियों के प्रभाव का पुराणों में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। एक पतिव्रता ब्राह्मणी के प्रभाव से अग्नि भी शीतल हो गया था। देखिये– एक अग्निहोत्री ब्राह्मण यज्ञ मण्डप में अपनी पत्नी की गोद में सिर रखकर सो गया, इतनें में यज्ञशाला में उसका छोटा बालक यज्ञ कुण्ड में गिर गया। स्त्री ने अपने बालक को कुण्ड में गिरते देखकर भी पति को नहीं जगाया, क्योंकि पति को जगावे तो पातिव्रत भंग हो जाये, परन्तु अग्निदेव पतिव्रता के शाप के भय से घिसे हुए चन्दन के समान शीतल हो गये और बालक का कुछ भी नहीं बिगड़ा।

सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता।
पतिव्रताशापभयेन पीड़ितः हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः।।

इसके सिवा प्राचीन हिन्दु शास्त्रों में पतिव्रता स्त्रियों के अद्भुत सामर्थ्य का वर्णन है। अतः पातिव्रत का ऐसा प्रभाव होने से स्त्रियों को पातिव्रत–धर्म के पालन करने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए।

प्रश्न– गृहस्थ का धर्म क्या है ?

उत्तर– गृहस्थ प्रातः ब्राह्म–मुहूर्त में उठे, मंगल द्रव्यों का दर्शन करे, प्रभु के मांगलिक नामों का संकीर्तन स्मरण करे, परमेश्वर का ध्यान करे। प्रातः थोड़ा व्यायाम–योगासन–भ्रमण आदि करे। फिर शीतल एवं ताजे जल में स्नान करके सन्ध्या, गायत्री का जप, देवयज्ञ, देवपूजन, विद्वानों का सत्कार, अतिथि सत्कार, बलि–वैश्वदेव आदि षट्कर्म नित्य करे।

स्नानं सन्ध्या जपो होमः देवतानां च पूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने।।

इन षट् कर्मो के साथ पञ्च महायज्ञ भी अवश्य करे। अहंकार का त्याग करके प्राणिमात्र पर दया रखे, परोपकारी बने, वेदाध्ययन करे, जितेन्द्रिय होकर तेजस्वी बने, शौर्य–वीर्य, गाम्भीर्य आदि दिव्य गुण सम्पादन करे। न्याय–नीति और धर्म से द्रव्योपार्जन करे। बड़े–बूढ़ों का यथायोग्य सत्कार करे, सेवा करे, नम्रता तथा सरलता का व्यवहार करे, श्रद्धापूर्वक सात्विक दान करे, दींन, अन्ध, दरिद्र तथा याचकों को विशेष रूप से अन्नदान करे, किसी की निन्दा न करे, कभी परस्त्रीगमन न करे, कन्या विक्रय न करे तथा अन्याय से परद्रव्य ग्रहण न करे। इस प्रकार धर्म–कर्म करने वाला गृहस्थ उत्तम यश और सुख प्राप्त करके परलोक में सद्गति प्राप्त करता है।

प्रश्न– प्रशंसनीय गृहस्थाश्रम कौन सा है ?

उत्तर– सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कान्ता प्रियालापिनी।
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापरः सेवकाः।।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे।
साधोः संङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।।

(चा. नी. 12/1)

जिसका आनन्द युक्त घर हो, बुद्धिमान पुत्र तथा मधुरभाषण करने वाली पत्नी हो, सन्मित्र हों, अच्छा धन हो, अपनी स्त्री में ही प्रीति हो, आज्ञानुसार चलने वाले सेवक हों, अतिथि सत्कार और प्रतिदिन शिवपूजन होता हो, घर में मधुर–सात्विक भोजन और शुद्ध जलपान होता हो तथा नित्य–नियम से साधु सन्तों की उपासना यानी सेवा सत्संग होता हो, वही गृहस्थाश्रम प्रशंसनीय है।

प्रश्न– गृहस्थाश्रमियों को पंच महायज्ञ क्यों करने चाहिए?

उत्तर– गृहस्थ के घर में हिंसा के पाँच स्थान हैं। उस हिंसाजनित पाप की निवृत्ति के लिए पंच महायज्ञ करने चाहिए–

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कंडनी चोदकुम्भश्च बध्यते यांस्तु वाहयन्।।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्।।

(मनु 3/168–169)

गृहस्थ के घर में चुल्हा, चक्की, इमामदस्ता, सावरणी (झाड़ू) और पानी का घड़ा ये पाँच हिंसा के स्थान हैं। इन पाँच वस्तुओं के उपयोग से अनेक जीव जन्तु मरते रहते हैं, इससे गृहस्थी को पाप लगता है, वह सुखी नहीं हो सकता, महर्षियों ने इन पापों के निवारण प्रायश्चित्त के रूप में गृहस्थ के लिए पंच महायज्ञ करने का आदेश दिया है– ''**पंचसूना कृतं पापं पंचयज्ञैर्व्यपोहति।**'' अतः गृहस्थी को पंच महायज्ञ करना आवश्यक है।

प्रश्न– पंचमहायज्ञ कौन से हैं ?

उत्तर– **अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।**
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्। (मनु 3/70)

वेदादि शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन **ब्रह्मयज्ञ** है। पितरों की सेवा के साथ उन्हें अन्न–जलादि देना यह **पितृयज्ञ** है, अग्नि में हवन करना यह **देवयज्ञ** है, प्राणियों को बलि (अन्न) देना यह **भूतयज्ञ** है तथा अतिथि सत्कार यह **मनुष्ययज्ञ** है। इन पंच महायज्ञों को जो यथाशक्ति नित्य करता है वह घर में रहते हुए भी हिंसा आदि पापों से छूट जाता है तथा महान पुण्य प्राप्त करता है।

प्रश्न– ब्रह्मयज्ञ का महत्त्व क्या है ?

उत्तर– ब्रह्म और यज्ञ इन दो शब्दों से **ब्रह्मयज्ञ** शब्द बना है इसका भाव यह है कि ब्रह्म यानी वेद उसका स्वाध्याय करके अन्यों को अध्ययन कराना तथा तदनुसार कर्मानुष्ठान पूर्वक अन्तःकरण शुद्ध करके लौकिक सुख समृद्धि प्राप्त करके तत्त्वज्ञान सम्पादन करना और उसके फलस्वरूप वेदोपनिषद् प्रतिपाद्य सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति करना ही ब्रह्मयज्ञ है।

प्रश्न– पितृयज्ञ का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर– पितृनाम पितरों का है। जीवित तथा मृतक ऐसे दो प्रकार के पितर हैं जीवित माता–पिता, सास–श्वशुर, माता–पितामह आदि जो जीवित हैं उनकी सेवा करना अन्न–वस्त्र आदि आवश्यक साधन देकर उनका आशीर्वाद लेना तथा मृतक पितरों के लिये जल तिलांजलि– श्राद्ध तर्पण पिण्डदान आदि देना तथा उनके निमित्त से धार्मिक कार्य करना यह **पितृयज्ञ** है इसे ही पितृतर्पण कहते हैं।

प्रश्न– देवयज्ञ क्या है ?

उत्तर– प्रातः प्रतिदिन देवताओं के उद्देश्य से जो हवन किया जाता है उसे **देवयज्ञ** कहते हैं। देवयज्ञ देवताओं की तृप्ति तथा प्रसन्नता का करने

वाला है। इससे पंचभूत शुद्धि होती है, रोगों को उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं का नाश होता है, उससे क्षय आदि भयंकर संक्रामक रोगों का शमन होकर मन बुद्धि को शुद्ध करता है, शारीरिक मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है, साथ ही लोक में वृष्टि आदि के द्वारा जीवनदाता तथा ऐश्वर्यप्रद होकर स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करने में साधनभूत है।

प्रश्न– भूतयज्ञ क्या है ?

उत्तर– भूत नाम प्राणियों का है बलि वैश्वदेव में प्राणियों की सेवा होती है। इससे पुण्य बढ़ता है, पाप का नाश होता है, क्योंकि यह परोपकार का काम है, करना आवश्यक है। बनाये हुए भोजन से गार्हपत्य अग्नि में नमक, मिर्च, तेल, खटाई आदि से रहित घी–खीर चांवल आदि पदार्थों से प्रतिदिन बलि–वैश्वदेव के मंत्रों से हवन करना बाद में गाय, कुत्ता, काक, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, कीड़ी, मकौड़ा आदि प्राणियों के लिए अन्न देना। बलि वैश्वदेव करके अतिथि को भोजन कराकर संन्यासी– ब्रह्मचारियों को उचित सम्मान के साथ भिक्षा–भोजन कराना विद्वान् और तपस्वी ब्राह्मणों की मुखाग्नि में दिया गया हव्य–कव्य सब संकटों को दूर करता है और परलोक में पापों से बचाकर सुख प्रदान करता है । अतः **भूतयज्ञ** करना आवश्यक है। इसके बाद गृहस्थी अपने कुटुम्ब के साथ भोजन करे।

प्रश्न– नृयज्ञ क्या है तथा इसका महत्त्व क्या है ?

उत्तर– नृ– नाम नर–मनुष्य का है। यज्ञ का मतलब है ''देव पूजा–संगतिकरण–**दान**'' जो विद्वान्–ज्ञानी प्राज्ञ पुरुष एवं संयमी है और अनायास ही घर पर आ जाय वह अतिथि है। अतिथि का स्तर सब मनुष्यों में सबसे ऊँचा है जिसके वर्ण एवं आश्रम का ज्ञान न हो जिसका गोत्र भी अज्ञात हो जिसके आने की कोई तिथि निश्चित न हो, जो ज्ञानी, कवि दैवी सम्पत्ति से सम्पन्न विरक्त यति हो, जिसका अनायास ही मध्याह्नोत्तर काल में गृहस्थ के घर में आगमन हो जाय वह अतिथि है।

ऐसे अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिये। अतिथि के शरीर में सब देवता तथा पितर निवास करते हैं। अतिथि के सम्मान से सम्मानित होकर वे आशीर्वाद वरदान देते हैं तथा अतिथि के अपमानित होने पर वे शाप देकर गृहस्थी को दु:खी कर देते हैं। अत: शास्त्रों में अतिथि सत्कार की बड़ी महिमा गाई है यथा –

वैश्वानरः प्रविशत्यथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्।। (कठ. उप. 1/1/7)

वैश्वानर अग्नि ही ब्राह्मण अतिथि के रूप से घरों में प्रवेश करता है अत: गृहस्थी उसकी पाद्य, अर्घ्य, जल, अन्न दानादि के द्वारा शान्ति करे। अत: हे वैवस्वत ! इस नचिकेता–ब्राह्मण अतिथि की शान्ति के लिये जल ले जाइये। जिसके घर से ब्राह्मण अतिथि भोजन किये बिना चला जाता है तो उस मन्दबुद्धि पुरुष की ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा और अतिथि के संयोग से एवं उसकी प्रिय वाणी से होने वाला फल, यागादि इष्ट और उद्यानादि पूर्त कर्मो का फल तथा समस्त पुत्र और पशु आदि नष्ट हो जाते हैं (कठ. 1/1/8) यहाँ यह बताया है कि जो गृहस्थ ब्राह्मण अतिथि का सत्कार नहीं करता उसके सब पुण्य क्षीण हो जाते हैं। यही बात अन्य श्रुति–स्मृति–पुराण–महाभारत आदि में प्रकारान्तर से बताई है। अतिथि का सत्कार करके गृहस्थ उसका आशीर्वाद लेकर अनन्त–सुख समृद्धि और ऐश्वर्य के साथ श्रेयस् सिद्धि को पाता है। अतिथि के लिए तृणासन– रहने की जगह, पैर धोने के लिए पानी और मधुर तथा सत्यवाणी इन चार वस्तुओं की सज्जनों के यहाँ कभी कमी नही होती। कदाचित् सूर्यास्त के समय कोई अतिथि आ जाय तो उसको भी भोजन करा देवे। आसन विश्रामस्थान शय्या–अनुगमन एवं परिचर्या यह सब अतिथि की योग्यता देखकर करना चाहिये। जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। छोटे बड़े का ध्यान न रखकर अतिथि के सम्मान की व्यवस्था कर देनी चाहिए। अतिथि

पूजन से गृहस्थ को धन यश तो मिलता ही है साथ ही आयु की वृद्धि भी होती है तथा जन्मान्तर में स्वर्गसुख मिलता है।

प्रश्न– क्या अतिथि से पहले किसी को भोजन कराया जा सकता है ?

उत्तर– हाँ, नववधू–कन्या–रोगी तथा गर्भवती स्त्रियों को अतिथि से पहले भोजन कराया जा सकता है। (मनु. 3/114)

प्रश्न– गृहस्थाश्रम का महत्त्व क्या है ?

उत्तर– जैसे प्रवाह वाली सब नदियों का आश्रय स्थान समुद्र है वैसे सब आश्रमधारियों का आश्रयस्थान गृहस्थाश्रम है।

यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

और भी कहा है–

यथा वायुं समासृत्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।। (मनु.)

जैसे वायु के आश्रय से सब प्राणी जीते हैं वैसे सब आश्रम गृहस्थाश्रम के आश्रय से जीते हैं। ब्रह्मचारी–वानप्रस्थी तथा संन्यासी ये तीनों आश्रमी गृहस्थी के द्वारा अन्नदान द्वारा पुष्ट होते हैं और इसी से वे वेदार्थ ज्ञान की चर्चा कर सकते हैं **''तस्माज्जेष्ठाश्रमो गृही''** इसी से सब आश्रमों में बड़ा गृहस्थाश्रम है। इसलिये इस लोक के प्रिय सुख और परलोक का श्रेय सुख चाहने वाले मनुष्यों को प्रयत्न–पूर्वक गृहस्थाश्रम का पालन करना चाहिए।

वानप्रस्थाश्रम धर्म निरूपण

प्रश्न– वानप्रस्थाश्रम कब ग्रहण करना चाहिए ?

उत्तर– गृहस्थाश्रम का पालन करते–2 जब सिर के बाल पकने लगें, मुख पर करचलियाँ (झुर्रियाँ) पड़ने लगें, घर के कामों में मन न लगे, भोगों से वैराग्य हो जाय तब पचास वर्ष की उम्र में धीरे–2 प्रवृत्तिमार्ग से हट कर निवृत्ति मार्ग का आश्रय ले कर एकान्त वन या उपवन में

नदी किनारे झोंपड़ी बनाकर निवास करना। इस प्रकार सांसारिक प्राणी पदार्थों की आसक्ति कम होने पर चित्त शान्त–शुद्ध एवं निर्विकार होकर ईश्वराकार होने लगे तब पचास वर्ष की अवस्था में वान–प्रस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

प्रश्न– वानप्रस्थाश्रमी का धर्म क्या है ?

उत्तर– वानप्रस्थाश्रमी को ग्रामीण विषय भोगों का त्याग करके अपनी पत्नी को पुत्रों के संरक्षण में छोड़ कर अथवा साथ रखकर वन में जाकर रहे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। मृगचर्म या पुराने वस्त्र धारण करे, वल्कल पहने। पंच केश रखे नख नहीं कटाये, शाक–मूल फलादि से जीवन निर्वाह करे अथवा खेत के कटने पर वहाँ पड़े हुए दाने एकत्र करके उनसे निर्वाह करे अथवा भिक्षा माँग कर भोजन करे। दान न ले, संयम से रहे। जल–मूल–फलादि के द्वारा अतिथि का सत्कार करे। हवन करे, प्रातः सायं स्नान–संध्या–आत्मानुसंधानार्थ वेदा–ध्ययन ध्यान–मंत्र–जप एवं योगाभ्यास करे। इस प्रकार तप, त्याग एवं ब्रह्मचर्य पूर्वक वैराग्य भाव में स्थिर रहा हुआ निःस्पृही वानप्रस्थी ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है यह आश्रम साधना की पराकाष्ठा रूप है।

संन्यास आश्रम धर्मनिरूपण

प्रश्न– संन्यास कब लेना चाहिए ?

उत्तर– वानप्रस्थाश्रम धर्म का यथावत् पालन करते–2 जब विषय वितृष्णा हो जाय, पर वैराग्य में दृढ़ स्थिति हो जाय तब आयु के अन्तिम भाग में यानी पचहत्तर वर्ष की आयु में संन्यासाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। यह क्रम संन्यास है। परन्तु श्रुति का सिद्धान्त है कि– **''यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्''** (जाबालश्रुति) जिस दिन वैराग्य हो जाय उसी दिन संन्यास ले ले। प्रव्रज्या यानी परिव्राजक–संन्यासी हो जाए **''ब्रह्मचर्याद्वागृहाद्वा वनाद्वा''** ब्रह्मचर्याश्रम– गृहस्थाश्रम या वान–प्रस्थाश्रम में से जिस आश्रम में और जिस समय में वैराग्य हो जाय

तभी तुरन्त संन्यास ले लेना चाहिए।

प्रश्न– क्या ब्राह्मणेतर भी संन्यास ले सकता है ?

उत्तर– हाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों का यज्ञोपवीत होता है। उपवीत संस्कार से वेदत्रयी के पठन–पाठन का अधिकर प्राप्त हो जाता है। अतएव श्रौत–स्मार्त कर्मों का अधिकार तथा द्विजातियों को संन्यास का अधिकार श्रुति–स्मृतियों में दिया है अतएव त्रैवर्णिक संन्यास का विधान है।

प्रश्न– हमने सुना है कि ब्राह्मण को ही संन्यास का अधिकार है अन्य को नही ?

उत्तर– यह बात योग्य नहीं है, याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है – **संन्यासोऽथ द्विजन्मनाम्।** (याज्ञ. स्मृति) द्विजातिमात्र को संन्यास का अधिकार है। अन्य भी–

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्ततो गच्छेद्वनं कृती।
संन्यसेद्वन्धनाशाय सर्वभूतदयापरः।।

अर्थात् ब्राह्मण–क्षत्रिय अथवा वैश्य सर्वभूत दया–परायण होकर संसार बन्धन के नाश के लिये संन्यास लेकर वन में जाए।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा प्रव्रजेत् गृहात्।
त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः।।

(त्रैवर्णिक संन्यास पद्धति)

अर्थात् ब्राह्मण–क्षत्रिय अथवा वैश्य गृह त्याग कर परिव्राजक हो जाए। वेद का स्वाध्याय करने के बाद पहले तीन वर्णों के लिए चार आश्रम हैं अतएव वैराग्यवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य संन्यास लेकर आत्म कल्याण कर सकता है।

प्रश्न– वैराग्य के बिना संन्यास ले सकते हैं क्या?

उत्तर– वैराग्यहीन संन्यास तो भस्म में हवन करने के बराबर है, परन्तु क्रम संन्यास या आतुर संन्यास लिया जा सकता है।

प्रश्न– आतुर संन्यास का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर– प्राण के उत्क्रमण काल में सब कर्म एवं वासना को छोड़ कर संन्यास लेकर प्राण का त्याग करना यह आतुर संन्यास है। इसे निमित्त संन्यास भी कहते हैं।

प्रश्न– संन्यास के भेद कितने हैं ?

उत्तर– क्रम संन्यास और ज्ञान संन्यास ये दो भेद हैं।

प्रश्न– क्रम संन्यास क्या है ?

उत्तर– ब्रह्मचर्य समाप्त कर, गृहस्थी होकर, वानप्रस्थाश्रम को पूर्ण करके वैराग्य के अभाव में भी आश्रमों के क्रम से संन्यास ले, यह क्रम संन्यास है। क्रम–संन्यास में भी निमित्त संन्यास और अनिमित्त संन्यास के भेद से दो प्रकार का है ऊपर जो आतुर संन्यास बतलाया है वह निमित्त संन्यास है। (मृत्यु के समय की बीमारी निमित्त है) तथा जीवित दशा में बृद्धांग होते हुए भी सब संसार तथा देहादि पदार्थों को नश्वर समझ कर त्याग करे, वह क्रम संन्यास अनिमित्त संन्यास है।

प्रश्न– ज्ञान संन्यास का लक्षण क्या है ?

उत्तर– शास्त्र–ज्ञान से पुण्य पाप को समझकर संसार की क्षण–भंगुरता को जानकर प्रपंच से उपराम होकर देहवासना, शास्त्रवासना, लोक वासना का त्याग करके समस्त प्रवृतियों को हेय मानकर साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर जो संन्यास धारण करता है, वह ज्ञान संन्यास है। इसे ही विद्वत्संन्यास भी कहा है।

प्रश्न– इनके लक्षण क्या है ?

उत्तर– शास्त्रों में इनके छः प्रकार बताये हैं यथा–

कुटीचक–यज्ञोपवीत–दण्ड कमण्डलु–कौपीन–कंथा आदि धारण करता है, माता–पिता–गुरु आदि की सेवा में तत्पर रहता है, मंत्र–साधन परायण रहता है, एक बार भोजन ग्रहण करता है तथा श्वेतो–

र्ध्वपुण्डधारी त्रिदण्डी होता है–

बहूदक– शिखा रखता है, कन्था धारण करता है, त्रिपुण्ड लगाता है। इसका भी कुटीचक जैसा ही आचरण होता है परन्तु यह मधुकरी (भिक्षा) के अन्न का भोजन करता है और जीर्ण कौपीन धारण करता है।

हंस– जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड धारी होता है, वह जीर्ण कौपीन पहनता है।

परमहंस– शिखा यज्ञोपवीत रहित, पाँच घरों में से एकत्रित अन्न प्राशन करने वाला करपात्री, कौपीन धारी, एक वेणुदण्ड भस्म धारी एवं सर्व त्यागी होता है।

तुरीयातीत– गोमुख फलाहारी होता है यानी गाय के मुख में एक बार जितना फल आ जाय उतने फल का आहार लेता है। कदाचित् अन्नाहार ले तो देहस्थिति के रक्षणार्थ भिक्षा ले लेता है। यह देहमात्र अवशिष्ट दिगम्बर अवस्था में चेष्टा रहित आत्मवृत्ति वाला होता है।

अवधूत– को कोई नियम लागू नहीं होता, अजगर वृत्ति (अनायास प्राप्त वस्तु का आहार करने वाला) धारण करके पतित को छोड़ कर सब वर्णों में से भिक्षा ग्रहण कर लेता है यह अपने स्वरूपानुसन्धान में तत्पर रहता है।

प्रश्न– इन छः प्रकार के संन्यासों का किस को अधिकार है ?

उत्तर– मन्द वैराग्यवानों को तो संन्यास का अधिकार ही नहीं है। तीव्र वैराग्य वाले को कुटीचक संन्यास का अधिकार है। मृदु–तीव्रतर वैराग्य वाले को हंस संन्यास का अधिकार है। तथा दृढ़ तीव्रतर वैराग्य वाले मुमुक्षु को परमहंसादि संन्यास का अधिकार है इसके भी विविदिषा संन्यास तथा विद्वत्– संन्यास ऐसे दो भेद हैं।

प्रश्न– विविदिषा संन्यास तथा विद्वत् संन्यास का लक्षण क्या है ?

उत्तर– शम दयादि साधन सम्पन होकर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से जो संन्यास लिया जाय वह विविदिषा संन्यास है। इसमें संन्यासी को सब प्रकार से विधि–निषेधादि का पालन करना पड़ता है तथा लोक संग्रहार्थ (कल्याणार्थ) विहित कर्मों का अनुष्ठान करना पड़ता है। इसे क्रियमाण कर्म संन्यास या विविदिषा संन्यास कहते हैं। गृहस्थादि आश्रमों में श्रवणादि से जिसको ब्रह्म साक्षात्कार हो चुका है, जिसका चित्त शान्त है ऐसा पुरूष जीवन्मुक्ति के उद्‌देश्य से जो संन्यास ले तो उसे विद्वत् संन्यास या ज्ञान संन्यास कहते हैं। इसमें त्याग ही मोक्ष का मुख्य साधन है।

''त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम्''।

प्रश्न– आपने कहा कि 'हंस सन्यासी' असंक्लृप्त मधुकर अन्न का भोजन करता है तो असंक्लृप्त भिक्षा का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– संन्यासोपनिषद् में पाँच प्रकार की भिक्षा का वर्णन है यथा माधुकरी–प्राक्प्रणीत–अयाचित–तात्कालिक और उपपन्न।

माधुकरं असंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम्।
तात्कालिकं चोपपन्नं मैक्षं पंचविधं स्मृतम्।।

मन में किसी प्रकार का संकल्प न करके तीन पाँच या सात घरों में से मधुकर के समान भिक्षा को असंक्लृप्त (यानी संकल्प रहित) असंक्लृप्त मधुकरी भिक्षा कहा है।

प्रश्न– संन्यास लेने का अधिकार किस को नहीं है ?

उत्तर– षंढ, पतित, अंगहीन, स्त्रैण, वधिर, बालक, मूक, पाखण्डी, नास्तिक अग्निसेवन रहित, इत्यादि मनुष्यों को संन्यास का अधिकार नहीं है। इसमें भी महापातकी तथा व्रात्य संस्कार हीन को भी संन्यास नहीं देना चाहिए व्रत यज्ञ तप दान होम स्वाध्याय रहित तथा सत्य शौच से भ्रष्ट को भी संन्यास नहीं देना चाहिये।

प्रश्न– संन्यास शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर– संन्यास– **''सम्यक् न्यासः''** सम्यक् त्याग ही संन्यास है। **''त्यागेनैके-ऽमृतत्त्वमानशुः''** (कैव. उ.) बहुत से ज्ञानी त्याग से अमृतत्त्व को प्राप्त हुए हैं। त्याग के बिनां संन्यासी की दिव्यगति नहीं है। अतः मोक्ष के लिये प्रतिपादित समस्त साधनों में त्याग ही उत्तम साधन है।

प्रश्न– संन्यास ग्रहण करने की विधि क्या है ?

उत्तर– संन्यास दीक्षा ग्रहण करने से पहले संन्यास के अधिकार की सिद्धि के लिए निष्काम कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। यज्ञ–दान–तप–व्रत तीर्थाटन–गंगास्नान, गायत्री पुरश्चरण, ब्रह्मोपासना तथा प्रणव जप पूर्वक अन्तःकरण की शुद्धि सम्पादन करके वैराग्यवान होकर गुरु के समीप जाकर संन्यास दीक्षा के लिये प्रार्थना करे। गुरु का अनुमोदन लेकर संन्यास के इच्छुक को अपने आत्मीय जनों को सन्तुष्ट करके, कुटुम्बियों को सान्त्वना देकर पुत्रों आदि में धनादि का यथायोग्य विभाग करके उन्हें आशीर्वाद देकर, सगे सम्बन्धियों को निम्न वाक्य कहें– **''शृण्वन्तु सर्वे न मे कश्चित्, नाहं वा कस्यचिदिति''**। सब सुनो, मेरा कोई नहीं है अथवा मै किसी का नहीं हूँ। इस प्रकार कह कर उत्तरायण यानी उत्तर दिशा में घर से निकल जाय। उसके बाद संन्यास ग्रहण से पहले गुरु की आज्ञा लेकर समस्त पातकों की शान्ति के लिए प्रायश्चित्त (गोदान–पंचगव्यप्राशन) करे। शिखा रखकर केश श्मश्रु, लोम, नखादि का परित्याग करके स्नान तथा पितृतर्पण करे। यज्ञोपवीत धारण करे। यहाँ प्रायश्चित से लेकर सब क्रियाएँ किसी योग्य विद्वान् पुरोहित से कराये। पुनः वेदोपनिषदादि के पारायण द्वारा ब्रह्मयज्ञ करके उपवास और रात्रि–जागरण करके निरन्तर गायत्री जप करके होमाग्नि का रक्षण करे। ये समस्त क्रियाएँ एक दिन या अधिक दिन में भी हो सकती हैं। संन्यास दीक्षा के लिए शिष्य निर्धारित दिन में ब्राह्म मुहूर्त में आचार्य के द्वारा विरजा होम की विधि करवा कर प्रेषोच्चारकाचार्य सहित गंगादि तीर्थ में जाकर वहाँ

जलीय सब क्रियाएँ पूर्ण करके एषणा–त्रय से विमुक्त होकर पूर्वाभिमुख होकर भुजा ऊँची उठाकर प्रेषोच्चार करे–

ॐ भूः संन्यस्तं मया ॐ भुवः संन्यस्तं मया,
ॐ स्वः संन्यस्तं मया, ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया।।

इस प्रकार तीन बार मन्द मध्यम और उत्तम स्वर से बोलकर ''''**ॐ अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा।**'' ऐसा बोलकर पूर्व दिशा में पूर्ण जलांजलि छोड़े और मौन होकर शिखा के लिये रखे गये केश उखाड़कर यज्ञोपवीत भी उतार कर हाथ में लेकर ''**वेदान्तविज्ञान–सुनिश्चितार्थाः**'' इस श्रुति से शिखा, केश और यज्ञोपवीत एकत्र करके ''**ॐ आपो वै सर्वा देवता सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा। ॐ भूः स्वाहा।।**''

इस मंत्र से पानी के साथ जल में छोड़ दे। इसके बाद प्रणव का जप करते हुए जल से बाहर भूमि पर उत्तराभिमुख होकर वस्त्रों का त्याग करके दिगम्बर रूप में सात पद गमन करे इसके बाद निर्वाध ब्राह्मी स्थिति में स्थित रहें ।

यदि विविदिषु हो तो गुरु की आज्ञा से उनके पास में रहे। आचार्य लौकिक लज्जा निवारणार्थ आज्ञा दें तो उसके अनुसार कौपीन–काषायवस्त्र धारण करके आचमनं करके '**ॐ इन्द्रस्य**' इत्यादि ये दो मंत्र बोलकर दण्ड ग्रहण करे और प्रणव का उच्चारण करके कमण्डलु धारण करे। फिर समित्पाणि होकर गुरू के पास जाकर नमस्कार करके ''**अधीहि भगवो ब्रह्मेति**'' प्रार्थना करे, फिर गुरु साधन सम्पन्न शिष्य को तत्त्वतः ब्रह्मोपदेश करे तथा द्वादश प्रणव के द्वारा अभिमंत्रित शंख के जल से ''**ॐ ब्रह्म शान्तिः**'' इत्यादि मंत्र बोलकर तर्जनी और अंगुष्ठ के द्वारा दर्भ लेकर शंख के जल से शिष्य के शिर पर अभिषेक करे। सब मंत्र तीन बार बोलकर गुरु शिष्य के शिर पर हाथ रखकर ''**ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः**'' इत्यादि

पुरुष सूक्त का पाठ करके पूर्वाभिमुखी शिष्य के दक्षिण कान में गुरु उत्तराभिमुख होकर प्रणव का उपदेश करे तथा उसका अर्थ समझाकर स्वकीय वेदस्थ महावाक्य का उपदेश करके उसका अर्थ समझाकर योगपट्टविधि करे।

योगपट्टविधि

प्रश्न– योगपट्टविधि क्या है ?

उत्तर– स्वसम्प्रदाय परिज्ञान संकेत को योगपट्ट कहते हैं परमात्मा के साथ जीवात्मा का एकीकरण योग है। अन्तिम लक्ष्यभूत यह पट्ट है। ऐसे योगयुक्त पद की प्राप्ति का संकेत योगपट्ट है अभिधान यानी नाम है। कृपालु गुरुदेव के द्वारा दिया हुआ अपना नाम, गुरुदेव का मंगलमय परिचय और स्वसम्प्रदाय परिज्ञान इत्यादि का योगपट्ट में अन्तर्भाव है अर्थात् गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार, जो परिचय देना आवश्यक है वह देना योगपट्ट यानी नाम है।

108 का स्पष्टीकरण

प्रश्न– संन्यासी के नाम को योगपट्ट कहा जाता है यह तो जाना, परन्तु संन्यासी महात्माओं के नाम के आगे 108 अथवा 1008 लिखा जाता है यह क्यों? तथा माला के मनके भी 108 होते हैं अधिक नहीं या कम भी नहीं, इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर– एक की संज्ञा ब्रह्म की संज्ञा है। वेद में कहा है कि ''एकं सत्'' अर्थात् सत् एक ही है और वह ब्रह्म है। अतः सत्य स्वरूप ब्रह्म एक है '108' में '1' का अंक ब्रह्म का बोधक है तथा '0' जीव की संज्ञा है। जीव ब्रह्म से भिन्न कोई स्वतंत्र द्रव्य नहीं है। वह ब्रह्मस्वरूप ही है। ''**जीवो ब्रह्मैव**'' इसलिए '0' यह उसकी संज्ञा है तथा '8' का अंक अष्टधा प्रकृति का बोधक है। सांख्य में कही हुई मूल प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार और शब्दादि पंचतन्मात्रा, जिन्हें अपंचीकृत सूक्ष्म पंच–भूत भी कहते हैं ये मिलकर आठ की संज्ञा होती है। इस अष्टधा प्रकृति के

ऊपर जो विजय प्राप्त कर लेता है और गुणातीत होकर ब्रह्मभाव में स्थिति करता है। ऐसे संन्यासी महात्मा के नाम के आगे '108' लिखा जाता है। सामान्य महात्मा की अपेक्षा से जो विशिष्ट महापुरूष होते हैं उनके नाम के आगे '108' लिखने का एक प्रकार का रिवाज ही हो गया है। रही बात '1008' की तो यह कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि '0' तो जीव की संज्ञा है अतः एक '0' जीरो एक जीव का बोध कराती है ऐसे '00' अनेक जीरो अनेक जीवों का बोध करायेगी। एक जीववाद तथा अनेक जीववाद के विवाद शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। एकात्मभाव को सूचित करने के लिये '0' एक जीरो लगाकर '108' की संज्ञा समुचित है '1008' नहीं। तो भी कुछ महात्माओं अथवा महामण्डलेश्वरों के नाम के आगे '1008' लिखा जाता है वह केवल विशेष मान के लिये है। इसका कोई विशेष हेतु नहीं है।

प्रश्न– अब कृपा करके 108 की पूर्णता तथा माला के 108 मणियों के विषय में प्रकाश डालिये।

उत्तर– यह ''108'' पूर्ण अंक है। ईश्वर वाचक अनेक नामों का पर्यवसान इस अंक में होता है ब्रह्म, मनुष्य–माला आदि नामों का भी ''108'' में अन्तर्भाव है, जिससे अन्य अनेक संख्याएँ विद्यमान होते हुए भी माला में ''108'' मणियों का सन्निवेश किया जाता है। इस रहस्य को समझने के लिये अपनी बाराक्षरी (बाराखड़ी) का उपयोग करना पड़ेगा। बाराक्षरी में ''16'' स्वर तथा ''36'' व्यंजन हैं। इन सबको क्रमशः लिखकर इनके नीचे क्रमांक लिखें और शब्दों की संधि अलग करके उनके क्रमांक लिखकर उनका जोड करें, तो प्रत्येक का जोड़ ''108'' ही आयेगा। इसीलिये ''108'' का ही महत्त्व है। देखिये–

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	लृ	ॡ
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः				

11 12 13 14 15 16 ये 16 स्वर हैं

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श
21	22	23	24	25	26	27	28	29	30
ष	स	ह	त्र	क्षं	ज्ञ				
31	32	33	34	35	36 ये 36 व्यंजन हैं।				

ब्रह्म पूर्ण है तथा 108 का अंक भी पूर्ण है अब देखना यह है कि इस 108 में ब्रह्म शब्द का अन्तर्भाव है कि नहीं? देखिये– शब्द है ''**ब्रह्म**'' इसकी संधि अलग करो। ''**ब र ह म**'' अब संधि छूटी किये हुए प्रत्येक वर्ण को देखो वह कितने क्रमांक में आता है यथा–

ब	र	ह	म	
23	27	33	25	जोड़ 108

इस प्रकार 108 पूर्ण ब्रह्म की संज्ञा है जो समग्र वेद–वेदांग एवं शास्त्रों का कुल जोड़ है। सार सर्वस्व है।

पूर्ण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ संसार भी पूर्ण ही है, इसकी बोधक संख्या भी 108 है । देखिये–

संसार – स + अं + स – आ – र – इसका क्रमांक

क्रमांक – 32 15 32 2 27 – 108 जोड़

निश्चय हुआ न, कि पूर्ण में से उत्पन्न हुआ संसार भी पूर्ण ही

है। कोई कहेगा कि ''**पूर्णमदः पूर्णमिदं**'' पद में संसार का बोधक '**इदं**' पद है जिसका अर्थ ''**जगत्**'' होता है तो क्या इसका अन्तर्भाव भी 108 में है क्या? तो कहना पड़ेगा – हाँ – देखिये –

इसके अक्षर – ज ग त

क्रमांक – 8 3 16 – 27 जोड़

अब 108 का चार से भाग करो तो 27 आया न, ब्रह्म के लिये श्रुति में कहा है कि –

''**अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात्।**'' (माण्डूक्य)

इस प्रकार चतुष्पाद ब्रह्म का चौथा पाद जगत् है। ''**पादोऽस्य विश्वाभूतानि, एकांशेन स्थितो जगत्।**'' वेद और गीता में जगत् को ब्रह्म का एक पाद कहा है, जो 108 का चतुर्थांश 27 ही जगत् आयेगा न । अस्तु इस प्रकार 108 की पूर्णता का ज्ञान हुआ।

श्रुति स्मृति के प्रमाण मिले। निर्गुण ब्रह्म और जगत् इन दोनों का अन्तर्भाव 108 में हुआ। अब प्रकृति–पुरूष, जो शिव पार्वती कहे जाते हैं ''**मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।**'' इस श्रुति के अनुसार अपर ब्रह्म ''**युगल**'' स्वरूप में जो स्थित है तथा ईश्वरावतार श्री राम–कृष्ण–सीताराम–राधाकृष्ण आदि युगल स्वरूपों का भी अन्तर्भाव इसी 108 की संख्या में हो जाता है देखिये–

शिवगिरिजा

	श	इ	व	ग	इ	र	इ	ज	आ	
क्र.	30	3	29	3	3	27	3	8	2	– 108 जोड

सीताराम

	स	ई	त	आ	र	आ	म	
क्र.	32	4	16	2	27	2	25	– 108 जोड़

राधिकाकृष्ण

	र	आ	ध	इ	क	आ	क	ऋ	ष	ण
क्र.	27	2	19	3	1	2	1	7	31	15

–108 जोड़

इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म और विशिष्ट ब्रह्म यानी वैदिक तथा पौराणिक निर्गुण ब्रह्म तथा अपर ब्रह्म मायाविशिष्ट चेतन परमात्मा के युगल स्वरूपों का भी अन्तर्भाव 108 में होता है। अब ईश्वर प्राप्ति के लिए मिला हुआ अपना यह मनुष्य शरीर जो देवों को भी दुर्लभ है, जो परमपद की प्राप्ति के लिये परम साधन है, उसका तथा जिस माला को लेकर जप करके अपने सिद्धि प्राप्त करके मोक्ष पद पाते हैं, वह मनुष्य और माला का भी अन्तर्भाव 108 में है। यह देखिये –

मनुष्य

सन्धिविच्छेद – म न ऊ ष य

क्रमांक – 25 20 6 31 26 – 108 जोड़

जापन माला

संन्धिविच्छेद– ज आ प न म आ ल आ

क्रमांक – 8 2 21 20 25 2 28 2 – 108 जोड़

ब्रह्म के निराकार, साकार, निर्गुण–सगुण इन दोनों स्वरूपों का अन्तर्भाव 108 में है और मनुष्य तथा जापनमाला का अन्तर्भाव भी उक्त संख्या में हो जाता है तो फिर माला में '**108**' मनका हों तो इसमें क्या आश्चर्य है तथा इसमें शंका भी क्या? अस्तु अपना सनातन–धर्म बहुत विशाल है वह किसी की अवगणना नहीं कर सकता, सबका समावेश इसमें हो जाता है यह सबको अपने स्वरूप में समा ले– यह आनन्द की बात है। जैसे सब नदियाँ समुद्र में समा जाती हैं ऐसे सब धर्म–सम्प्रदाय सनातन धर्म में मिलकर शान्ति प्राप्त करें, इस

में शंका नहीं है। अतः एक सनातनधर्म का ही आश्रय करना श्रेयस्कर है।

प्रश्न– संन्यासी का कर्तव्य क्या है?

उत्तर– परमहंस परिव्राजक संन्यासी काषायवस्त्र–दण्ड–कमण्डलु भस्म–रुद्राक्ष की माला धारण करे, बाल–नख न रखे। मुण्डिल रहे, अद्रोही होकर भिक्षा से प्राप्त भोजन लेकर उसी में संतुष्ट रहे। एक घर की भिक्षा न ले, तीन पाँच या सात घर की भिक्षा ले। मधुकरी भिक्षा का भोजन करने वाले संन्यासी को अमृत समान सोमपान का फल मिलता है। यति का कर्तव्य है कि वह संग्रह न करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे, आसन–शयनाादि भूमि पर करे, काम–क्रोध–हर्ष–रोष–क्षोभ–मोह दम्भ–दर्प–ममत्व–अहंकार आदि का त्याग करे, अकेला या दो मिलकर साथ में रहें, आठ मास विचरण करे चातुर्मास में एक जगह स्थिर रहे। पूर्वाश्रम के लोगों का संग न करे। आसक्ति का त्याग करे। कहा भी है –

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।। (मुं. उ. 4/2/6)

वेदान्त के विचार से आत्मतत्त्व का अच्छी प्रकार से निश्चय कर लेने वाले और संन्यास योग से अर्थात् सब कर्मों के त्याग रूप योग से यत्न करने वाले शुद्धान्तःकरण वाला यति देहत्याग के बाद ब्रह्मलोक में परम अमरभाव को प्राप्त होकर समन्ततः मुक्त हो जाते हैं अर्थात् उनके लिये कोई भी बन्धन शेष नहीं रहता, वे जीवन्मुक्त होकर विदेह मुक्त हो जाते हैं।

निरस्तरागाः निरपास्तभोगाः शान्ताः सुदान्ता यतयो महान्तः।
विज्ञाय तत्त्वं परमेतदन्ते प्राप्ताः परां निर्वृत्तिमात्मयोगात्।।

जिनको किसी वस्तु में राग नहीं है, जिनकी विषय भोग की लालसा का भी सर्वथा नाश हो गया है तथा जिनका चित्त शान्त एवं इन्द्रियाँ संयत हैं वे महात्मा संन्यासी ही इस परमतत्त्व को जानकर अन्त में इस अध्यात्मयोग के द्वारा परम–शान्ति को प्राप्त हुए हैं। आज इस कोटि के निर्द्वन्द्व निःस्पृह–निर्मम–शान्त–शुद्ध सत्यनिष्ठ–एकात्मनिष्ठ–त्याग–वैराग्य सम्पन्न शमादि साधन युक्त मेधावी संन्यासी ब्रह्म की उस दिव्यगति को प्राप्त हो सकते हैं। उपनिषदों में तथा स्मृतियों मे संन्यासियों के धर्मों का तथा संन्यास का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। यहाँ तो मात्र दिग्दर्शन करा दिया है।

श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग को श्रुति भगवती ने मुमुक्षु की मुक्ति के लिये साक्षात् हेतु बताया है, जो श्रद्धा आदि में स्थित हो जाता है वह अविद्याकल्पित देह–बन्धन से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न– क्या संन्यासी को स्नान–संध्या–मंत्रजप–अग्निहोत्र–दान–तपादि नहीं करने चाहिए ?

उत्तर– क्यों नहीं करने चाहिए, अनासक्तभाव से विहित सब क्रियाएँ अवश्य करनी चाहिएँ। हाँ, जब संन्यसी को ज्ञानदशा में आत्मसाक्षात्कार हो जाय तब देहाभिमान न रहने के कारण स्नानादि की सब क्रियाएँ अपने आप छूट जाती हैं, छोड़नी नहीं पड़ती।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
नैवास्ति किंचित्कर्तव्यमस्तिचेन्न स आत्मवित्।। (शिवधर्मोत्तर)

ज्ञानामृत का पान करके तृप्त हुए कृतार्थ योगी के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता और यदि है तो वह आत्मवित् ही नहीं है। भगवान् श्री कृष्ण जी गीता अध्याय 3 के श्लोक 17–18 में कहते हैं– जो मनुष्य आत्मा में ही प्रीतिवाला, आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही संतुष्ट हो तो उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है क्योंकि इस संसार में उस ज्ञानी पुरूष को कर्म करने या न करने से कुछ भी प्रयोजन नहीं

है, उसका प्राणिमात्र के साथ स्वार्थ का किंचित्–मात्र सम्बन्ध नहीं रहता, तो भी निःस्वार्थ भाव से केवल लोक हितार्थ वह कर्म करता है।''आगे चलकर भगवान् कहते हैं–''मुझे तीनों लोकों में किंचित् भी कर्तव्य नहीं है, तो भी मैं सावधान होकर कर्म न करूँ तो मनुष्य भी मेरे वर्ताव के अनुसार कर्म छोड़कर भ्रष्ट हो जाएँ और मैं वर्णसंकर प्रजा को उत्पन्न करने वाला तथा प्रजा का महान् हनन करने वाला बनूँ।''

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। (गीता 3/36)

इससे ज्ञानी पुरूष का कर्तव्य है कि वह कर्मो में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मो में अश्रद्धा उत्पन्न न करे। किन्तु स्वयं परमेश्वर के स्वरूप में स्थित रहता हुआ सब कर्मो को यथावत् करता हुआ उनसे भी कर्म करावे। इस कर्मयोग के रहस्य को अच्छी प्रकार जानने के बाद संन्यासी को कर्म करने के विषय में होने वाली शंका निवृत्त हो जाती है।

प्रश्न– **हमने महात्माओं से सुना है कि श्रुति–स्मृतियों में संन्यासियों के लिए कर्म करने का निषेध है, क्योंकि संन्यासी ज्ञानी होते हैं और ज्ञान से मोक्ष होता है इसलिए संन्यासी को कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती। श्रुति में कहा है कि – संन्यासी जातरूप–दिगम्बर–निर्ग्रन्थ निष्परिग्रही होकर सबकर्मों का त्याग करके प्राणधारणार्थ लाभालाभ में सम होकर करपात्र या उदर पात्र में भिक्षान्न ग्रहण करे। स्त्री पुत्रादि का त्याग करे। शिखा–सूत्र–स्वाध्याय–व्रत–होमादि को छोड़ दे। लौकिकाग्नि को उदराग्नि में स्थापित करे। गायत्री को अपनी वाणी रूपी अग्नि में स्थापन करे। पात्र–पवित्री दण्डादि सहित सब लोकों को छोड़कर अमंत्रवत् आचरण करे। आरुणिकोपनिषद् के इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि संन्यासी को सब कर्मों का त्याग कर देना चाहिए इसका क्या अभिप्राय?**

उत्तर– धन्य हे महाशय! क्या आपने इसी उपनिषद् में यह नहीं पढ़ा कि संन्यासी **''त्रिसन्ध्यादौ स्नानमाचरेत्''** त्रिकाल सन्ध्या के समय स्नान करे। तथा **''संधिसमाधावात्मन्याचरेत्''** संधि में समाधि स्थिति में आत्मा की परमात्मा के साथ संधि यानी योग साक्षात्कार करे। तथा **''सर्वेषु वेदेष्वारण्यकमावर्तयेदुपनिषदमावर्तयेदिति''** सब वेदों में आरण्यक अर्थात् ज्ञानकाण्ड उपनिषदों का आवर्तन करे, वेणुदण्ड, कौपीन, कमण्डलु आदि धारण करे। यज्ञ और देवता संबन्धी वेदमंत्रों और वेदान्तों में कहे हुए आध्यात्मिक विषयों का सदा चिन्तन करे (मनु 6/83) यह धर्म संयतात्मा: संन्यासियों का है (मनु० 6/86)। इससे सिद्ध होता है कि संन्यासियों को अकर्मण्य नहीं रहना चाहिए।

प्रश्न– मनुस्मृति में वानप्रस्थाश्रमियों के धर्मो का वर्णन करने के बाद संन्यासाश्रमियों के धर्मो का वर्णन किया है– वहाँ लिखा है कि संन्यासी सब कर्मो का परित्याग करके मुक्त होता है तो क्या वह ठीक नहीं है ?

उत्तर– **अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।**
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।। (गीता 6/1)

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि जो यज्ञानुष्ठान रूप अग्नि सेवन एवं शास्त्र विहित शुभ कर्मों का परित्याग कर देता है वही संन्यासी और योगी है, ऐसी बात नहीं है, परन्तु जो कर्मों के फल की इच्छा का त्याग करके विहित कर्मों का अनुष्ठान करता है वही संन्यासी और योगी है। और भी देखिये–

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः (गीता 18/22)

यज्ञ–यागादि काम्यकर्मों के त्याग को ही पण्डित संन्यास कहते हैं। अन्य भी कई विद्वान् नित्य–नैमित्तिक कर्म करते हुए कर्मों के फल की इच्छा न करना ही संन्यास है, ऐसा कहते हैं। अतः संन्यासी को कर्म करने का निषेध नहीं है। उलटा निष्काम भाव से अनासक्त होकर शुभ कर्म करने का आदेश है।

प्रश्न– तो क्या संन्यासी से कर्म त्याग नहीं हो सकता ?

उत्तर– नहीं, देहाभिमानी कोई भी संन्यासी कर्मत्याग नहीं कर सकता। मान लो कि ज्ञानी–संन्यासी को कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु क्या संन्यासी या अन्य कोई मनुष्य किसी समय में कर्म किये बिना रह सकता है? नहीं रह सकता–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। (गीता 3/5)

कोई भी प्राणी कर्म किये बिना एक क्षण भी स्वस्थ नहीं रह सकता। प्रकृति से उत्पन्न गुण मनुष्य के द्वारा बलात् कर्म करवाते ही हैं। रही बात सन्यासियों की– देहाभिमान रहित पूर्णप्रज्ञ संन्यासी तो सब कुछ करता हुआ भी कर्तापन के अभिमान से रहित होकर द्रष्टा मात्र बना रहता है और समझता है कि इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय में वर्त रही हैं, मै आत्मा असंग हूँ। यह ज्ञानी संन्यासी की भावना होती है, परन्तु वह भी देखना–सुनना–खाना–पीना–घूमना फिरना बन्द नही कर देता। देह–इन्द्रियाँ–प्राण–मन–बुद्धि आदि ज्ञानी के भी सक्रिय रहते हैं। अतः ज्ञानी सबका द्रष्टा बना रहता है। अतः संन्यासी को कर्म के त्याग की आवश्यकता नहीं है। आत्मस्वरूप में स्थित रहते हुए ही अनासक्त भाव से सब कुछ करता है। ऐसे ही विहित शुभ कर्मो के करने से संन्यासी को कोई रोक नहीं सकता ।लोक संग्रहार्थ सर्वभूतहितेरंत होकर यज्ञ–दान–तपादि विहित शुभ कर्मो का अनुष्ठान करता हुआ उनका फल ईश्वरार्पण करके संन्यासी सब कर्मों के बन्धन से छूट कर सत्य–ज्ञान–आनन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करके जीवन्मुक्ति का आनन्द लेता है इसमें शंका नहीं है। श्रुति का आदेश है –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। (यजु. 40/2)

इस जगत् में यज्ञ–दान आदि निष्काम–कर्म करते हुए ही सौ

वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए ऐसा करने से तुझ नर को कर्म का लेप नहीं होगा, इसके अतिरिक्त कर्म बन्धन से छूटने का अन्य कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार श्रुति–स्मृति–युक्तियों से यह सिद्ध होता है कि कर्म न करने की अपेक्षा यज्ञ, जप, तप, स्वाध्याय व्रतादि निष्काम कर्म करना उचित है। लोक कल्याण करना भी तो ज्ञानियों का कर्तव्य है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण, राजा जनक, महर्षि याज्ञवल्क्य एवं श्री शंकराचार्य महाराज का जीवन इसका साक्षी है। जगद्गुरु आदि श्री शंकराचार्य तथा श्री सुरेश्वराचार्य आदि उनके शिष्य मंडल का ज्ञान संन्यास था, तो भी उन्होंने कर्म का त्याग नही किया, सारे भारत में घूम घूम कर धर्म का एवं तत्त्व ज्ञान का तथा भगवद्भक्ति का प्रचार किया। भारत की धर्म–व्यवस्था को सुदृढ़ किया। राज्य व्यवस्था को बदलकर वैदिक तत्त्वज्ञान पूर्ण बनाकर समाज को एवं देश को कर्म उपासना तथा ज्ञान का पुट देकर कर्म समन्वय में ढालकर जगत् का कल्याण किया। भाष्यों का निर्माण करके श्री शंकराचार्य नें विद्वज्जगत् का जो उपकार किया है हम उनका ऋण चुका नहीं सकते। हम ऋणी रहते हुए हीं उसके मधुर फल का उपयोग करके आनन्द में निमग्न हैं। अतः जब तक देहाभिमान है तब तक संन्यासी को सत्–कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। निष्काम भाव से लोक कल्याणार्थ भी कर्म करना उचित है। वर्तमान में भी मननशील महामान्य विद्वान् संन्यासी महात्मा कार्यक्षेत्र में उतर कर सूर्य के जैसे तेजस्वी और चन्द्रमा के जैसे शान्त अनुद्विग्न होकर अव्याहत गति से दिव्यकर्म करके जगत् का उद्धार करने में तत्पर हैं, जो अनुकरणीय एवं उपादेय है।

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीपान्र्तगत चतुर्थ किरण समाप्त।।

ॐ शिवः सर्वं सर्वत्र

प्रश्नोत्तर प्रदीप

पंचम किरण

श्रीमदाद्य श्रीशंकराचार्य प्रणीत प्रश्नोत्तर–रत्नमालिका

क: खुल नालंक्रियते, दृष्टादृष्टार्थसाधनपटीयान्।
अमुया कण्ठस्थितया, प्रश्नोत्तररत्नमालिकया।।1।।

प्रश्न– हे गुरुदेव! कण्ठ में की हुई इस प्रश्नोत्तर–रत्नमालिका से कौन शौभा को नहीं पाता है?

उत्तर– इसलोक एवं परलोक के विषयभोगों के साधन में कुशल मनुष्य अर्थात् संसारविषयभोगासक्त मनुष्य आत्मकल्याणमय सदुपदेश धारण नहीं कर सकता।

भगवन्! किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।
को गुरुरधिगततत्त्व:, शिष्यहितायोद्यत: सततम्।।2।।

प्रश्न– हे भगवन्! उपादेय (ग्रहण करने योग्य) क्या है?

उत्तर– गुरु का वचन।

प्रश्न– हेय (त्याग करने योग्य) क्या है?

उत्तर– बुरा कर्म।

प्रश्न– गुरु कौन है?

उत्तर– जिसने परमातत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है, एवं जो शिष्यों के कल्याण के लिये निरन्तर यत्नशील रहता है, वह गुरु है।

त्वरितं किं कर्तव्यं विदुषां संसारसंततिच्छेद:।
किं मोक्षतरोर्बीजं सम्यग्ज्ञानं क्रियासिद्धम्।।3।।

प्रश्न– विद्वानों को अतिशीघ्र क्या करना चाहिए?

उत्तर– संसार के जन्म–मरण रूपी प्रवाह का उच्छेद (विनाश)।

प्रश्न– **मोक्षरूपी वृक्ष का बीज क्या है?**

उत्तर– निष्ठा (धारणा) से युक्त यथार्थ आत्मज्ञान।

कः पथ्यतरो धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरणा गुरुषु।।4।।

प्रश्न– **अतिशय पथ्य (पालने योग्य) क्या है?**

उत्तर– सनातन धर्म।

प्रश्न– **इस लोक में पवित्र कौन है?**

उत्तर– जिसका मन शुद्ध है।

प्रश्न– **पण्डित कौन है?**

उत्तर– जो सत् और असत् का विवेकी है।

प्रश्न– **विष क्या है?**

उत्तर– गुरुओं में अश्रद्धारूपी तिरस्कार।

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।
किं मनुजेष्विष्टतमं स्वपरहितायोद्यतं जन्म।।5।।

प्रश्न– **इस असार संसार में सार क्या है?**

उत्तर– बार बार चिन्तन किया हुआ परमात्मतत्त्व।

प्रश्न– **मनुष्यों से अतिशय करके अभिलषित क्या है?**

उत्तर– अपना और अन्य का कल्याण के लिये सदा प्रयत्नशील जीवन।

मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः।
का भववल्ली तृष्णा को वैरी यस्त्वनुद्योगः।।6।।

प्रश्न– **मदिरा की भाँति अचेतन–विमूढ करने वाला कौन है?**

उत्तर– शरीर, स्त्री, पुत्र, धनादि में स्नेह।

प्रश्न– **शत्रु कौन है?**

उत्तर– शब्दादि पाँच विषय।

प्रश्न– संसार की जड़ क्या है?

उत्तर– तृष्णा।

प्रश्न– वैरी कौन है?

उत्तर– अपने कल्याण के लिये पुरुषार्थ न करने वाला।

कस्माद्भयमिह मरणादीशादिह को विशिष्यतेऽरागी।
कः शूरो यो ललनालोचनवाणैर्न च व्यथितः।।7।।

प्रश्न– किससे भय रखना चाहिये?

उत्तर– मरण एवं ईश्वर से।

प्रश्न– इस संसार में श्रेष्ठ कौन है?

उत्तर– विरक्त महात्मा।

प्रश्न– शूरवीर कौन है?

उत्तर– जो स्त्रियों के कटाक्षरूपी बाणों से व्यथा को प्राप्त न हो।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिह युज्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम।।8।।

प्रश्न– कौन कान रूपी अञ्जलि से पान करने योग्य अमृत है?

उत्तर– यथार्थ उपदेश।

प्रश्न– बड़प्पन की जड़ क्या है?

उत्तर– किसी से कुछ भी न माँगना।

किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दुःखमसन्तोषः किं लाघवमधमतो याञ्चा।।9।।

प्रश्न– गहन (जानने के लिये असंभव) क्या है?

उत्तर– स्त्रियों का चरित्र।

प्रश्न– चतुर (कुशल) कौन है?

उत्तर– जो स्त्रियों से खण्डित नहीं हुआ है।

प्रश्न– दु:ख क्या है?

उत्तर– असंतोष।

प्रश्न– छोटापन क्या है?

उत्तर– अधम–संसारियों से याचना करना।

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाठतोऽप्यनभ्यास:।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तो:।।10।।

प्रश्न– जीवन क्या है?

उत्तर– दोषरहित।

प्रश्न– जड़पना क्या है?

उत्तर– पढ़ लेने पर भी अभ्यास न करना।

प्रश्न– जागता कौन है?

उत्तर– विवेकी।

प्रश्न– प्राणी की निद्रा क्या है?

उत्तर– मूढपना।

नलिनीदलगतजलवत्तरलं किं यौवनं धनं चायु:।
कथय पुन: के शशिन: किरणसमा: सज्जना एव।।11।।

प्रश्न– कमल के पत्ते के ऊपर रहे हुए जल की तरह चंचल कौन है?

उत्तर– यौवन, धन और आयु।

प्रश्न– चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल एवं शान्त कौन है?

उत्तर– सज्जन महापुरुष।

को नरक: परवशता किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं प्रियं च किं प्राणिनामसव:।।12।।

प्रश्न– नरक क्या है?

उत्तर– परतन्त्रता।

प्रश्न– सुख क्या है?

उत्तर– संसार की तमाम आसक्तियों से वैराग्य होना।

प्रश्न– सत्य क्या है?

उत्तर– जिससे तमाम प्राणियों का कल्याण हो।

प्रश्न– प्रिय क्या है?

उत्तर– प्राणियों के प्राण।

कोऽनर्थफलो मानः का सुखदा साधुजनमैत्री।
सर्वव्यसनविनाशो को दक्षः सर्वथा त्यागी।।13।।

प्रश्न– अनर्थ फल वाला कौन है?

उत्तर– (अभि) मान।

प्रश्न– सुख देने वाली कौन है?

उत्तर– साधु पुरुषों के साथ मित्रता।

प्रश्न– सब प्रकार के कामादि व्यसनों के नाश करने में कुशल कौन है?

उत्तर– जो हर प्रकार से त्यागी है।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतं पापम्।।14।।

प्रश्न– मरण क्या है?

उत्तर– मूर्खपना।

प्रश्न– अमूल्य क्या है?

उत्तर– समय पर योग्य अधिकारी को शक्ति–अनुसार कुछ दिया जाय।

प्रश्न– मरण पर्यन्त शूल की तरह चुभने वाला कौन है।

उत्तर– छिपकर किया हुआ पाप कर्म।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु।।15।।

प्रश्न– कहाँ प्रयत्न करना चाहिए?

उत्तर– विद्याभ्यास में, सच्ची ओषधि में एवं सत्पात्र के दान में।

प्रश्न– उपेक्षा कहाँ करनी चाहिए?

उत्तर– खल (दुष्ट) मनुष्यों में, पराई स्त्रियों में तथा अन्य के धन में।

काऽहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न तु प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया करुणा दीनेषु सज्जने मैत्री।।16।।

प्रश्न– दिन रात चिन्तन करने योग्य क्या है?

उत्तर– संसार की असारता।

प्रश्न– कौन चिन्तन करने योग्य नहीं है?

उत्तर– स्त्री।

प्रश्न– आनन्द करने वाली कौन है?

उत्तर– दीन दुःखियों के ऊपर की हुई करुणा (दया) और सज्जन महापुरुषों के साथ की हुई मित्रता।

कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्य ह्यात्मा न शक्यते जेतुम्।
मूर्खस्य शंकितस्य च विषादिनो बा कृतघ्नस्य।।17।।

प्रश्न– कण्ठगत प्राण होने पर भी किसके मन का जय नहीं कर सकते हैं?

उत्तर– मूर्ख, संशयग्रस्त, खेदयुक्त और कृतघ्न मनुष्यों के मन का।

कः साधुः सद्वृत्तः कमधममाचक्षते त्वसद्वृत्तम्।
केन जितं जगदेतत्सत्यतितिक्षावता पुंसा।।18।।

प्रश्न– साधु कौन है?

उत्तर– सदाचारी।

प्रश्न– अधम (नीच) किसको कहते हैं?

उत्तर– दुराचारी को।

प्रश्न– इस जगत् को किसने जीत लिया है?

उत्तर– सत्यतत्त्व में निष्ठा रखने वाला तितिक्षु (सहनशील) पुरुष ने।

कस्मै नमांसि देवाः कुर्वन्ति दयाप्रधानाय।
कस्मादुद्वेगः स्यात्संसारारण्यतः सुधियः।।19।।

प्रश्न– देवता भी किसको नमस्कार करते हैं?

उत्तर– जिसके हृदय में विशेष रूप से दया रहती है, उसको।

प्रश्न– बुद्धिमान विवेकी को किससे उद्वेग (भय) होता है?

उत्तर– संसार रूपी जंगल से।

कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये पथि दृष्टादृष्टलाभाढ्ये।।20।।

प्रश्न– तमाम प्राणियों का समुदाय किसके वश में हो जाता है?

उत्तर– सत्य एवं प्रियभाषी, विनयशील महापुरुष के।

प्रश्न– कहाँ रहना चाहिए?

उत्तर– दृष्टलाभ (कीर्ति आदि) एवं अदृष्टलाभ (परमधाम प्राप्ति आदि) से युक्त, न्याय (धर्म) के मार्ग में।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यो हितानि न शृणोति।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति।।21।।

प्रश्न– अन्धा कौन है?

उत्तर– पापकर्म में प्रीति करने वाला।

प्रश्न– बहिरा कौन है?

उत्तर– जो हितकर वचनों को नहीं सुनता है।

प्रश्न– मूक कौन है?

उत्तर– जो समय़ पर प्रिय–भाषण करना नहीं जानता।

किं दानमनाकांक्षं किं मित्रं यो निवारयति पापात्।
कोऽलंकारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यम्।।22।।

प्रश्न– **दान क्या है?**

उत्तर– जिसमें प्रत्युपकार की आकांक्षा न हो।

प्रश्न– **मित्र कौन है?**

उत्तर– जो पाप–कर्म से रक्षा करे।

प्रश्न– **अलंकार क्या है?**

उत्तर– शील (सरल निष्कपट स्वभाव)।

प्रश्न– **वाणी का भूषण क्या है?**

उत्तर– सत्य–भाषण।

विद्युद्विलसितचपलं किं दुर्जनसंगतिर्युवतयश्च।
कुलशीलनिष्प्रकंपाः के कलिकालेऽपि सज्जना एव।।23।।

प्रश्न– **बिजली के समान चपल क्या है?**

उत्तर– दुष्टों की संगति और युवती स्त्रियाँ।

प्रश्न– **घोर कलिकाल में भी कुल से एवं शील से सदा अचल कौन है?**

उत्तर– सज्जन महापुरुष।

चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि तच्चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूततमसो विशेषेण।।24।।
दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागसमेतं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्।।25।।

प्रश्न– **चिन्तामणि के समान, इस लोक में दुर्लभ क्या है?**

उत्तर– चतुर्भद्र।

प्रश्न– **अज्ञान से रहित विद्वान् लोग विशेष रूप से चतुर्भद्र किसको कहते हैं?**

उत्तर– (1) प्रियवाणी सहित दान (2) गर्व से रहित ज्ञान (3) क्षमा से युक्त शौर्य (4) त्याग से युक्त धन, इन चारों को कल्याण के साधन होने से चतुर्भद्र कहते हैं।

किं शोच्चं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्तमौदार्यम्।
कः पूज्यो विद्वद्भिः स्वभावतः सर्वदा विनीतो यः।।26।।

प्रश्न– शोक करने योग्य कौन है?

उत्तर– वैभव होने पर भी कृपणता।

प्रश्न– प्रशंसा करने योग्य कौन है?

उत्तर– उदारता।

प्रश्न– विद्वानों से भी पूजा करने योग्य कौन है?

उत्तर– जो स्वभाव से सर्वदा विनयशील है।

कः कुलकमलदिनेशः सति गुणविभवेऽपि यो नम्रः।
कस्य वशे जगदेतत्प्रियहितवचनस्य धर्मनिरतस्य।।27।।

प्रश्न– कुलरूपी कमल को सूर्य के समान प्रफुल्लित करने वाला कौन है?

उत्तर– विद्या, दया आदि दैवीगुणरूपी षिभव होने पर भी जो नम्र है।

प्रश्न– यह समस्त जगत् किसके वश में है?

उत्तर– जो धर्म में प्रेम करता है और प्रिय एवं हितकर वाणी बोलता है, उसके।

विद्वन्मनोहरा का सत्कविता बोधवनिता च।
कं न स्पृशति विपत्तिः प्रवृद्धवचनानुवर्तिनं दान्तम्।।28।।

प्रश्न– विद्वानों के भी मन को हरण करने वाली कौन है?

उत्तर– बोधप्रद, ईश्वरमहिमा युक्त, सच्ची कविता और ब्रह्मविद्यारूपी वनिता (अर्थात् ज्ञान स्वरूपा स्त्री)।

प्रश्न– विपत्ति किसको स्पर्श नहीं करती है?

उत्तर– जो जितेन्द्रिय है यानी संयमी है, और ज्ञानवृद्ध–धर्मवृद्ध आदि।

कस्मै स्पृहयति कमला त्वनलसचित्ताय नीतिवृत्ताय।
त्यजति च कं सहसा द्विजगुरुसुरनिन्दाकरं च सालस्यम्।।29।।

प्रश्न– लक्ष्मी किसकी स्पृहा (इच्छा) करती है?

उत्तर– जिसके चित्त में आलस नहीं है और जो नीति से युक्त है, उसकी।

प्रश्न– लक्ष्मी सहसा किसको छोड़ देती है?

उत्तर– जो आलसी है और ब्राह्मण, गुरु तथा देवताओं की निन्दा करता है, उसको।

कुत्र विधेयो वासः सज्जननिकटेऽथवा काश्याम्।
कः परिहार्यो देशः पिशुनयुतो लुब्धभूपश्च।।30।।

प्रश्न– कहाँ निवास करना चाहिये?

उत्तर– सज्जन महापुरुषों के समीप में अथवा श्रीकाशीधाम में।

प्रश्न– किस देश को छोड़ देना चाहिये?

उत्तर– जो पिशुन (चुगलखोर) से युक्त एवं लोभी–कृपण राजा से युक्त देश है, उसको।

केनाशोच्यः पुरुषः प्रणतकलत्रेण धीरविभवेन।
इह भुवने कः शोच्यः सत्यपि विभवे न यो दाता।।31।।

प्रश्न– किससे मनुष्य शोक–रहित होता है?

उत्तर– नम्र–सरल सती स्त्री से और अच्छे मार्ग में जाने वाले वैभव से।

प्रश्न– इस भुवन में शोचनीय कौन है?

उत्तर– वैभव होने पर भी दान नहीं करता है, वह।

किं लघुतायाः मूलं प्राकृतपुरुषेषु या याञ्चा।
रामादपि कः शूरः स्मरशरनिहतो न यश्चलति।।32।।

प्रश्न– छोटेपन की जड़ क्या है?

उत्तर– विषयी–पामर मनुष्यों से याचना करना।

प्रश्न– भगवान् राम से भी महाशूरवीर कौन है?

उत्तर– जो कामदेव के बाण से ताड़ित होने पर भी चलायमान न हो।

किमहर्निशमनुच्चिन्त्यं भगवच्चरणं न संसारः।
चक्षुष्मन्तोऽप्यन्धाः के स्युर्ये नास्तिका मनुजाः॥33॥

प्रश्न– दिनरात किसकी चिन्ता करनी चाहिये?

उत्तर– भगवान् के परम पावन चरण कमलों की।

प्रश्न– किसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये?

उत्तर– संसार की।

प्रश्न– चक्षु होने पर भी अन्धे कौन हैं?

उत्तर– जो नास्तिक (ईश्वर, वेद एवं परलोक में विश्वास नहीं करने वाले) मनुष्य हैं, वे।

कः पंगुरिह प्रथितो व्रजति न यो वार्धके तीर्थम्।
किं तीर्थमपि च मुख्यं चित्तमलं यन्निवारयति॥34॥

प्रश्न– इस संसार में पंगु कौन प्रसिद्ध है?

उत्तर– जो वृद्ध होने पर भी काशी आदि स्थावर तीर्थ, और सन्तमहात्मारूपी जंगम तीर्थ में पाप–निवृत्ति के लिये नहीं जाता है।

प्रश्न– मुख्य तीर्थ कौन है?

उत्तर– जो चित्त के पाप का निवारण करे, वह।

किं स्मर्तव्यं पुरुषैर्हरिनाम सदा न यावनी भाषा।
को हि न वाच्यः सुधिया परदोषश्चानृतं तद्वत्॥35॥

प्रश्न– मनुष्यों को हरदम किसका स्मरण करना चाहिये?

उत्तर– श्री हरि नाम का।

प्रश्न– किसका स्मरण नहीं करना चाहिये?

उत्तर– यवनों की (उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि) भाषा का।

प्रश्न– बुद्धिमान मनुष्यों को क्या नहीं करना चाहिये?

उत्तर– दूसरों का दोष देखना और अनृत (झूठी भाषा) का प्रयोग।

किं संपाद्यं मनुजैर्विद्या वित्तं बलं यशः पुण्यम्।
कः सर्वगुणविनाशी लोभः शत्रुश्च कः कामः।।36।।

प्रश्न– मनुष्यों को क्या सम्पादन करना चाहिये?

उत्तर– विद्या, धन, बल, कीर्ति और पुण्य।

प्रश्न– सर्व गुणों का विनाश करने वाला कौन है?

उत्तर– लोभ।

प्रश्न– शत्रु कौन है?

उत्तर– काम

का च सभा परिहार्या हीना या वृद्धसचिवेन।
इह कुत्रावहितः स्यान्मनुजः किल राजसेवायाम्।।37।।

प्रश्न– किस सभा का त्याग करना चाहिये?

उत्तर– जो धर्मवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध मन्त्री से रहित सभा है, उसका।

प्रश्न– मनुष्य को कहाँ विशेषरूप से सावधानी रखनी चाहिये?

उत्तर– धार्मिक राजा की सेवा में।

प्राणादपि को रम्यः कुलधर्मः साधुसंगश्च।
का संरक्ष्या कीर्तिः पतिव्रता नैजबुद्धिश्च।।38।।

प्रश्न– प्राण से भी अत्यन्त प्यारा कौन है?

उत्तर– कुलका धर्म और साधु पुरुषों की संगति।

प्रश्न– अति प्रयत्न से कौन रक्षा करने योग्य है?

उत्तर– कीर्ति, पतिव्रता स्त्री और अपनी बुद्धि।

का कल्पलता लोके सच्छिष्यायार्पिता विद्या।
कोऽक्षयवटवृक्षः स्याद्विधिवत्सत्पात्रदत्तदानं यत्।।39।।

प्रश्न– इस लोक में कल्पलता क्या है?

उत्तर– योग्य शिष्य को दी हुई विद्या।

प्रश्न– अक्षयवट वृक्ष क्या है?

उत्तर– विधिपूर्वक सत्पात्र को दिया हुआ दान।

किं शस्त्रं सर्वेषां युक्तिर्माता च का धेनुः।
किं नु बलं यद्धैर्यं को मृत्युर्यदवधानरहितत्वम्।।40।।

प्रश्न– सभी के लिये शस्त्र क्या है?

उत्तर– युक्ति।

प्रश्न– माता क्या है?

उत्तर– गाय।

प्रश्न– बल क्या है?

उत्तर– धैर्य।

प्रश्न– मृत्यु क्या है?

उत्तर– सावधानी से नहीं रहना।

कुत्र विषं दुष्टजने किमिहाशौचं भवेदृणं नृणाम्।
किमभयमिह वैराग्यं भयमपि किं वित्तमेव सर्वेषाम्।।41।।

प्रश्न– विष कहाँ है?

उत्तर– दुष्ट मनुष्य में।

प्रश्न– मनुष्यों का अशौच क्या है?

उत्तर– ऋण।

प्रश्न– संसार में अभय क्या है?

उत्तर– वैराग्य

प्रश्न– सबके लिये भय क्या है?

उत्तर– धन।

का दुर्लभा नराणां हरिभक्तिः पातकं च किं हिंसा।
को हि भगवत्प्रियः स्याद्योऽन्यं नोद्वेजयेदनुद्विग्नः॥42॥

प्रश्न– मनुष्यों को दुर्लभ क्या है?

उत्तर– श्री हरि की भक्ति।

प्रश्न– पाप क्या है?

उत्तर– मन से वाणी से एवं शरीर से होने वाली हिंसा।

प्रश्न– भगवान् को प्रिय कौन है?

उत्तर– जो स्वयं उद्वेग से रहित है, और अन्य को कदापि उद्विग्न नहीं करता है, वह।

कस्मात्सिद्धिस्तपसो बुद्धिः क्व नु भूसुरे कुतो बुद्धिः।
वृद्धोपसेवया के वृद्धा ये धर्मतत्त्वज्ञाः॥43॥

प्रश्न– किससे सिद्धि होती है?

उत्तर– तप से।

प्रश्न– बुद्धि कहाँ है?

उत्तर– भूदेव–ब्राह्मण में।

प्रश्न– बुद्धि किससे प्राप्त होती है?

उत्तर– वृद्धों की सेवा से।

प्रश्न– वृद्ध कौन है?

उत्तर– जो धर्म–तत्त्व को जानने वाले हैं।

संभावितस्य मरणादधिकं किं दुर्यशो भवति।
लोके सुखी भवेत्को धनवान्धनमपि च किं यतचेष्टम्॥44॥

प्रश्न– संभावित (प्रसिद्ध) मनुष्य को मरण से भी अधिक दु:खदायक क्या है?

उत्तर– अपयश।

प्रश्न– लोक में लोकदृष्टि से सुखी कौन है?

उत्तर– धनवान्।

प्रश्न– धन क्या है?

उत्तर– संयमपूर्वक आहार–विहार यानी सदाचार।

सर्वसुखानां बीजं किं पुण्यं दु:खमपि कुत: पापात्।
कस्यैश्वर्यं य: किल शङ्करमाराधयेद्भक्त्या।।45।।

प्रश्न– तमाम सुखों की जड़ क्या है?

उत्तर– पुण्य।

प्रश्न– दु:ख किससे होता है?

उत्तर– पाप से।

प्रश्न– ऐश्वर्य किससे होता है?

उत्तर– भगवान् श्री शंकर की विशुद्ध भक्तिपूर्वक आराधना करने से।

को वर्धते विनीत: को वा हीयते यो दृप्त:।
को न प्रत्येतव्यो ब्रूते यश्चानृतं शश्वत्।।46।।

प्रश्न– कौन सभी प्रकार से बढ़ता है?

उत्तर– विनयशील।

प्रश्न– कौन सभी और से घटता है?

उत्तर– अभिमानी।

प्रश्न– किसका विश्वास नहीं करना चाहिये?

उत्तर– जो निरन्तर अनृत भाषण करता है।

कुत्रानृतेऽप्यपापं यच्चोक्तं धर्मरक्षार्थम्।
को धर्मोऽभिमतो यः शिष्टानां निजकुलीनानाम्।।47।।

प्रश्न– किस जगह अनृत (झूठ) कहने पर भी पाप नहीं होता है?

उत्तर– जहाँ धर्म की रक्षा होती हो, वहाँ।

प्रश्न– धर्म कौन है?

उत्तर– जो निजकुल में होने वाले सदाचारी वृद्ध पुरुषों के अभिमत हो।

साधुबलं किं दैवं कः साधुः सर्वदा तुष्टः।
दैवं किं यत्सुकृतं कः सुकृती श्लाघ्यते च यः सद्भिः।।48।।

प्रश्न– साधु–महात्माओं का बल क्या है?

उत्तर– आराधित देवता।

प्रश्न– साधु कौन है?

उत्तर– जो सर्वदा सन्तुष्ट हो।

प्रश्न– दैव क्या है?

उत्तर– धर्म, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान आदि से होने वाला पुण्य।

प्रश्न– पुण्यशाली कौन है?

उत्तर– जिसकी सत्पुरुष भी प्रशंसा करते हों, वह।

गृहमेधिनश्च मित्रं किं भार्या को गृही च यो यजते।
को यज्ञो यः श्रुत्या विहितः श्रेयस्करो नृणाम्।।49।।

प्रश्न– गृहस्थ का असली मित्र कौन है?

उत्तर– भार्या।

प्रश्न– गृहस्थ कौन है?

उत्तर– जो पञ्चमहायज्ञ के द्वारा विश्वरूप भगवान् का भजन करता है।

प्रश्न– यज्ञ कौन है?

उत्तर– जो वेद ने विधान किया हो, और अनुष्ठान से मनुष्यों का श्रेयः (कल्याण) करने वाला हो, वह।

कस्य क्रिया हि सफला यः पुनराचारवान् शिष्टः।
कः शिष्टो यो वेदप्रमाणवान्को हतः क्रियाभ्रष्टः।।50।।

प्रश्न– किसकी क्रिया फल वाली होती है?

उत्तर– जो सदाचारी विचारशील शिष्ट है, उसकी।

प्रश्न– शिष्ट कौन है?

उत्तर– जो वेद को परम प्रामाणिक मानकर वैदिक उपदेश को अपने आचरण में रखता है, वह।

प्रश्न– मरा हुआ कौन है?

उत्तर– जो क्रिया (सदाचार) से भ्रष्ट है।

को धन्यः संन्यासी को मान्यः पण्डितः साधुः।
कः सेव्यो यो दाता को दाता योऽर्थितृप्तिमातनुते।।51।।

प्रश्न– धन्य कौन है?

उत्तर– संन्यासी।

प्रश्न– मान्य कौन है?

उत्तर– सदाचारी विद्वान्।

प्रश्न– सेव्य कौन है?

उत्तर– दाता (दानशील)

प्रश्न– दाता कौन है?

उत्तर– अर्थी को जो तृप्त करता है, वह।

किं भाग्यं देहवतामारोग्यं कः फली कृषिकृत्।
कस्य न पापं जपतः कः पूर्णो यः प्रजावान्स्यात्।।52।।

उत्तर– देहधारियों का भाग्य क्या है।

उत्तर– आरोग्य।

प्रश्न– फलवाला कौन है?

उत्तर– किसान (खेती करने वाला)।

प्रश्न– किसको पाप स्पर्श नहीं करता?

उत्तर– जो भगवन्मन्त्र को जपता रहता है, उसको।

प्रश्न– पूर्ण कौन है?

उत्तर– जो प्रजावाला है, वह।

किं दुष्करं नराणां यन्मनसो निग्रहः सततम्।
को ब्रह्मचर्यवान्स्याद्यश्चास्खलितोर्ध्वरेतस्कः।।53।।

प्रश्न– मनुष्यों के लिये दुष्कर क्या है?

उत्तर– निरन्तर मन को स्वाधीन रखना।

प्रश्न– ब्रह्मचारी कौन है?

उत्तर– जिसका वीर्य कदाचित् स्खलित न हो, किन्तु ऊर्ध्व–मस्तिष्क में विशेषरूप से वीर्य धारण हो, वह।

का च परदेवतोक्ता चिच्छक्तिः को जगद्भर्ता।
सूर्यः सर्वेषां को जीवनहेतुः स पर्जन्यः।।54।।

प्रश्न– परदेवता कौन है?

उत्तर– सर्वव्यापिनी चेतन–शक्ति।

प्रश्न– जगत् का भर्ता कौन है?

उत्तर– सूर्य–भगवान्।

प्रश्न– सभी के जीवन का हेतु कौन है?

उत्तर– पर्जन्य (वर्षा) वृष्टि।

कः शूरो यो भीतत्राता त्राता च कः स गुरुः।
को हि जगद्गुरुः शम्भुर्ज्ञानं कुतः शिवादेव।।55।।

प्रश्न– शूर कौन है?

उत्तर– भयभीत मनुष्य की रक्षा करने वाला।

प्रश्न– रक्षक कौन है?

उत्तर– गुरु।

प्रश्न– जगद्गुरु कौन है?

उत्तर– श्री शंङ्कर महादेव।

प्रश्न– ज्ञान किससे होता है?

उत्तर– जगद्गुरु श्रीशिवजी महाराज की कृपा से।

मुक्तिं लभेत कस्मान्मुकुन्दभक्तेर्मुकुन्दः कः।
यस्तारयेदविद्यां का चाविद्या यदात्मनोऽस्फूर्तिः।।56।।

प्रश्न– किससे मुक्ति प्राप्त होती है?

उत्तर– मुकुन्द भगवान् की भक्ति से।

प्रश्न– मुकुन्द कौन है?

उत्तर– जो अविद्या से तार देवे।

प्रश्न– अविद्या क्या है?

उत्तर– आत्मा के यथार्थ स्वरूप का भान न होना।

कस्य न शोको यः स्यादकामः किं सुखं तुष्टिः।
को राजा रंजनकृत्कश्च श्वा नीचसेवको यः स्यात्।।57।।

प्रश्न– शोक किसको नहीं होता?

उत्तर– जो कामनाओं से रहित है।

प्रश्न– सुख क्या है?

उत्तर– संतोष।

प्रश्न– राजा कौन है?

उत्तर– जो अपनी प्रजा का लालन–पालन द्वारा रञ्जन (हर्ष) करने वाला हो।

प्रश्न– कुत्ता कौन है?

उत्तर– जो नीच–पामर का सेवक है।

को मायी परमेशः क इन्द्रजालायते प्रपञ्चोऽयम्।
कः स्वप्ननिभो जाग्रद्व्यवहारः सत्यमपि च किं ब्रह्म।।58।।

प्रश्न– मायावाला कौन है?

उत्तर– परमेश्वर।

प्रश्न– इन्द्रजाल के समान मिथ्या कौन है?

उत्तर– यह नामरूपात्मक द्वैतप्रपञ्च।

प्रश्न– स्वप्न के समान क्षणभंगुर क्या है?

उत्तर– जाग्रत संसार का व्यवहार।

प्रश्न– सत्य (तीन काल में भी अबाधित) क्या है?

उत्तर– ब्रह्म (सर्वव्यापक आत्मा)।

किं मिथ्या यद्विद्याविनाश्यं तुच्छं तु शशविषाणादि।
का चानिर्वचनीया माया किं कल्पितं द्वैतम्।।59।।

प्रश्न– मिथ्या क्या है?

उत्तर– जिसका ब्रह्मविद्या से विनाश हो, वह।

प्रश्न– तुच्छ क्या है?

उत्तर– शशशृंग, वन्ध्यापुत्र, आदि।

प्रश्न– अनिर्वचनीय क्या है?

उत्तर– माया और माया का कार्य संसार।

प्रश्न– कल्पित (अध्यस्त) क्या है?

उत्तर– द्वैत–प्रपञ्च।

किं पारमार्थिकं स्यादद्वैतं चाविद्या कुतोऽनादिः।
वपुषश्च पोषकं किं प्रारब्धं चान्नदायि किमायुः।।60।।

प्रश्न– परमार्थिक तत्त्व क्या है?

उत्तर– अद्वैत–ब्रह्म।

प्रश्न– अविद्या किससे हुई?

उत्तर– किसी से भी नहीं, क्योंकि वह अनादि है, उसका आदि (कारण) कोई नहीं बतला सकता, परन्तु उसकी अनादि–कल्पना का अधिष्ठान ब्रह्म है।

प्रश्न– शरीर का पोषण करने वाला कौन है?

उत्तर– प्रारब्ध–कर्म

प्रश्न– अन्न देने वाला कौन है?

उत्तर– आयु।

को ब्राह्मणैरुपास्यो गायत्र्यर्काग्निगोचरः शम्भुः।
गायत्र्यामादित्ये चाग्नौ शम्भौ च किं नु तत्तत्त्वम्।।61।।

प्रश्न– ब्राह्मणों से उपासना करने योग्य कौन है?

उत्तर– गायत्री, सूर्य और अग्नि के अधिष्ठाता भगवान् श्रीशङ्कर।

प्रश्न– गायत्री में, सूर्य में, अग्नि में और श्रीशङ्कर में कौन तत्त्व है?

उत्तर– वही सर्वव्यापक अद्वैत– ब्रह्म।

प्रत्यक्षदेवता का माता पूज्यो गुरुश्च कस्तातः।
कः सर्वदेवतात्मा विद्याकर्मान्वितो विप्रः।।62।।

प्रश्न– प्रत्यक्ष देवता कौन है?

उत्तर– माता।

प्रश्न– पूज्य गुरु कौन है?

उत्तर– पिता।

प्रश्न– सर्वदेवतास्वरूप कौन है?

उत्तर– ज्ञान (उपासना) और वेदविहित–शुभ कर्म से युक्त ब्राह्मण।

कश्च कुलक्षयहेतुः संतापः सज्जनेषु योऽकारि।
केषाममोघवचनं ये च पुनः सत्यमौनशमशीलाः।।63।।

प्रश्न– कुलक्षय का क्या कारण है?

उत्तर– सज्जन महात्माओं को पहुँचाया हुआ कष्ट।

प्रश्न– किनका अमोघ (यथार्थ) वचन है?

उत्तर– जो सत्य, मौन एवं शम (मन का निग्रह) के स्वभाव वाले हैं।

किं जन्म विषयसंगः किमुत्तरं ब्रह्मबोधः स्यात्।
कोऽपरिहार्यो मृत्युः कुत्र पदं विन्यसेच्च दृक्पूते।।64।।

प्रश्न– जन्म क्यों होता है?

उत्तर– विषयासक्ति होने से।

प्रश्न– जन्म से तरना यानी मुक्ति कैसे हो?

उत्तर– ब्रह्मज्ञान से।

प्रश्न– अपरिहार्य कौन है?

उत्तर– मृत्यु (कालदेवता)।

प्रश्न– पाद (पैर) कहाँ रखना चाहिये?

उत्तर– दृष्टि से पवित्र किये हुए मार्ग में।

पात्रं किमन्नदाने क्षुधितं कोऽर्च्यो हि भगवदवतारः।
कश्च भगवान्महेशः शङ्कर–नारायणात्मैकः।।65।।

प्रश्न– अन्नदान का पात्र (अधिकारी) कौन है?

उत्तर– जो क्षुधित (भुखा) हो।

प्रश्न– अर्चा (पूजा) करने योग्य कौन है?

उत्तर– भगवदवतार श्रीराम–कृष्णादि।

प्रश्न– भगवान् महेश्वर कौन है?

उत्तर– श्रीशङ्कर और श्रीनारायण का अभिन्नस्वरूप।

फलमापि भगवद्भक्तेः किं तद्देवस्वरूपसाक्षात्त्वम्।
मोक्षश्च को ह्यविद्यास्तमयः कः सर्ववेदभूरथ चोम्।।66।।

प्रश्न– भगवद्भक्ति का फल क्या है?

उत्तर– भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार।

प्रश्न– मोक्ष क्या है?

उत्तर– अविद्या का अत्यन्ताभाव।

प्रश्न– सर्ववेदों का सार क्या है?

उत्तर– ॐकार।

इत्येषा कण्ठस्था प्रश्नोत्तररत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा इव विमलाश्चाभान्ति सत्समाजेषु।।67।।

यह प्रश्नोत्तररत्नमालिका जिनके कण्ठ में स्थित है, वे मुक्ता के आभूषण की तरह सत्पुरुषों के समाज में निर्मल होकर प्रकाशित होंगे।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीपान्तर्गत पंचम किरण समाप्त।।

ॐ शिवः सर्व सर्वत्र

प्रश्नोत्तर प्रदीप

षष्ठ किरण

श्राद्ध और मृतात्मा

प्रश्न– श्राद्ध में मृत पितरों के लिये जलांजलि, तिलांजलि तथा पिण्डादि का दान किया जाता है तो क्या वह पितरों को मिलता है?

उत्तर– हाँ मिलता है। देखो अपने यहाँ प्रत्येक कर्म का आरम्भ संकल्प से होता है। संकल्प का विधान है और संकल्प के अनुसार किये हुए कर्म का फल भी मिलता ही है। ज़ैसे आपने अपने मित्र को एक पत्र लिखा हो और उसमें वह जिस गाँव में जहाँ रहता हो वहाँ का पता पत्र में बराबर लिखा हो तो वह पत्र उसे बराबर मिल जाता है ठीक इसी प्रकार संकल्प यह पता लिखने के बराबर है, जहाँ वह मृतात्मा होता है वहाँ उसे संकल्प बल से श्राद्धादि में दी गई वस्तु सूक्ष्म रूप से प्राप्त हो जाती है और वासना रूप से मृतात्मा उसे ग्रहण करके तृप्त होता है। ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है। पितरों का देवता अर्यमा है, वह सर्वज्ञ है वह जिस पितृ के लिये जिस किसी ने जो वस्तु दी है या कोई श्राद्धादि कर्म किया है वह उसे पहुँचा देता है।

प्रश्न– शास्त्र में तो लिखा है कि –

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

यह जीवात्मा स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है, स्वयं संसार में भ्रमण करता है तथा स्वयं ही उससे मुक्त होता है। इस प्रमाण से तो यह सिद्ध होता है कि कर्म का फल कर्ता को ही मिलता है दूसरे को नहीं मिलता। इसलिए मृतात्मा के निमित्त से जो कोई पुण्य कर्म किया जाता है उसका फल मृतात्माओं को नहीं

मिलता। अतः मृतात्मा के निमित्त किसी पुण्य कार्य को करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ?

उत्तर– यद्यपि वेदादि शास्त्रों का मत ऐसा ही है कि जो आत्मा कर्म करता है उसका फल उसी को मिलता है परन्तु जो कर्ता किसी दूसरे के निमित्त या उद्देश्य से संकल्प पूर्वक कोई शुभ कर्म दान पुण्य आदि करता है तो उसका फल उस आत्मा को ही प्राप्त होता है तभी तो कर्मकाण्डी ब्राह्मणों द्वारा कर्म कराया जाता है उसका फल यजमान को मिलता है।

प्रश्न– **यह ठीक है। परन्तु किसी मृतात्मा की मुक्ति हो गई हो या वह किसी उत्तम अथवा अधम योनि में जन्म ले चुका हो तो उसके उद्देश्य से संकल्पपूर्वक जो श्राद्धादि की क्रिया की गई हो, तो उसका फल किसको मिलेगा ?**

उत्तर– जो मृतात्मा वायु मण्डल में नहीं है उसकी मुक्ति हो गई हो अथवा वह कहीं पुनर्जन्म ले चुका हो उसके उद्देश्य से संकल्पपूर्वक जो क्रियाएँ करने में आती हैं, उनका फल कर्ता को ही मिलता है। किसी मनीआर्डर द्वारा दूसरे गाँव में दूसरे को भेजी गई रकम यदि वह आदमी वहाँ नहीं है, तो वह मनीआर्डर की रकम भेजने वाले को ही पीछे मिल जाती है ऐसे ही यहाँ भी समझना चाहिऐ।

प्रश्न– **तो मृतात्मा के निमित्त से दान–पुण्य करना आवश्यक है ?**

उत्तर– हाँ, दान पुण्य अवश्य करना चाहिए।

प्रश्न– **बहुत लोग जीवित पितरों की सेवा नहीं करते उलटे उनके साथ द्वेष करते हैं। लड़ाई, झगड़ा करके परेशान करते हैं, इतना ही नहीं वे सोचते हैं कि यह जल्दी मर जाय तो अच्छा, ऐसा चाहते हैं और मरने के बाद उनकी तृप्ति या शान्ति के लिये श्राद्धाादि क्रियाएँ तथा गरुड़ पुराण या भागवत सप्ताह आदि करवाते हैं, तो क्या उससे मृत पितरों को सुख शान्ति मिलेगी ?**

उत्तर– वर्तमान युग के प्रभाव से या कर्मदोष से मानार्ह एवं पूजनीय घर के बड़े बूढ़े जीवित पितरों से द्वेष किया जाता है या अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उन्हें अपमानित किया जाय या उनकी मृत्यु की इच्छा की जाती है यह सब अयोग्य है, ऐसा नहीं होना चाहिए। जीवित पितरों की सेवा सत्कार सम्मान करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करके उनका आशीर्वाद लेना चाहिए तथा उनकी मृत्यु के बाद उनकी आत्मा की शान्ति के लिये विहित धार्मिक क्रियाएँ करनी चाहिये। ऐसा करने से ही उन्हें आत्मशान्ति मिलेगी, संतोष होगा।

प्रश्न– कुछ लोग श्राद्धादि क्रियाएँ नहीं करते और कहते हैं कि मृतात्माओं के पीछे वित्त व्यय करना (धन खर्च करना) व्यर्थ है तो इसका क्या?

उत्तर– जो लोग श्राद्धादि क्रियाएँ नहीं करते उनको कई बार अपार दुःख सहन करना पड़ता है। अतृप्त मृतात्माओं की तरफ से बहुत लोगों को काफी सहन करना पड़ता है– कुछ लोगों के अनुभव की यह बात है दूसरी बात यह है कि मृतात्माओं के पीछे किया गया वित्तव्यय व्यर्थ नहीं, सार्थक है, क्योंकि इस निमित्त से मनुष्य पुण्य कार्य करता है तो उसके लोक–द्वय सुधरते हैं और अनेक प्राणियों का अन्न–जल वस्त्रादि के द्वारा हित होता है। परोपकार के कार्य तो मनुष्य को तन–मन–धन से सदा करते ही रहना चाहिए जिससे उसके पाप की निवृत्ति हो तथा पुण्य की वृद्धि हो।

प्रश्न– मृतात्माओं के निमित्त से ही परोपकार के कार्य क्यों करें ऐसे भी परोपकार हो सकता है?

उत्तर– **'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते।'** प्रयोजन के बिना मन्द बुद्धि वाले की भी प्रवृत्ति नहीं होती, अतः किसी निमित्त को लेकर ही किसी कार्य में प्रवृत्ति होती है, मृतात्माओं के निमित्त से ही मनुष्य को दान धर्म में प्रवृत्त करने के लिए प्राचीन–ऋषि–मुनियों ने श्राद्धादि की प्रथा चलाई थी, जो योग्य ही था। परन्तु पीछे से वह एक रूढ़ि हो गई

तथा श्राद्धादि के निमित्त पात्रापात्र का विचार किये बिना दानादि होने लगे, यह अयोग्य कुप्रथा है। किसी काम को ज्ञानपूर्वक ही करना चाहिये। श्राद्धादि में सुपात्र को अन्न–धन–वस्त्रादि दिया जाय तथा श्राद्ध की विहित विधि से श्राद्ध किया जाय तो अवश्य मृतात्माओं को शान्ति मिलती है।

प्रश्न– मृतात्माओं के भेद कितने हैं और उनकी स्थिति कैसी होती है? कृपया बताएँ।

उत्तर– मृतात्माओं के तीन भेद हैं।

1. शुद्धात्मा या पुण्यात्मा
2. मलिनात्मा या पापात्मा
3. मुक्तात्मा

मुक्तात्मा तो ज्ञान के द्वारा देहत्रयाद्व्यतिरिक्त पंचकोशातीत शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है उसके लिए कुछ करना शेष नहीं रहता। पुण्यात्मा को दूसरा शरीर शीघ्र ही मिल जाता है। **'पुण्येन पुण्यं लोकं नयति'** पुण्य से उसे पुण्यमय स्वर्गादि लोक में ले जाया जाता है। सिर्फ एक मलिनात्मा पाप योनियों में जाता है या वायुमण्डल में घूमता रहता है। उसके मन में अनेक प्रकार के भोगों की वासनाएँ भरी रहती है। इसलिये वह जिस घर में पुरुष या स्त्री शरीर में जीवित था वहाँ ही घूमता रहता है। और वह उस घर के कुटुम्बियों से पिण्ड–जल–जिलांजलि की अपेक्षा रखता है तथा श्राद्धादि में जलांजलि आदि प्राप्त होने पर वासना रूप से उसे ग्रहण करके तृप्त हो जाता है।

प्रश्न– शरीर छूटने के बाद दूसरा शरीर तुरन्त ही मिल जाता है क्या?

उत्तर– नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है कि पहला शरीर छोड़ते ही दूसरा शरीर मिल जाय। किसी जीवात्मा को तो जल्दी दूसरा शरीर मिल जाता है और कुछ जीवात्मा तो सूक्ष्म शरीर में रहते हुए अनन्त काल तक

वायुमण्डल में भ्रमण करते रहते हैं। किसी पुण्य का उदय हो तो **''त्रिभिर्वर्षै : त्रिभिर्मासै : त्रिभि :पक्षै : त्रिभिर्दिनै :''** संस्कार पुण्य प्रबल हो तो ही तीन दिन, तीन पक्ष, तीन मास या तीन सम्वत्सर (वर्ष) में दूसरा स्थूल शरीर मिलता है। सम्पूर्ण आकाश और वायुमण्डल में अनन्त आत्माएँ घूमती रहती हैं। सबको किसी स्थूल शरीर की प्राप्ति नहीं होती। उनमें भी मनुष्य योनि से भिन्न चौरासी लाख योनियाँ हैं। अपनी–2 योग्यता और अधिकार के अनुसार आत्माएँ स्थूल शरीर ग्रहण करती हैं और छोड़ती हैं। पाप और पुण्य दोनों बराबर हों तब मनुष्य शरीर की प्राप्ति होती है। अधिक पुण्य हो तो देवादि की योनि प्राप्त होती है और अधिक पाप हो तो असुर, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि की प्राप्ति होती है, ये पाप–योनियाँ हैं।

प्रश्न– तो क्या ऐसा भी कोई आत्मा हो सकता है कि जिसे कभी कोई स्थूल शरीर मिले ही नहीं ?

उत्तर– नहीं, प्रत्येक आत्मा को स्वकर्मानुसार सुख दु:ख भोग के लिए शरीर तो मिलता ही है।

प्रश्न– हमने सुना है कि भूत–प्रेत होते हैं और वे मनुष्यों को लगते हैं, दु:ख देते हैं, उनकी बड़ी–2 जमात होती हैं तो क्या यह सब सत्य है?

उत्तर– मैं प्रथम तीन प्रकार के आत्मा बता चुका हूँ। उनमें जो मलिनात्मा कहा है उसे ही भूत कहा है। भूत नाम गत यानी जो जन्म लेकर मर गया है– उसका है। अत: मलिन मन बुद्धि वाले स्त्री या पुरूष अपने मन में नाना प्रकार की वासना के साथ अशुद्धावस्था में अकस्मात् में या आपघात आदि अकाल मृत्यु से देहत्याग करते हैं वे अपनी वासना पूरी न होने से वायुमण्डल में घूमते रहते हैं। ऐसे अनेक आत्मा संस्कारानुसार एकत्रित हो सकते हैं, उन्हें ही सामान्य भाषा में भूतों की जमात कहा जा सकता है इन्हीं में से कोई एक या अधिक मलिनात्मा किसी मलिन आचार विचार वाले अशुद्धान्त:करण वाले

स्त्री या पुरूष के शरीर में प्रवेश करके अपनी वासना को पूर्ण करना चाहते हैं, जिसके शरीर में ऐसे भूत प्रेत का संचार होता है उसको शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा होती है। उसे ही भूतवायु, भूतात्मा आदि कहा जाता है। वह सूक्ष्म शरीर धारी तो होता ही है स्थूल शरीर में प्रवेश करना चाहता है इसलिये किसी के शरीर में प्रवेश करता है और ऐसी प्रवृत्ति करता है।

प्रश्न– **कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य योनि की तरह भूतयोनि भी होती है और उसकी अनेक जातियाँ होती हैं तो क्या यह ठीक है ?**

उत्तर– प्रेतयोनि तो है ही। तो भी भूत प्रेत पिशाच की कल्पना करने वाले लोग दो कोटि के हैं। प्रथम कोटि में अधिक लोग अशिक्षित हैं, जो सर्वत्र भूत प्रेतों का ही साम्राज्य है ऐसा मानते हैं। दूसरी कोटि के लोग वे हैं, जिन्होंने सृष्टि विज्ञान का अध्ययन किया है। यह वर्ग अल्पसंख्यक शिक्षितों का है। वे मानते हैं कि भूत प्रेतों की एक योनि है और वह वायुरूप धारण करके यथेच्छ भ्रमण कर सकते हैं परन्तु इस बात को सुशिक्षित वर्ग के धीर पुरूष केवल अज्ञान या भ्रम मात्र से उत्पन्न कल्पनामात्र मानते हैं। वे कहते हैं भूत प्रेत आदि की कोई योनि नहीं है और वह यथेच्छ रूप धारण नहीं कर सकते। भूत योनि का अस्तित्व मानने वालों से पूछा जाय कि क्या आपने कभी अपनी आँखों से भूत को प्रत्यक्ष देखा है? तो वे उत्तर देते हैं कि अमुक विश्वासपात्र व्यक्ति ने प्रत्यक्ष देखा है– ऐसा हमसे उसने कहा है वह असत्य नहीं बोल सकता। ऐसा है इसलिए जब तक भूत प्रेतादि के विषय में स्वानुभव हुआ न हो तब तक कुछ भी मानना या कहना भूल–भुलैया है। ''**मेस्मेरिजम**'' वाले मानते हैं इस शरीर में अनेक नाड़ियाँ हैं उनमें से किसी नाड़ी में ऐसा पवन भर जाता है कि वह मनुष्य को शोकमग्न बना देता है अथवा चित्त को भयंकर बना देता है। इसे ही भोले लोग भूत प्रेत आदि का बहम मानते हैं। **सुश्रुत** में भी

कहा है कि भूतवायुनाम का एक रोग है, जो मस्तिष्क को बिगाड़ देता है उसे मार्जन और मंत्रोपचार से निकालना चाहिए।

प्रश्न– **कुछ लोग कहते हैं कि मैंने भूत को देखा है वह शरीरधारी होता है उसका फोटो भी लिया जा सकता है, तो क्या यह सच है ?**

उत्तर– भूत योनि से इन्कार तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि शास्त्रों में भूत योनि का वर्णन है जैसे भागवत में धुंधकारी की कथा है वह भूत होकर गोकर्ण को दीखता था, डराता था, अनेक रूप धारण किये थे तथा भागवत श्रवण से उसकी मुक्ति हो गई थी। शिव पुराण एवं गीता आदि मोक्ष शास्त्रों में भी भूत योनि एवं भूत होना तथा साधन से उसका भूत योनि से छूटना आदि अनेक प्रमाण मिलते हैं। अतः भूत योनि कोरी कल्पना तो नहीं मानी जा सकती। जैसे देव योनियाँ असुर योनियाँ है ऐसे ही भूत योनियाँ भी हैं ही, परन्तु साधकों, शिष्ट जनों, ज्ञानी भक्त एवं योगियों के जीवन में उनका कोई प्रभाव नहीं होता, उन्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। जहाँ कोई आकार नहीं है वहाँ भी लोग दृश्य की कल्पना करके भ्रान्त होते हैं– जैसे– रज्जु में सर्प, सीप में चाँदी और रेती में मृगजल की कल्पना होती है, वह भ्रान्ति है। इसी प्रकार अपनी कल्पित भावना के अनुसार कल्पित भूत मन में संस्कार रूप से उत्पन्न होकर दुःख देता है **''भय का भूत और शंका की डाकण''** यह कहावत चरितार्थ हो जाती है वास्तव में भूतनाम धारी कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। सूक्ष्म वायुरुप अदृश्य एवं आकाश मण्डल में भ्रमणशील व उपर्युक्त मलिन आत्मा ही है।

प्रश्न– **तो क्या सभी भूत–प्रेत मलिनात्मा दुःख ही देते हैं?**

उत्तर– नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। भूत वायु दो प्रकार के हैं– शिष्ट भूत और दुष्ट भूत, इन दोनों में से शिष्ट भूत तो भला होता है, भलाई करता है, रक्षा करता है ,सहायता करता है, भूत भविष्य की अनेक बातें भी बता देता है, धनादि का लाभ करा देता है। परन्तु दुष्टभूत

तो दुष्टता ही करता है, उपद्रव करता है, डराता है, धमकाता है। परन्तु मनुष्यों को उपद्रवी भूतों से डरने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि जीवित मनुष्य की इच्छाशक्ति एवं ज्ञानशक्ति तथा मानसिक बल मृतात्मा मनुष्यों की इच्छा शक्ति तथा मानसिक बल से अधिक शक्तिशाली होती है। मानसशास्त्र (मनोविज्ञान) का यह अटूट सिद्धान्त है कि जीवित मनुष्य का मनोबल मृतात्मा के मनोबल से अधिक सामर्थ्यवान होता है। अतः मनुष्य को अपना मनोबल बढ़ाना चाहिए। वेदों का घोष एवं ईश्वर के नाम का जप, रूप का ध्यान तथा अध्यात्म साधन चिन्तन तथा योगाभ्यास से मनुष्य का मनोबल बढ़ जाता है और भी– ''मैं शुद्ध हूँ मेरे हृदय में प्रभु का निवास है। इससे मुझे किसी प्रकार का डर नहीं है मैं निर्भय हूँ आनन्दस्वरूप शुद्ध चेतन ब्रह्मकी रक्षा से सुरक्षित हूँ। मेरा सम्बन्ध ईश्वर के साथ है जिससे कोई भी दुष्टात्मा मलिनात्मा आदि का मुझ पर प्रभाव नही पड़ता।'' इस प्रकार की भावना करने से तथा अनन्य विश्वास तथा अखण्ड श्रद्धा से ईश्वर के नाम का जप करते रहने से समस्त दुरात्मा–रोग–शोक एवं मानसिक व्याधियाँ दूर हट जायेंगी। और आप सब दुःखों से रहित सात्त्विक सुखानुभूति में निमग्न रहेंगे।

शुभं भूयात्

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीपान्तर्गत षष्ठ किरण समाप्त।।

ॐ शिवः सर्वं सर्वत्र

प्रश्नोत्तर प्रदीप

सप्तम किरण

दुर्व्यसन निषेध

चाय पत्ती का निषेध

प्रश्न– चाय पीने से तो कोई हानि नहीं है न ?

उत्तर– बहुत हानि है, चाय कभी नहीं पीना चाहिए, क्योंकि चाय पीने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– कौन से रोग उत्पन्न होते हैं कृपया बताइये ?

उत्तर– चाय पीने से अंतड़ियाँ निर्बल हो जाती हैं, भूख मर जाती है, निद्रा नहीं आती, कब्जियत हो जाती है, ऐसे–2 कितने ही रोग हो जाते हैं।

प्रश्न– छोटे बच्चों को माताएँ चाय पिलाती हैं तो क्या यह योग्य है ?

उत्तर– नहीं, छोटे बच्चों को चाय पिलाना अयोग्य है। बच्चों को चाय पिलाने से उनकी आँते अत्यन्त कोमल होने के कारण सन्तपित होकर निर्बल पड़ जाती हैं उनकी आँतें काम करना छोड़ देती हैं, पाचन क्रिया ठीक न होने से बालकों को दस्त शुरू हो जाते हैं, बालक सूखने लगते हैं, कमजोर हो जाते हैं, कुछ भी खा–पीकर पचा नहीं पाते। परिणामतः बालक शीघ्र ही यमराज के मेहमान बन जाते हैं यह पुत्र–हत्या का पाप माता पिता को लगता है।

प्रश्न– बड़े आदमी चाय पीयें तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर– छोटे या बड़े किसी को भी चाय नहीं पीनी चाहिए, क्योंकि उससे जो नुकसान होता है वह पीने वाले सभी को हो सकता है। बड़े आदमी को चाय पीने से उसकी भी भूख मर जाती है, शिर दुखने लगता है, कमजोरी हो जाती है, चक्कर आने लगता है, आँखें जलने लगती हैं, निद्रा भाग जाती है। कब्जियत हो जाती है, मल सूख जाता है, पेट

कठिन हो जाता है, नसें कमजोर होकर अपना काम छोड़ देती हैं। परिणामतः मनुष्य शूल–मरोड़ा–मन्द ज्वर आदि अनेक व्याधियों का शिकार बन जाता है। धातु क्षीण होकर मल मूत्र में जाने लगती है, प्रतिदिन क्षीणता के कारण मानसिक शक्ति का ह्रास हो जाता है, बुद्धि मन्द हो जाने से स्मरण शक्ति का अभाव हो जाता है। अतः अब पता लग गया कि चाय पीने से कितनी हानि होती है? इसलिए समझदार आदमी को कभी चाय नहीं पीनी चाहिए।

प्रश्न– चाय पीने से तो शरीर में स्फूर्ति आती है काम में थकावट नहीं होती, अतः चाय पीना हितकारक लगता है ।

उत्तर– चाय पीने से थकावट नहीं मिटती, परन्तु एक प्रकार की गरमी शरीर में बढ़ जाती है, शरीर में स्फूर्ति है– ऐसा लगता है परन्तु यह कृत्रिम है, युरोप तथा अमेरिका के डाक्टर भी चाय को हानिकारक मानते हैं और चाय नहीं पीनी चाहिए ऐसा उनका मत है। एक डाक्टर ने तो ऐसा अभिप्राय दिया है कि चाय पीने से हिस्टीरिया आदि भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं इसलिए चाय नहीं पीना चाहिए।

प्रश्न– चाय यह क्या वस्तु है ?

उत्तर– चाय एक प्रकार के झाड़ के सुकाये हुऐ पत्ते हैं। सूखने के बाद उन पत्तों को गरम करके सुगन्धित द्रव्यों का पुट देते हैं, जिससे उसका स्वाद अच्छा लगने लगता है। वस्तुतः चाय एक ऐसी वस्तु है जो त्याज्य है। संसार में पचहत्तर टका (प्रतिशत) मनुष्य चाय पीते हैं उनके धन और प्राण दोनों का ह्रास होता है देखिये–

चहादेवि नमस्तुभ्यं यमराज सहोदरी।
यमस्तु हरति प्राणान् चाहः प्राणान्धनैरपि।।

हे यमराज की बहिन चाह देवी! तुम्हें नमस्कार है, तुम तो यमराज से भी बड़ी हो क्योंकि यमराज तो केवल प्राणों को ही हरते हैं परन्तु तुम तो प्राण और धन दोनो को हर लेती हो।

चाह कौन और कब पीता है इसका वर्णन–

प्रज्ञैरज्ञैस्तरुणजरठैर्ब्राह्मणैरन्त्यजातैः।
पोरैग्रामैर्नरपतिवरैर्निग्रहैर्निश्वकैश्च।।
प्रातः सायं नियमिततयाभ्यर्चिता भक्तिभावात्।
हा हा चाहा हत कलियुगे कर्षति प्राणवित्तम्।।

पण्डित और मूर्ख, युवक और बूढ़े ब्राह्मण और अन्त्यज सब चाय पीते हैं । बड़े नगरों में और छोटे गाँवों में सर्वत्र चाय पी जाती है नेता लोग और मजदूर छोटे बड़े घरवाले, धनवान और निर्धन गृहस्थी और फुटपाथ पर पड़े रहने वाले भिखारी सुबह और सायंकाल में बड़े आदर के साथ चाय पीते हैं। अहो! हा हा हे चाय ? तू सब के प्राण और धन को खींच रही है। आकर्षित कर रही है। धन्य है तुझे।

मित्रो, चाय का गुण खुश्की करना है। अतः चाय न पीकर घी दूध का सेवन करना चाहिए।

प्रश्न– **युरोपियन लोग तो चाय पीते हैं और उनको कोई हानि नहीं होती, तो भारत की जनता को चाय पीने से क्या हानि है ?**

उत्तर– युरोप ठण्डा प्रदेश है वहाँ के लोग चाय पीते हैं तो उनको अधिक नुकसान नहीं करती, क्योंकि वे उत्तम प्रकार की चाय पीते हैं और उनकी चाय की बनावट भी अन्य प्रकार की है और वे अपनी खुराक में अन्य अनेक पौष्टिक तत्त्वों (विटामिन –सी) का निवेश करते हैं। भारत देश गरम है अतः चाय यहाँ के निवासियों के दिल दिमाग एवं शरीर के स्वास्थ्य को अत्यन्त नुकसान करती है। चाय में 'टेनिन' नामका जहरीला तत्त्व रहता है जो मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं को और बुद्धि को नुकसान पहुँचाता है चाय अधिक प्रमाण में पीने से अजीर्ण अनिद्रा, बैचेनी, कमजोरी, शिर दर्द, दिमाग की अशान्ति और मृगी आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करती है । आयु घटती है और यमपुरी की यात्रा का लाभ शीघ्रता से प्राप्त होता है अतः समझदारों को चाय

का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– चाय न पीने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर– चाय न पीने से पहला लाभ तो यह है कि चाय पीने के जो दोष बतलाये हैं उनसे छूट जाते हैं। धन की बचत होती है उससे आप पौष्टिक खुराक घी, दूध, मेवा, फल आदि ले सकते हैं, जिससे आपके जीवन में ताजगी, तेजस्विता, बल वीर्य आयु आदि की अभिवृद्धि होगी साथ ही मस्तिष्क के ज्ञान–तन्तु बलवान होंगे आरोग्य की प्राप्ति होगी, ये सब लाभ ही लाभ हैं अतः चाय न पीना हितकर है ।

प्रश्न– चाय के व्यसन को छोड़ने के लिये क्या करना चाहिये, क्योंकि चाय का व्यसनी यदि चाय न मिले तो शिर दु:खता है, सुस्ती लगती है, घबराहट होती है तो क्या करें ?

उत्तर– कोई भी व्यसन एकदम छूट नहीं सकता। धीरे–2 छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। जो मनुष्य प्रतिदिन चाय पीता है उसे चाय के समय तुलसीपत्र, सौंठ, कालीमिर्च का चूर्ण आदि डालकर मसाले वाला दूध पीना चाहिए फिर धीरे–2 चाय की आदत छूट जायेगी।

प्रश्न– चाय के बदले में कॉफी पी सकते हैं क्या ?

उत्तर– गुजरात में कहावत है कि '**चाय कॉफी कोको वहेली मुकावे पोको**' मतलब यह है कि चाय कॉफी आदि ये सब एक जैसे ही व्यसन हैं, जो त्याज्य हैं। दोषयुक्त हैं।

प्रश्न– दूध में तुलसी के पत्ते, सौंठ, काली मिर्च आदि डाल कर उकाला बना कर पीने से यदि चाय की तरह ही आदत पड़ जाये तो ?

उत्तर– आदत नहीं डालना, उकाला यह कोई व्यसन नहीं है कोई नुकसान नहीं करता, चाय को छोड़ने के लिये इसका उपयोग करना है। सौंठ आदि पदार्थ गरम होते हैं इनका उपयोग आवश्यकता से अधिक नहीं करना चाहिए। हाँ आप गाय का दूध–घी–शहद–मलाई आदि या निम्बू का शर्बत आदि यथेच्छ ले सकते हैं।

तमाखू (तम्बाकू) का निषेध

प्रश्न– **अनेक लोग तमाखू–खाते–पीते हैं तो क्या यह ठीक है ?**

उत्तर– नहीं, यह भी व्यर्थ का व्यसन है, हानिकारक है इससे कोई हेतु सिद्ध नहीं होता, देखिये –

न स्वादु नौषधमिदं न च वा सुगन्धिः,
नाक्षिप्रियं किमपि शुष्कंतमाखुचूर्णम्।
किंचाक्षिरोगजनकं च तदस्य भोगे,
बीजं नृणां न हि न हि व्यसनं विनान्यत्।।

इस तमाखू में कोई स्वाद नहीं है यह कोई ओषधि भी नहीं है, इसमें कोई सुगन्धि भी नहीं है, यह कोई नेत्ररम्य वस्तु भी नहीं है, यह शुष्क तमाखू चूर्ण सेवन करने से नेत्ररोग उत्पन्न होता है व्यसन के सिवा मनुष्यों को तमाखू का सेवन करने से कोई लाभ नहीं होता है ।

एक सन्त और तमाखू का संवाद

भ्रातः कस्त्वं तमाखुर्गमनमिह कुतो वारिधेः पूर्वपारात्
कस्य त्वं दण्डधारी न हि तव विदितं श्री कलेरेव राज्ञः।
चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं ब्रह्मणा धर्महेतो–
रेकीकर्तुं बलात् तन्निखिलं जगति शासनादागतोऽस्मि।।

एक विकराल काले दण्डधारी मनुष्य को देखकर एक महात्मा ने प्रश्न किया

प्रश्न– भाई तू कौन है ?

उत्तर– मै तमाखू हूँ।

प्रश्न– तू यहाँ कहाँ से आया ?

उत्तर– मै समुद्र के उस पार से आया हूँ।

प्रश्न– तू किसका द्वारपाल है?

उत्तर– क्या आप नहीं जानते ? मैं महाराज कलियुग का सेवक हूँ। .

प्रश्न– तुम यहाँ क्यों आये हो ?

उत्तर– विधाता ब्रह्मा जी ने धर्म के लिए ब्राह्मण आदि चार वर्णों को विविध धर्मानुष्ठान के लिए उत्पन्न किया है उनको बलपूर्वक एक करने के लिए अर्थात् धर्म का नाश करने के लिए मैं कलियुग महाराज की आज्ञा से यहाँ आया हूँ।

प्रश्न– तमाखू यह क्या वस्तु है ?

उत्तर– तमाखू एक झाड़ का पत्ता है। इसका वर्णन अपने प्राचीन साहित्य में नहीं है विदेशी लोग इसे अपने देश में लाये थे। यह एक बड़े व्यसन की चीज है। अतएव अब अपने देश में तमाखू का बहुत पाक होता है।

प्रश्न– तमाखू खाने से क्या हानि है ?

उत्तर– तमाखू खाने से मद चढ़ता है, भ्रम होता है, आँख का तेज घटता है, उल्टी होती है, ये सब दोष हैं।

प्रश्न– अनेक लोग चूना मिलाकर तमाखू खाते हैं तो क्या यह ठीक है ?

उत्तर– नहीं, ठीक नहीं है, खराब है। चूना और तमाखू खाने से दाँतों के मसूढ़े खराब हो जाते हैं, उनमें पीड़ा होने लगती है, दाँत जल्दी गिर जाते हैं। तमाखू में एक प्रकार का विषाक्त द्रव्य होता है वह पेट में जाकर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। पहले पहल तमाखू खाने वाले को उल्टी होती है, चक्कर आने लगता है, पेट में वायु का गोला उत्पन्न हो जाता है, सतत तमाखू खाने से उसका व्यसन हो जाता है और फिर पेट फूल जाता है। व्याकुलता होती है और भी अनेक प्रकार के दोष तमाखू खाने के हैं। अतः इसे सदा के लिए छोड़ देना चाहिए।

तमालं भक्षितं येन सगच्छेन्नरकार्णवे।

जिसने तमाखू खाया वह नरक समुद्र में जाता है।

प्रश्न– तमाखू सूँघना तो अच्छा है न ?

उत्तर– लोग समझते हैं कि तमाखू सूँघनें से छींक आकर शिर हलका हो

जाता है परन्तु ऐसी बात नहीं है। शिर हलका नहीं होता अपितु भारी एवं स्थूल हो जाता है। तमाखू सूँघ कर दिन भर छींकते रहना यह कौन सी बुद्धिमत्ता है। मनुष्य जब छींकता है तब मगज के ज्ञान-तन्तुओं पर झटका लगता है, भार पड़ता है, इससे चलायमान होकर निर्बल पड़ जाते हैं, परिणामतः बुद्धि मन्द तथा स्मृति का लोप होने लगता है। स्थूल बुद्धि वाला मनुष्य सूक्ष्म विषय का विचार नहीं कर सकता। इसलिये तमाखू सूँघना हानिकारक होने से त्याज्य है।

प्रश्न– बीड़ी सिगरेट तथा हुक्का पीने में तो कोई दोष नहीं है न ?

उत्तर– दोष क्यों नहीं है, दोष ही दोष हैं। बीड़ी सिगरेट हुक्का आदि में तमाखू ही तो भरा जाता है, जिसमें विषाक्त पदार्थ रहता है। इसका धुआँ जब पेट में जाता है तो वह रक्त का शोषण करता है और छाती में स्थित जो कफ है उसे सुखाता है, जिससे कफ फेफड़ों में जम जाता है उससे खाँसी होती है। परिणामतः दमा– स्वाँस और क्षय तक हो जाता है, इससे मृत्यु तक हो जाती है। धूम्रपान से छाती में चाँदी पड़ जाती है। अभी एक अमेरिकन निष्णात (विद्वान्) ने कहा है कि ''**कैन्सर**'' जैसे जीवलेवा दर्द भी बीड़ी सिगरेट आदि पीने से ही होते हैं। इसलिए बुद्धिमानों को तत्काल सदा के लिये धूम्रपान का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– कुछ लोग तमाखू को गंगा के समान त्रिमार्गगामी त्रिलोकपावनी कहते हैं और कहते है कि –

क्वचिद्धुक्का क्वचित्थुक्का क्वचिन्नासाग्रगामिनी।
एषा त्रिपथगा गंगा पुनाति भुवनत्रयम्।।

कहीं हुक्का कहीं खाकर थुक्का और कहीं सूँघने के उपयोग में आने वाली तमाखू त्रिमार्गगामिनी गंगा है, जो तीन लोक यानी पीने खाने और सूँघने के तीन स्थानों को पावन करती है तो यह ठीक है?

उत्तर– ये सब कपोल–कल्पित झूठी बातें हैं और यह श्लोक भी व्यसनी

लोगों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये रच लिया है, जो अप्रामाणिक है। तमाखू से मानसिक–बौद्धिक–शारीरिक–धार्मिक और वैत्तिकादि अनेक प्रकार की हानि होती है। नारद जी को ब्रह्माजी कहते हैं कि–

ब्रतानि नियमाः सर्वे यमाश्चैव महामुने।
वृथैव तानि सर्वाणि तमाखुपानमात्रतः।।
किंच योगेन ज्ञानेन वेदेन पितृदैवते।
किं वा विवित्तमात्रेण तमाखुं चेत्पिबेन्नरः।।
संन्यासेनाऽत्र किं तस्य वैराग्येण च किं पुनः।
पीता येन तमाखुर्वै श्वपचादपि सोऽधमः।।

जो लोग तमाखू खाते, पीते या सूँघते है उनके तीर्थ, व्रत, यम, नियमादि, योग, ज्ञान वेदशास्त्र का पठन पाठन, देव पितृयज्ञ आदि सब कर्म व्यर्थ यानी निष्फल हो जाते हैं। जो मनुष्य तमाखू का सेवन करता है उसके संन्यास तथा वैराग्य का भी क्या फल? वह तो चाण्डाल से भी अधिक अधम है।

प्रश्न– तमाखू में कौन सा विष है और वह शरीर के कौन से अंगों में क्या हानि पहुँचाता है ?

उत्तर– तमाखू में '**निकोटिन**' नाम का विष होता है तमाखू के हरे पत्ते से अर्क निकालने में आता है, वह विष घातक है। इसके दो बिन्दु मनुष्य को और चार बिन्दु कुत्ते को मार डालने में समर्थ हैं। तमाखु के सूखे पत्ते में निकोटिन तृतीयांश प्रमाण में होता है सूखे पत्ते का सेवन करने से यह विष धीरे–2 शरीर में फैल जाता है और उससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं तमाखू–मुख–कण्ठ–हृदय–आमाशय और मस्तिष्क के लिये नुकसानकारी है।

प्रश्न– गाँजा, चण्डू, चरस आदि पीवें तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर– कोई भी नशीली वस्तु सेवन करने से हानि ही है गाँजा आदि भी त्याज्य हैं।

प्रश्न– अनेक साधु–सन्त कहते हैं कि गाँजा चरस पीने से काम शक्ति क्षीण होती है। वे रात दिन पीते रहते हैं और कहते हैं कि 'जिसने न पी गाँजे की कली, उस लड़के से लड़की भली,' और भी वे कहते हैं किं गाँजा पीने से भजन में मन अच्छा लगता है, एकाग्रता आती है तो क्या यह सत्य है?

उत्तर– यह बात सत्य नहीं है, बिलकुल असत्य है गाँजे वाले तो बेचारे रात दिन धूनी पर हाथ में चिलम लेकर बैठे–2 खाँसते रहते हैं, शरीर में मात्र हड्डियाँ ही शेष रह जाती हैं, रस रक्तादि धातुओं को तो गाँजा ही खा जाता है, सुखा देता है। ऐसी स्थिति में थोड़े दिनों में ही उनका कलेजा फट जाता है, यमराज के दूत उन्हें यमपुरी में ले जाते हैं। यही दशा चण्डू, चरस, तमाखू पीने वालों की होती है। अतः ये सब त्याज्य हैं।

प्रश्न– मदिरा (दारू–सुरा) पीना तो अच्छा है न ?

उत्तर– नहीं, **'सुरां न पिबेत्'** मदिरा नहीं पीना चाहिए इसके पीने से मनुष्य पागल बन जाता है, शरीर का ध्यान नहीं रहता, मन बुद्धि भ्रान्त हो जाते हैं, चक्कर आता है, बेहोश होकर कहीं भी रास्तें में या गटर (नाली) आदि में गिर जाता है, हाँथ, पाँव, दाँत टूट जाते हैं लहूलुहान हो जाता है। किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है, देखिये –

चित्ते भ्रान्तिर्जायते मद्यपानात् भ्रान्ते चित्ते पापचर्यामुपैति।
पापं कृत्वां दुगर्तिं यान्ति मूढास्तस्मान्मद्यं नैव पेयं न पेयम्।

अर्थात् मद्यपान से चित्त में भ्रान्ति हो जाती है, भ्रान्त चित्त वाला मनुष्य पाप कर्म करने में प्रवृत्त होता है पापाचरण करके ऐसा मूढ़ मानव नरकादि रूप दुर्गति को प्राप्त होता है। इसलिये मद्य नहीं पीना चाहिए।

प्रश्न– भाँग पीना तो अच्छा है न ?

उत्तर– भाँग भी नशे वाली वस्तु होने से त्याज्य है, भाँग पीने वाले की दशा भी मद्यपान वाले जैसी होती है।

प्रश्न– भाँग तो भगवान् शंकर जी भी पीते हैं न ?

उत्तर– वाह रे बुद्धू! भ्रष्ट पंथी! तुमने तो जगदीश्वर भूतभावन भगवान् विश्वनाथ को भी अपने जैसा व्यसनी बना दिया। क्या अज्ञानता ? मनुष्य जो दुर्गुण अपनाता है उन्हीं दुर्गुणों को अपने इष्टदेव में भी आरोपित करता है, धिक्कार है तुम्हारे जैसे पोप कल्पित कथानकों को कहने वालों को, जो परमात्मा को भी अपने जैसे पामर मनुष्य के समान कल्पित करके उन्हें भी भाँग पीने वाला बता दिया। ये सब भगवान् की आड़ में अपने स्वार्थ के लिये लोगों ने कल्पना करली है कि शंकर जी भी भाँग पीते हैं। एक महाशय ने काशीजी में मुझसे कहा– 'स्वामी जी चाह (चाय) पीजिये।' तब मैने कहा–'मै चाह (चाय) नहीं पीता हूँ।' तब उन महाशय जी ने तुरंत गीता का श्लोक सुना दिया– **'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः'** और अर्थ का अनर्थ कर दिया। ऐसे ही भाँग पीने वाले **'विज्यं धनुः'** यह वेद प्रमाण देकर अर्थ का अनर्थ करते हैं। कुछ हुक्केबाज **''पत्रं पुष्पं फलं तोयं''** इस गीतावाक्य से भगवान् को हुक्का पिलाने का अनर्थ करते हैं। इसीसे आज भारतवर्ष अवनति के गहन गर्त में गिर रहा है।

प्रश्न– तो क्या 'विज्यं धनुः और पत्रं पुष्पं' में भाँग और हुक्के का निषेध है? और यदि निषेध है तो फिर लोग उसे पिलाने की कल्पना क्यों करते हैं?

उत्तर– व्यसनी लोग अपने व्यसन के समर्थन के लिये और भोली जनता को फँसाने या ठगने के लिए वेदादि शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को छिपाकर अर्थ का अनर्थ करते हैं। **'विज्यं धनु'** का अर्थ है भगवान् रुद्र का धनुष्य विजयकारी है, वह ज्या यानी प्रत्यंचा रहित हो, क्योंकि हम भक्त हैं, रुद्र की कृपा के पात्र हैं, दण्ड के पात्र नहीं। अतः हमारे लिए रुद्र का विजयकारी धनुष्य प्रत्यंचा रहित हो, जिससे हम शान्ति प्राप्त करें। परन्तु स्वार्थी लोग विज्यं का अर्थ विजया यानी भाँग करते हैं,

यह अनर्थ है। गीता के '**पत्रं आदि**' श्लोक का अनर्थ कैसे करते हैं इस पर एक दृष्टान्त देते हैं–

एक गाँव में एक वैष्णव साधु आये, वे बड़े सदाचारी धर्मात्मा पवित्र पुरुष थे। उनके उपदेश बड़े अच्छे शास्त्रीय होते थे, गाँव की जनता उपदेश सुनकर बड़ी प्रभावित हुई। जनता ने चातुर्मास के लिए उनको रोक लिया बाद में उनके लिये एक बढ़िया मन्दिर एवं निवास स्थान बना दिया। वे वहाँ रहकर जनता को धार्मिक व आध्यात्मिक मार्ग–दर्शन करते थे, सर्वत्र आनन्द होता था। कुछ दिन के बाद इन महात्मा का शरीर पूरा हो गया। उनका कोई शिष्य था नहीं, कुछ दिन के बाद विचरण करता हुआ एक व्यसनी साधु आ गया। गाँव के लोगों ने उसे योग्य समझ कर मन्दिर सँभला दिया। उसे तमाखू खाने और हुक्का पीने की आदत थी। चोरी से छिपकर वह हुक्का पी लिया करता था। एक दिन दोपहर के भोजन के बाद वह हुक्का पी रहा था इतने में मन्दिर का कोई एक सेवक दर्शनार्थ आ गया। उसने महात्मा को हुक्का पीते देखा और कहा– महाराज, 'हमारे गुरु महाराज तो कभी हुक्का तो क्या, कोई भी व्यसनी वस्तु का उपयोग नहीं करते थे, आप हुक्का पीते हैं यह अच्छा नहीं है।' इस पर महात्मा ने कहा, भक्तराज, गीता में भगवान् ने हुक्का का भोग लगाकर पीने की आज्ञा दी है देखिये–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

अर्थात् जो मुझे भक्ति द्वारा पत्र–पुष्प–फल अथवा जल देता है उस संयमशील अन्तःकरण वाले पुरुष की भक्ति के द्वारा अर्पण की गई वस्तुओं को मैं अंगीकार करता हूँ। यहाँ हुक्के में तमाखू का पत्ता– यह पत्र है, चिलम यह पुष्प है, नारियल की काचली यह फल है तथा उस में पानी है, वह जल है, ऐसा हुक्का है, उसे भगवान् को

समर्पित करने के लिये भगवान् ने '**पत्रं पुष्पं**' श्लोक में गीता में हुक्के का प्रतिपादन किया है। अतः भक्ति से हुक्का तैयार करके भगवान् को अर्पण करके पीने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। लो, तुम भी पीओ और पूरे गाँव के लोग भटक गये, हुक्का पीने लगे। यह है अर्थ का अनर्थ। यह तो विनोद के लिये एक दृष्टान्त दिया है इस प्रकार लोग अपनी कुटेव के समर्थन में शास्त्र के अर्थ का अनर्थ करते हैं, यह त्याज्य है।

प्रश्न– **कुछ साधु फकीर ब्राह्मण पण्डित आदि भी भाँग पीते हैं और कहते हैं कि भाँग पीने से भगवान् के भजन ये मन अच्छा लगता है । और गाते हैं–**

साधु खाई सन्तो खाई, खाई कुँवर कन्हाई,
जो विजया की निन्दा करे उसे खाई कालिका माई।
भंग गंग दो बहिन हैं रहती शिव के संग।
लड्डू खिलानी भंग है तरनतारनी गंग।।

इत्यादि भाँग की प्रशंसा के अनेक वाक्य बोलते हैं तो क्या यह ठीक है ?

उत्तर– वाह, आपने भाँग की प्रशंसा के अच्छे पुल बाँधे। क्या भाँग पीने वाले को ही साधु सन्त कहते हैं। क्या योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण भी भाँग पीते थे। बिलकुल नहीं, जो भाँग की निन्दा करने वाले को कालिका माता खा जाती हो तो फिर उसे माता कहें या डाकण? ये सब बातें निरर्थक और पाखण्ड चलाने वाले केवल नामधारी वेशधारी साधु–ब्राह्मण–पीर–फकीर या धूर्तों की हैं।

प्रश्न– **तो क्या भाँग पीने में दोष है?**

उत्तर– भाँग पीने में अनेक दोष हैं। भाँग पीने से शिर दुःखता है, अंगों में शिथिलता आ जाती है, कण्ठ तालु में शुष्कता आ जाती है, बुद्धि मन्द हो जाती है, उन्माद होना, पागलपन, मन में विचार तरंगों का

उठना, कलेजे में धड़कन होना–चक्कर आना–गिर जाना आदि भाँग पीने से भी होता है अतः भाँग पीना सर्वथा त्याज्य है।

प्रश्न– अफीम खाना तो अच्छा है न ?

उत्तर– पहले चीन के लोग अफीम खाते थे **'चीन के लोग अफीम उपासक पीनक छोड़ विलोकन लागे।'** उन्होंने तो अफीम छोड़ दी, पुरुषार्थी बने, आगे बढ़े। अब भारतवासी अफीम खाकर अपना कल्याण चाहते हैं, यह एक विडम्बना ही है।

प्रश्न– तो क्या अफीम खाना खराब है ?

उत्तर– खराब ही नहीं, नाशकारी भी है। इसलिए अफीम नहीं खाना ही योग्य है। अफीमचियों की बड़ी दुर्दशा होती है वे कहीं भी बेहोश होकर गिर जाते हैं, मर जाते हैं। कुछ लोग निद्रा लाने के लिए अफीम का उपयोग करते हैं, बच्चों को भी दे देते हैं, वे बड़ा बुरा करते हैं। फिर अफीम की आदत पड़ जाती है, जीवन भर दुःखी होते रहते हैं। अफीमचियों की भी दारू तथा भाँग पीने वालों के जैसी दशा होती है अतः अफीम का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

प्रश्न– पान सुपारी खाने में तो कोई दोष नहीं है न?

उत्तर– **'ताम्बूलं कामोद्दीपनम्'** पान काम को प्रदीप्त करने वाला है। **'ताम्बूलात्युपयोगां तस्मात्तत्श्लेष्मपित्तानिजासितः दृक्केश दन्तानि श्रोत्रवर्णबलक्षयः।'** पान के सेवन से शरीर बाल दाँत और कान की शक्ति क्षीण होती है पान में चूना कत्था सुपारी तमाखू लौंग आदि अनेक चीजें डाली जाती हैं, जो अपने अपने गुण के अनुसार हानिकारक सिद्ध हो चुकी हैं। चूना पेट में जाकर बारीक आंतड़ियों में प्रवेश करके नुकसान करता है, नियतमात्रा से अधिक चूना पान में पड़ जाय तो मुख आजाता है। सुपारी मादक द्रव्य है इसके सेवन से चक्कर आना, जीभ में तोतलापन, दाँतों की कमजोरी आदि दोष आते हैं लौंग गरम होती है इससे मुख और मूत्राशय में जलन होती है, मुख में चाँदी

पड़ती है, अतः त्याज्य हैं। इससे पाचन क्रिया बिगड़ती है और अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– पान में चूना खाया जाता है उसमें केल्शियम नाम का तत्त्व रहता है जो शरीर की हडिडयों को मजबूत करता है और अनेक रोगों को मिटाता है तो इस विषय में आपका क्या कहना है ?

उत्तर– चूना दवा के रूप में लिया जाय तो अच्छा है । आयुर्वेद में इसके अनेक गुणों का वर्णन है– यह जन्तुघ्न है, खाँसी, गलगंड, क्षय, हड्डी का दर्द दमा, फेफड़े का दर्द तथा बालकों की उलटी आदि में इसका पद्धतिसर उपयोग किया जाय तो बहुत फायदेमन्द है। परन्तु अधिक प्रमाण में निरर्थक पानादि में खाने से दाहक होकर नुकसान करता है। एक निष्णात– डा. बी. एल. मित्रा एम. डी अपने **'हेराल्ड आफ हेल्थ'** में लिखते हैं कि पान में पीपरिन और सुपारी में आर के डाई तथा आर कोकी नामका विष होता है, जो हानिकारक है अतः पान सुपारी खाना अयोग्य है।

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीपान्तर्गत सप्तम किरण समाप्त।

ॐ शिवः सर्वं सर्वत्र

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हरिः ॐ हरिः ॐ हरिः ॐ हरिः ॐ हरिः ॐ हरिः ॐ हरिः ॐ हरिः ॐ

उपसंहार

पाठकवृन्द ! भारत की भूमि अतिपवित्र, संस्कारसम्पन्न, शस्यशालिनी वैदिक तत्त्वज्ञान से आप्लावित, भगवान् की दिव्य विभूतियों की भण्डाररूपा है मानवसृष्टि का शुभारम्भ प्रथित मगंलमयी भारत भूमि में ही हुआ है। यहाँ ही बड़े–2 ऋषि–मुनि–योगी–सिद्ध पुरुष तत्त्ववेत्ता–राष्ट्रपुरुष–भक्त तथा स्वयं परमेश्वर के अंश स्वरूप भगवान् श्री राम, श्री कृष्ण तथा अनेक धर्मरक्षक आचार्य हुए हैं, जिनके यश:गौरव की गाथा अपने को पवित्र बनाती है। अपना अहोभाग्य है कि जहाँ पतितपावनी गंगा आदि नदियाँ कल–कल करती बहती हैं, जहाँ हिमालयादि समुज्ज्वल पर्वतों की हारमालाएँ सुशोभित हैं, जहाँ छोटे बड़े अनेक सुन्दर वन उपवन अपनी निराली तथा अनुपम छटा से हृदय को प्रफुल्लित कर रहे हैं। जहाँ आध्यात्मिक तथा धार्मिक तत्त्वज्ञान के दान में तत्पर ऐसे अनेक महानुभाव विश्वकल्याणार्थ अनेकविध मंगल कार्य करने में निमग्न हैं, जहाँ की रजकण के स्पर्शमात्र से मानव जीवन की सफलता होकर मुक्ति मिलती है। वहाँ अपना जन्म हुआ है। कहिये हम सब भारतवासी कितने भाग्यशाली हैं। मानव जीवन मुक्ति का द्वार है इसी से **'शुभस्य शीघ्रम्'** इस उक्ति के अनुसार अपने लौकिक प्रेय और पारलौकिक श्रेय को सिद्ध करने में थोड़ा सा भी बिलम्ब करना उचित नहीं है। अपनी भारतीय संस्कृति महान् उदार है। वह समस्त विश्व की संस्कृति की जननी तथा आश्रयदाता एवं शुद्ध संस्कार चरित्र तथा अनेकविध विज्ञान से भरपूर है इस संस्कृति का मूल वेद है, जिसका ज्ञान अनादि अनन्त है। वर्तमान में संसार के समस्त ज्ञान का आदि स्रोत भी वेद ही है। यद्यपि आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होता जा रहा है और उसकी अनेक शाखाएँ वर्तमान में उत्पन्न हुई हैं और विकास को प्राप्त हुई हैं और जैसे–2 संसार समुन्नत होता जायेगा वैसे–2 नये–2 आविष्कार होते जायेंगे और नई विद्याएँ भी प्रकट होंगी, परन्तु मेरी दृढ़ मान्यता है कि यह सब वेद वेदांग और वेदोपांगों में अवश्य ही समाविष्ट होंगी,

क्योंकि वैदिक साहित्य व्यापक है। और ऐसी कोई ज्ञान–विज्ञान–युक्त बात नहीं है, जो वेद में नहीं है।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति। (मनु.) सब धर्मों का समन्वय भी हिन्दु साहित्य में हो जाता है। विश्व में कोई भी ऐसा देश, जाति या सम्प्रदाय तथा धर्म नहीं है, जिसका समावेश अपने अध्यात्म हिन्दु धर्म शास्त्र में न होता हो।

यह कहने का आशय इतना ही है कि **'भारत भूमि'** देवभूमि है और यहाँ के निवासी दिव्य प्रतिभा सम्पन्न तथा त्याग और सहिष्णुता की साक्षात् मूर्ति के समान हैं। दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि आज भारतीय परम्परा के कुछ लोग पाश्चात्य भौतिक विज्ञान के तेज में चकाचौंध होकर अपने वैदिक स्वधर्म कर्म को छोड़ कर धर्मभ्रष्ट हो रहे हैं, इसलिये अब पुनः वे जाग्रत हों तथा अपनी तप–त्यागमयी–वैदिक–भारतीय संस्कृति का स्वाध्याय तथा तत्प्रतिपादित धर्म कर्मानुष्ठान करके पाश्चात्य अज्ञानान्धकार से निकल कर प्राचीन भारत विद्या–मार्तण्ड के तेज में सुख शान्ति प्राप्त करें। इसी हेतु से मैने इस लघुग्रन्थ में वेद–स्मृति–दर्शन–इतिहास, पुराणादि के अनेक रहस्यमय विषयों का संक्षेप में सरलता पूर्वक वर्णन किया है। इसका मनन करके मानव भ्रम मूलक बातों को छोड़ कर निर्भ्रान्त–सुखमय–सौन्दर्यपूर्ण प्रिय और अखण्ड आनन्दमय मुक्तिप्रद तत्त्वज्ञान के प्रकाश में स्थिर होकर जीवन्मुक्ति का अनुभव करके विदेह–मुक्त हो जायेगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इस प्रकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 महामण्डलेश्वर श्री स्वामी दयानन्द वेदपाठी जी महाराज द्वारा लिखित प्रश्नोत्तर प्रदीप लघुग्रन्थ समाप्त हुआ।

ॐ शिवः सर्वं सर्वत्र

ॐ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॐ

जीवात्मा परमात्मा स्वरूप ही है

परमात्मतत्त्व अति गहन है, सूक्ष्म है, अव्यक्त है, नित्य, सत्य, अजन्मा अजर-अमर सर्व-व्यापक, परिपूर्ण, सम-शान्त-निर्विकार, अनादि-अनन्त, अज्ञेय-अपरिच्छिन्न तथा असीम है । वह स्वयं प्रकाश-स्वरूप है । सबका प्रकाशक है । ज्ञानरूवरूप तथा अनुभवगम्य है, वह मन वाणी के ज्ञान का विषय नहीं है । स्थूल बुद्धि से या मलिन बुद्धि से उसे कोई जान नहीं सकता ।

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥

जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ उसे न पाकर पीछे स्थिर हो जाती हैं, वहाँ बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, वह परमगतिस्वरूप परमात्मा है । वह नित्य-सत्य चेतन तथा आनन्दस्वरूप है । जीवात्मा भी परमात्मा का अंश होने से सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। परन्तु यह अनादि अविधा से अपने पारमार्थिक ब्रह्मस्वरूप को भूल गया है। देह आदि जड़ एवं अनात्म पदार्थों को ही अपना स्वरूप समझ कर अज्ञानवश संसार में भटक रहा है, जन्मता-मरता है। इस भेद-भ्रम की निवृत्ति के लिये ही शास्त्र एवं सद्गुरु की आवश्यकता है। इनसे तत्त्वज्ञान दृढ़ होने पर ही जीव के दुःखों का अन्त एवं परमानन्द की प्राप्ति होगी ।

-स्वामी दयानन्द वेदपाठी